भक्ति-भागीरथी

(गीता के अध्याय १२ की कहानी व्याख्या)

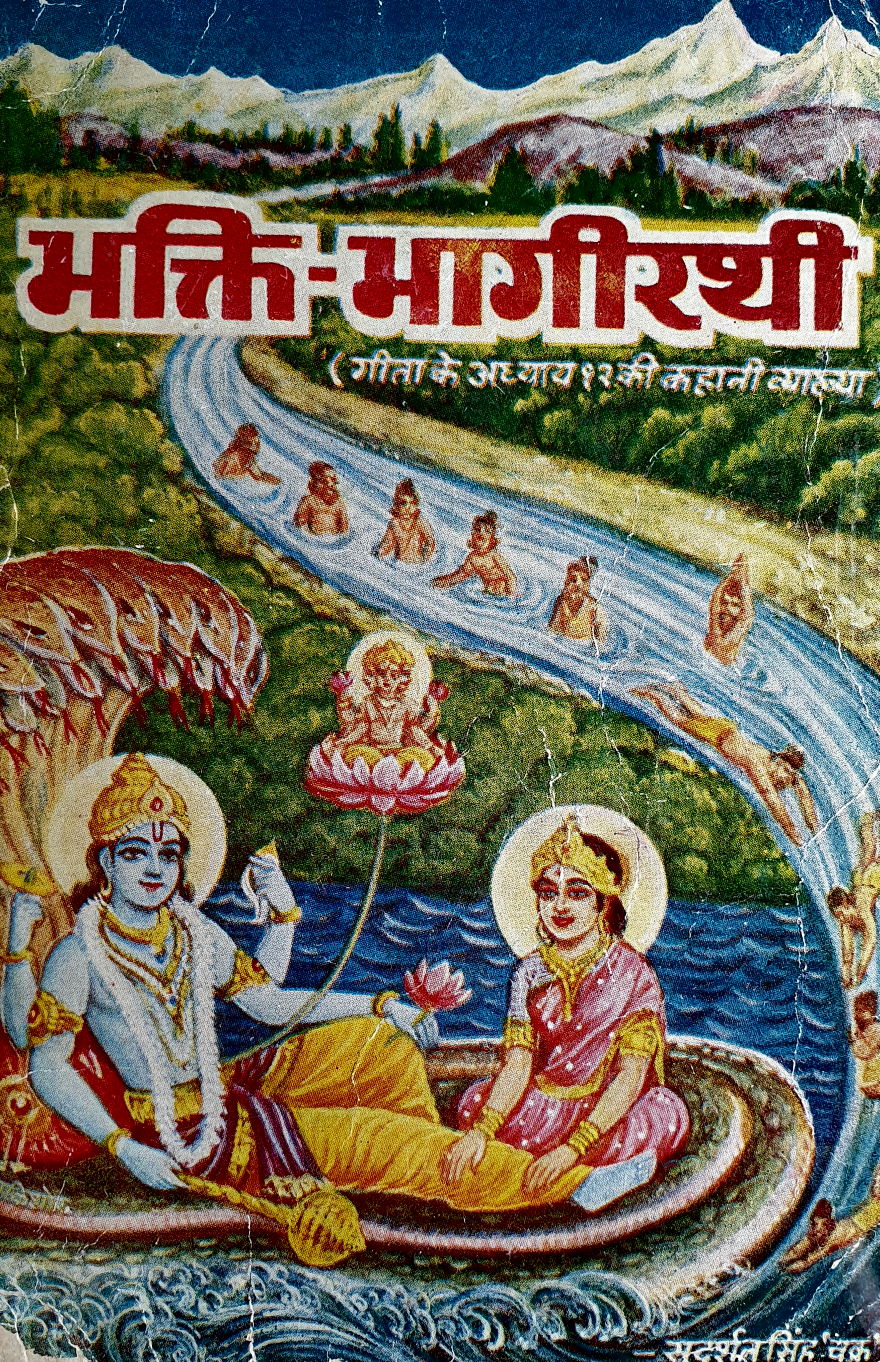

भक्ति-भागीरथी

[गीताके बारहवें अध्यायका कहानी भाष्य]

•

श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र'

•

[इस पुस्तकको या इसके किसी अंशको प्रकाशित करने,
उद्धृत करने अथवा किसी भाषामें अनूदित
करनेका अधिकार सबको है।]

प्रकाशन-विभाग
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवा-संस्थान
मथुरा—२८१००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक—

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवा-संस्थान

मथुरा–२८१००१ (उ० प्र०)

●

प्रथम संस्करण–३००० प्रतियाँ
मकर-संक्रान्ति, सं० २०३५ वि०
(१४ जनवरी, १९७९)

●

मूल्य—चार रुपये

●

मुद्रक :

हर्ष गुप्त

राष्ट्रीय प्रेस,

डेम्पियर नगर,

मथुरा–२८१००१ (उ० प्र०)

अपनी बात—

अब यह बात तो पाठकोंपर स्पष्ट है कि किसी सूत्र या श्लोककी व्याख्या कहानी द्वारा करना कैसा होता है। अवश्य ही इसमें रोचकता होती है, किन्तु पाठक श्लोकपर कितना ध्यान दे पाता है, कहना कठिन है।

यह शैली हिन्दीमें मेरे अतिरिक्त किसीने अपनायी नहीं; न पहिले और न बादमें।

गीताके बारहवें अध्यायके श्लोकोंपर मैंने कहानियाँ लिखीं और वे सब कहानियाँ क्रमश: 'कल्याण' में छपीं। क्योंकि गीताके इस अध्यायका नाम भक्तियोग है, इन कहानियोंके संग्रहका नाम 'भक्ति-भागीरथी'।

गीताके पन्द्रहवें अध्यायकी कहानी व्याख्या 'ज्ञान-गंगा' छप चुकी है। कहानी-व्याख्या मैंने गीताके इन दो अध्यायोंकी ही लिखी थी।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के 'सन्देश-चिन्तन' में बारहवें और पन्द्रहवें अध्यायकी भी गद्य-व्याख्या तो गयी ही है। यह कहानी-व्याख्या, आशा है, पाठकोंको प्रिय लगेगी।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान,
मथुरा। } **—सुदर्शन सिंह 'चक्र'**

विषय-सूची

१.	प्रश्नका स्वरूप	५
२.	युक्ततम	१८
३.	अव्यक्तोपासक	३१
४.	निवृत्ति-निरत	४६
५.	त्वमेवेदं सर्वम्	६०
६.	अभ्यासयोग	७६
७.	अनासक्त	९२
८.	फल भगवानको अर्पण	१०८
९.	महत्तम	१२४
१०.	लोकसंग्रही	१३९
११.	प्रशान्त	१५५
१२.	तपस्वी	१७४
१३.	त्यागी	१९३
१४.	अवधूत	२१२
१५.	प्रभुपर विश्वास	२३०

प्रश्नका स्वरूप

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।। १ ।।

'दारुक ! वायव्य कोणपर जो जीर्णकुटीर है ।'

'आनर्त-नरेशके उपायन सीमापर स्वीकृत करनेका संकल्प हुआ था ।' पार्थ आज अपने सखाके समीप विराजमान थे ।

'जब किसीका सङ्कल्प आत्मविस्मृत होकर अपने-आपमें पूर्ण हो जाता है,' जनार्दन गम्भीर हो गये थे, 'मेरे अव्याहत सङ्कल्पका कोई अर्थ नहीं रह जाता । वह कुण्ठित होकर भी धन्य हो जाया करता है ।' शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक—जैसे रश्मियोंसे आबद्ध नहीं । चारों हिमधवल श्यामकर्ण दारुककी इच्छासे ही चलित हो रहे हैं ।

'आनर्ताधीशका श्रीचरणोंमें अनुराग है ।' अर्जुनने आग्रह किया था कि मध्याह्न-कृत्य आनर्त-नरेशके राजसदनमें सम्पन्न हो और उनको सेवाका सौभाग्य मिले । बड़ा विचित्र है उनका वह मयूरमुकुटी सखा । अर्जुनका आग्रह भी अफल रहा था । उसे राजसदनके नामसे एक बार हिचक होती है । व्रजके कुटीरोंमें पलकर वह कुटीरोंका पक्षपाती हो गया है । मार्ग आनर्तसे जा रहा

था और नरेश के उपायन रथपर-से ही स्वीकृत करनेका विचार व्यक्त कर दिया था उसने। वे मार्गपर सपरिषद् प्रतीक्षा करेंगे और अत्यन्त निराश होंगे। सहसा पथ-परिवर्तनसे सम्पूर्ण दर्शनोत्सुकजनों को जो व्याकुलता होगी, अनुमानसे परे नहीं थी।

'गरुडध्वज वे देख लेंगे और यदि न देख लें तो।' पाञ्चजन्य मुखसे लगा और दिशाएँ निनादित होने लगीं। 'जो आ सकते हैं, वे पहुँच जायँगे; किंतु जो अवश हो चुका हो, उसके द्वारपर उपस्थित हुए बिना छुटकारा नहीं।' नेत्र उस उटजकी ओर लगे थे। दूरसे उसका ऊपरी तृण-निर्मित भाग दृष्टि पड़ने लगा था।

'बस, दारुक!' रथको द्वारदेशके सम्मुख पहुँचनेसे पूर्व ही आदेश मिला रोकनेका। अश्वोंके स्थिर होनेसे पूर्व वह नीलोज्ज्वल-ज्योति कूद पड़ी। अर्जुनने अनुगमन किया।

'अच्छा स्थान है यह!' अर्जुनको आश्चर्य हुआ। कोई विक्षिप्त तो इस उटजमें नहीं है। इधर-उधर वृक्षोंके पत्र गिरे हुए पड़े थे। स्थान सुसंस्कृत एवं उपलिप्त रहा होगा कई दिन पूर्व। अब तो पत्र एवं तृणोंसे आच्छादित हो गया है। पुष्प-परिखासे आवेष्टित तुलसीकानन अवश्य पूजित होता होगा। इधर तो सायंकालका निर्माल्य-प्रदीप भी उठाया नहीं जा सका है। कोई रुग्ण तो नहीं यहाँ। ऐसा कैसे सम्भव है। पत्रोंके मध्यमें किसीने इधर-उधर थोड़ी भूमि स्वच्छ की है। कभी यहाँ और कभी वहाँ, उसके चित्तका विभ्रम स्थानको एक ओरसे स्वच्छ करनेमें

बाधक हुआ है। गोमय-जल मिलाकर केवल उपलेपनका उपक्रम हुआ है। अस्वच्छता ही बढ़ी है उससे। तुलसी-वीरुधोंमें जल देनेके स्थानपर पृथक् जलधारा देकर पुष्प विसर्जित हुए हैं।

'श्यामसुन्दर आयेंगे।' एक कज्जल-कृष्ण क्षीण कङ्काल वहाँ घूम रहा था। कटिमें एक मलिन वस्त्र था और वाम करमें पत्रपुटक। पुष्पचयन कर रहा था वह। दोनेसे पुष्प भूमिपर गिर रहे थे; किंतु उसे तो यह भी पता नहीं था कि वह पुष्प तोड़ रहा है, कलिकाएँ तोड़ रहा है या पत्ते। तोड़कर दोनेमें ही रखता था अपनी समझसे। अब वे भूमिपर पड़ें तो उसका दोष?

'श्रीकृष्णचन्द्र पधारेंगे!' सहसा पत्र-पुटक छोड़कर वह एक वस्त्रको उलटने लगा। आसन तो नहीं बना रहा है? जैसे अस्थियोंको स्नायुसे आबद्ध करके उसपर अर्ध-पारदर्शी चर्मावरण चढ़ा दिया हो किसीने। नेत्र भीतर चले गये थे। पता नहीं इस शीर्ण कङ्कालमें कहाँ इतना जल था जो नेत्रोंसे बाहर आते समाप्त ही नहीं हो रहा था।

'आप इस उन्मत्तका उपहार स्वीकार करने पधारे हैं।' पार्थने सखाके समीप पहुँचकर कहा। वे अनुभव कर रहे थे कि इस प्रेमोन्मादके आकर्षणकी द्वारकेश उपेक्षा नहीं कर सकते थे। परंतु मध्याह्न-सन्ध्याके लिए जल भी तो प्राप्य नहीं है यहाँ। आसनकी आशा व्यर्थ है। उपयुक्त स्वच्छ भूमि भी प्रस्तुत करनी होगी।

'उपहार भी प्राप्त ही होंगे!' हाथ पकड़कर शान्त रहनेका संकेत कर दिया गया।

'श्याम !' उसने एक पात्रमें हाथ डालकर श्वेत चूर्ण निकाला और भूमिपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें अङ्कित कर दिया।

'वृषल ! मैं आ गया।' जैसे आपने अपने आह्वानका उत्तर दिया हो।

'श्रीकृष्ण !' किसीको सम्मुख देखकर दो पद पीछे हटा वह। नेत्र उठे और एकटक देखने लगा। शरीर निश्चेष्ट हो गया।

'वृषल ! मैं तुम्हारे यहाँ आया हूँ।' कंधेपर कमल-कर पड़े और जैसे आप किसी प्रसुप्तको जाग्रत् कर रहे हों।

श्यामसुन्दर मदनमोहन मोरमुकुटधारी।
माधव हरि, माधव हरि, माधव गिरधारी॥

दोनों हाथ उठाकर वह तो नाचने लगा। आनन्द-वारिधि उमड़ पड़ा था अन्तरमें। आसन और अर्घ्यकी उपयोगिता विस्मृत हो गयी।

'व्रजेन्द्र ! मुरली छोड़कर अच्छा नहीं किया आपने।' अर्जुनको लग रहा था कि श्रीकृष्ण ललित त्रिभङ्गीसे खड़े होकर अधरोंसे मुरलिका लगानेको उत्सुक हो रहे हैं। यह क्या हो रहा है। गाण्डीवधारी क्या इस उन्मत्तके साथ नृत्य करेंगे। हृदय मचल रहा है और पैर विवश होते जान पड़ते हैं। अपनेको सम्हालनेके लिए ही उन्होंने सखाके स्कन्धका आश्रय लिया।

'मैं बैठूँगा !' इन लीलामयके अरुण अधरोंपर मन्द मुसकान आयी। योगमायाने अपना कार्य सम्पन्न किया। वह प्रकृतिस्थ हो रहा था और श्यामसुन्दर तो पार्थका

कर पकड़कर उसी अस्त-व्यस्त वस्त्रपर बैठ गये, जिसे कुछ देर पूर्व वह आस्तृत करनेमें लगा था।

'द्वारकेश !' उसने जैसे अब कुछ देखा है। अपने नेत्र मल लिये। स्वप्न है या सत्य, इसका निश्चय कर लेना आवश्यक था। 'इस कंगालके कुटीरमें !' एक पात्रमें जल लेकर चरणोंके समीप आ बैठा।

'श्रीद्वारकाधीशकी जय !' उटजके समीपसे जयघोष उच्चतम होता जा रहा था।

'पार्थ !' नेत्रोंने ही कुछ संकेत कर दिया और अर्जुन उठकर बाहर आ गये। अर्चामें आगतोंका आह्लाद व्याघात बने, यह अपेक्षित नहीं था। आनर्ताधिपतिके उपहार दारुक रथमें सज्जित कर रहे थे।

'मैं भूखा हूँ, वृषल ! भोजन नहीं कराओगे ?' ऐसे स्थानोंकी पावन वायुमें आपकी क्षुधा प्रायः प्रदीप्त हो जाया करती है।

'देव !' क्या कहे बेचारा। आज सात दिन हो गये, उसे यह भी पता नहीं। उटजके कन्द शुष्क-से लगते हैं। फलोंका स्वरूप विकृत हो गया है। जल भी, पता नहीं, कैसा हो रहा है। उसे तो अपनी ही स्मृति नहीं थी। फल, जलादिका चयन कौन करता। एक बार आतुरतापूर्वक प्रत्येक कोना देख आया। कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं, जो निवेदन करने योग्य हो। हाय ! आज आराध्यके लिए भी वह रिक्त-हस्त है। मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया। नेत्र प्रवाहित हो रहे थे। कण्ठ अवरुद्ध था। अवश्य वह मूर्छित होकर गिर पड़ेगा।

'सो कुछ नहीं। मैं क्षुधासे व्याकुल हो रहा हूँ।' कौन कहे कि पीछे आनर्ताधीश दोनों करोंमें विविध फल रत्नथालमें लिये कृपावलोकनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। किसीके उदरमें विशेष वस्तुकी क्षुधा लगती हो तो कोई क्या करे। 'दूसरी सब बात पीछे सुनूँगा।' आप उठे और इस प्रकार उटजमें अन्वेषण करने लगे, जैसे सदासे वहाँ रहनेके अभ्यस्त हों। दीनके घरसे दीनबन्धुको परिचित होना ही चाहिये।

'यह भूकूष्माण्ड, ये इंगुदीफल और ये तिन्दुक!' त्रेतामें चित्रकूटके वनोंका स्वाद स्मरण हो गया था सम्भवतः। 'पार्थ! आओ बैठो। तुमने ऐसे सुस्वादु उपहार नहीं प्राप्त किये होंगे।' कहींसे एक छुरिका मिल गयी थी और स्वयं प्रक्षालित करके भोग लगाने लगे थे। पार्थकी प्रतीक्षा आवश्यक नहीं ज्ञात हुई।

'यह तो बहुत कषाय है!' उसने भूकूष्माण्ड करोंसे ले लेनेका प्रयत्न किया।

'हूँ, बड़े अच्छे हो तुम!' जैसे कोई बड़ी प्रिय वस्तु छीनना चाहता हो। एक ओर हटा लिया आपने। 'लो, एक टुकड़ा तुम भी ले लो! और नहीं मिलेगा।' एक छोटा-सा खण्ड बलात् मुखमें दे दिया आपने। वह अमृतस्वाद—स्रष्टा कल्पना भी नहीं कर सकते कि उनकी कृतिका ही एक पदार्थ है वह।

'आज तो कन्हैया व्रजमें विराजमान हैं।' अर्जुनने उल्लसित कण्ठसे मन-ही-मन कहा।

'प्रभो !' भोजन समाप्त हो गया था। महाराजने आगे बढ़कर पद्मपदोंमें रत्नाञ्जलि समर्पित की। अनुरोधके लिए शब्द अप्राप्य हो गये थे।

'अब अतिकाल होगा !' राजसदन पधारनेकी भूमिका भी नहीं बनने दी आपने।

वृषल—वह तो इस प्रकार बैठा था, जैसे अभी श्यामसुन्दर उसके सम्मुख ही आसीन हैं। दारुकने कब रथ द्वारकाकी ओर प्रेरित किया, यह नहीं देख सका वह। अवश्य वे कमललोचन अन्ततक उसे स्नेहपूर्वक रथपरसे भी देखते रहे थे।

(२)

'जहाँतक शरीरका प्रश्न है, वह जड़ है और सृष्टि-सञ्चालकका आधिपत्य है उसपर।' महर्षि एकत-का स्वर शान्त एवं गम्भीर था। 'देहाभिमानी सृष्टि-सञ्चालकका दास है और जबतक, जितनी देरको भी देहाभिमान किसीमें आता है, वह दास होता है। उसे अपने स्वामीकी आराधना करनी चाहिये। उसकी आज्ञा-शास्त्रादेशका पालन करना चाहिये। ऐसा नहीं करके वह अपराधी होता है। दण्डधर संयमिनी-पति ऐसे ही अपराधियोंके अभियोगका निर्णय करते हैं!' सम्मान्य अतिथि अर्घ्यादिसे सत्कृत हो चुके थे और अब उनके प्रश्नका समाधान करना था।

'शारीरिक मोह एवं भौतिक स्वार्थसे मुक्त प्राणी भी यश, स्वर्ग एवं सम्मानका लोलुप हो सकता है। ये सब

भी सूक्ष्मशरीरके स्वार्थ हैं और इनके रहते भी जीव दासत्वकी ही श्रेणीमें रहता है।' महर्षि स्पष्टीकरण कर रहे थे। 'जहाँ केवल आराध्य, आराधक एवं आराधनाकी त्रिपुटी है, जीव ईश्वरका अंश है। वह उस नारायणका सखा है। अपनेको उत्सर्ग करके वह उसे प्राप्त कर लेता है। नियम यहाँ कुण्ठित हो जाते हैं। प्रेम एवं श्रद्धा ही यहाँका नियम है।'

तृतीय प्रहरमें शिष्य-समुदाय अध्ययन सम्पन्न कर चुका था। वह महर्षिके पृष्ठदेशमें शान्त स्थित आगत अतिथिके सामीप्यका आनन्द लेने एकत्र हो गया था। मृगोंने रोमन्थन स्थगित कर दिया था और आश्रम-धेनुओंके साथ वे भी एकटक देख रहे थे। वृक्षोंपर जैसे तपोवनके समस्त पक्षी एकत्र हो चुके हों। कहीं न गति थी और न शब्द। आज प्रकृति महर्षिके उपदेश-श्रवणको उत्कर्ण हो रही थी। प्रकृतिका प्राण जो सुननेमें लीन था।

'वस्तुतः तो न कोई सृष्टि है और न कोई उसका सञ्चालक। यह सब एक महत् स्वप्न है। जो नित्य जाग्रत् है, उसके लिए स्वप्नकी कोई सत्ता नहीं। वह अविनाशी अव्यक्त सर्वस्वरूप है। जो उसमें स्थित है, उसकी दृष्टिमें नामरूपात्मक जगत् है ही नहीं।' वेदिकाके कुशासनपर मृगचर्म डालकर महर्षि स्थिर विराजमान थे। सम्मुख शिष्योंने अतिथियोंको मृगचर्मपर किसलय आस्तृत करके आसीन किया था। 'व्यवहार भेददृष्टिसे निष्पन्न होता है; किंतु तत्त्वदर्शीको उसमें स्वरूपकी विस्मृति नहीं होती। उसे व्यावहारिक पदार्थसत्ताकी प्रतीति ही पश्चात्

होती है। वह प्रथम अनुभव करता है 'यह मैं हूँ'। पुनः जल एवं उसके उपयोगके संस्कार जाग्रत् होते हैं।' स्पष्टीकरण किया गया उपदेशका।

आज श्यामसुन्दर अर्जुनको लेकर तपोवन चले आये थे। महर्षिके दर्शनके साथ-साथ आश्रमका कुशल-समाचार ज्ञात करना भी अभीष्ट था। खाण्डवदाहसे वहाँ क्रूर सत्त्वोंका भय तो नहीं रहा; किन्तु धर्मराज सदा तपोवनोंके लिए चिन्तित रहते हैं। इस प्रकार उनकी प्रसन्नता भी सम्पादित हो जायगी। आतिथ्य एवं कुशल-प्रश्न समाप्त होनेपर अर्जुनने ही प्रसङ्गका प्रारम्भ किया था। सत्पुरुषोंके समीप ग्राम्यचर्चा तो होनेसे रही। वहाँ तो जो कुछ क्षण प्राप्त हों, उन्हें अध्यात्मोपदेशमें सफल कर लेना ही बुद्धिमत्ता है।

'पार्थ! तुम धन्य हो! धन्य हैं पाण्डव एवं द्वारकावासी!' महर्षिने यह स्तुति क्यों प्रारम्भ की। 'ये परमतत्त्व साक्षात् घनीभूत होकर तुम्हारे समीप निवास करते हैं। विजय! भूलो मत, इनमें न तो पञ्चभूत हैं और न शरीरत्रय। अपनी योगमायासे सच्चिदानन्दघन आविर्भूत हुए हैं। जिस परमार्थ-तत्त्वका समाधिके द्वारा हृदयदेशमें साक्षात् होता है, आज वे मेरे नेत्रोंके सम्मुख आसीन हैं।' कण्ठ गद्गद होने लगा। शरीर कम्पित हुआ और रोमाञ्च हो आया।

'मैं, पार्थ, आप, ये आश्रमवासी और निखिल दृश्य—सभी तो एकरूप हैं!' मायापतिने देखा कि लीलाकी यवनिका हटने जा रही है। मौन नहीं रह सके वे। 'सब साक्षात् सच्चिदानन्द हैं। भेद ही मायाजन्य है।

पृथक्ताकी प्रतीति ही अज्ञानसे होती है।' लीलामयने महर्षिको एक दूसरी दिशामें प्रेरित कर दिया।

'विजय ! सच्ची बात यही है। व्यक्त प्रतिष्ठित है अव्यक्तके आधारपर और वह अव्यक्त एक है।' महर्षिको कोई भेद ज्ञात नहीं हुआ। 'सब श्रीकृष्णके ही स्वरूप हैं। यह अहं, त्वंका भेद भ्रम है। इस भ्रमसे ऊपर उठनेके लिए आवश्यक है उस एकत्वका सतत मनन और पुनः उसीमें स्थिर हो जाना।' महर्षिने नेत्र बन्द कर लिये। जो कुछ उन्होंने कहा था, उसका हृदयने अनुभव किया और तब दृश्यको उपरत होना ही था।

'चित्तवृत्तिका निरोध योग है।' गाण्डीवधारीने महर्षिकी स्थितिसे प्रभावित होकर अपने नित्यसखाकी ओर देखा।

'यदि वह सत्त्वके आश्रयसे सम्पन्न हो!' जिसकी श्वाससे श्रुतियोंकी निष्पत्ति होती है, शास्त्रोंके शुद्ध मर्मको उसके अतिरिक्त कौन समझे; क्योंकि हृदयकी ऐकान्तिक स्थितिमें अविनाशी अव्यक्त व्यापक तत्त्वसे एकात्मता होती है।' कुछ क्षणके लिए दोनों शान्त हो गये।

'अनुमतिकी प्रतीक्षा अनावश्यक है।' एक बार समाधिमें स्थित होनेपर फिर उत्थान कब होगा, यह कुछ निश्चित नहीं था। आज तो साक्षात् समाधि-तत्त्वने उपस्थित होकर महर्षिकी वृत्तियोंको अन्तःकरणमें लीन कर दिया था। 'सर्वात्मासे संयुक्तके लिए पार्थक्य ही सम्भव नहीं।' विजय भी अपने सखाके साथ उठे और प्रणिपात किया उन्होंने।

'अब आप सब आज्ञा दें !' आश्रमवासियोंसे आज्ञा ले ली गयी और विदा हुए वे ।

'पञ्चभूतोंसे परे, शरीरत्रयसे रहित, योगमायाको आश्रय करके आविर्भूत साक्षात् सच्चिदानन्दघन ।' अर्जुनके मनमें महर्षिके वाक्योंने एक मन्थन उत्पन्न कर दिया था । कुछ है, स्मृतिके धुँधले स्तरमें ऐसा कुछ अवश्य है, जिसे वे जानते हैं । जैसे कोई बहुत स्मृत नाम विस्मृत हो रहा हो अकस्मात् और मन आकुल हो रहा हो उसे प्राप्त करनेको । महर्षिके वाक्योंने एक ऐसा ही स्पर्श कर दिया था ।

'क्यों धनञ्जय !' यही मन्द मुसकान तो एक आवरण डाले है उस शाश्वत स्मृतिपर । अर्जुन भूल ही गये कि वे क्या सोच रहे थे । उनके नवघनसुन्दर, मयूरमुकुटी सखा उनके समीप ही तो हैं । उनके सखा, सुहृद् द्वारकेश ! बस—शेष सब जैसे जलमें निक्षिप्त पाषाण अपनी उन्नत गतिको भी तनिक देरमें समाप्त कर अदृश्य हो जाता हैं—अन्तर्मनमें वैसे ही अदृश्य हो गया ।

(३)

'योग और तपस्या, ज्ञान और समाधिके द्वारा मेरे इस विराट् स्वरूपका दर्शन सम्भव नहीं !' शस्त्र-सन्नद्ध दोनों दल कुरुक्षेत्रमें व्यूह बना चुके थे । मध्यमें चन्द्रगौर अश्वोंने नन्दिघोषको पहुँचाया और उसके वानरध्वजपर सबकी दृष्टि एकत्र हो गयी । भीष्मपितामहके शङ्खनादका उत्तर दिया जा चुका था । धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द

ही होना चाहिये अब। सहसा अर्जुनने गाण्डीव रथमें रख दिया और पृष्ठभागमें बैठ गये। एक हाथमें रथ-रश्मि एवं दूसरेमें वेत्र लिये स्वर्ण-कवचधारी नील-जलद-सुन्दर सारथिने मुख घुमाया। वाणीमें विश्वको पावन करनेवाली गीता-गङ्गाका स्रोत प्रवाहित होने लगा। पार्थकी प्रार्थनापर ही उनके नेत्रोंको दिव्य-दृष्टि दी गयी। कालस्वरूप विराट् प्रत्यक्ष हो गये और जब वह सहस्र-मार्तण्ड-तेज असह्य हो गया, चतुर्भुज मङ्गलमय मूर्ति सम्मुख उपस्थित थी। 'केवल भक्तिसे मुझे जाना जा सकता है, देखा जा सकता है और मुझमें प्रविष्ट हुआ जा सकता है।' उस करुणासागरने रहस्य प्रकट किया।

'जब कोई अपने प्रेमके मङ्गल प्रकाशमें एकात्मताका उपहास कर देता है।' आनर्तसे द्वारका जाते समय हृषीकेशने रथपर बैठे अर्जुनसे कहा था—'योगका अव्यक्त व्यक्त होकर भी बाध्य होता है उसके द्वारपर जानेके लिए। वह प्रेमधनी युक्त होना चाहे या नहीं, किंतु उसे कण्ठसे लगाये बिना योगका आराध्य अधूरा जो रह जाता है।' अर्जुनके मनमें आज वे शब्द साकार हो रहे थे। श्रीकृष्ण चले आये थे और वह उन्मत्त प्रायः वैसा ही आनन्दमग्न बैठा था। हमारे आनेका उसे कोई पतातक नहीं लग सका था।

'कौन कहता है कि मैं चला आया हूँ।' पूछनेपर उन्हीं गोविन्दने कहा था। 'उस स्नेह-स्निग्ध हृदयसे हिलनेमें भी मेरे पद प्रस्खलित होंगे। उसके नेत्रोंके सम्मुख तो जिसे वह चाहता है, वह उपस्थित रहनेको विवश है।' उस समय उनके कमल-लोचन भर आये थे।

'वे एक अविनाशी अव्यक्तमें स्थित हो चुके !' माधवने ही कहा था महर्षि एकत-के सम्बन्धमें भी। उस दिन भी महर्षिको हमारे आनेका कोई ज्ञान नहीं हुआ था। 'व्यावहारिक भेदकी प्रयासपूर्वक प्रतीति होगी उन्हें। उनकी दृष्टिका भेद-भ्रम पृथक् हो चुका। अखण्ड एकत्वकी अनुभूतिके कारण उनका नाम सार्थक है।' उस दिन भी मुकुन्द मग्न हो गये थे महर्षिका गुणगान करते समय।

'वह अव्यवस्थित अल्हड़ उन्माद और उन्मुक्त तल्लीनता।' पार्थके स्मृति-पटपर दो चित्र चल रहे थे और वे द्विविध संकल्पोंमें लगे थे। 'वह शान्ति, संयम, गाम्भीर्य एवं तटस्थता।' दोनों मूर्तियाँ भव्य थीं। दोनोंमें अलौकिक आकर्षण था और दोनों हृदयको अपने दिव्य प्रभावसे परिपूत करनेमें समर्थ थीं।

'दोनों नित्ययुक्त हैं। मायाकी तुच्छ एवं हेय शृङ्खलासे दोनों उन्मुक्त। शरीर एवं स्वार्थके कर्दमसे अलिप्त दोनों अहंके आवरणसे पार हो चुके हैं।' अर्जुनकी बुद्धि अपने-आप विवेचनमें लगी थी। 'किंतु इनमें पद्धति किसकी श्रेष्ठ है ? योगके जाननेमें अधिक अनायास मार्ग कौन प्राप्त कर सका है ?' प्रश्न बड़ा जटिल हो उठा। बुद्धिकी विवेचना यहाँ कार्य नहीं कर सकती थी। मनकी गतिसे परेकी बात थी।

'श्रीकृष्ण ही इसका ठीक निर्णय कर सकते हैं' अर्जुनको अन्ततः इसी निर्णयपर आना पड़ा।

युक्ततम

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।। २ ।।

मानव जहाँ प्रवेश करनेकी कल्पनासे ही कम्पित हो उठा करता था, जो कृष्णकाय पर्वताकार क्रूर-हृदय नैकषेयोंका क्रीडोपवन बन चुका था और जहाँ यत्र-तत्र तापसोंके अस्थि-कङ्काल ही यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न करते थे कि तमस्के उद्दण्ड ताण्डवमें सत्त्वकी रक्षा न होनेपर उसकी शुभ्रता स्वरूप धारण कर लेती है, वहाँ उसकी गुहा थी। उसकी गुहा केवल इसलिए कि उसमें उसके आराध्यके प्रतीक वे बड़े-बड़े दो पाषाण-खण्ड प्रतिष्ठित थे। वैसे अर्चनाका समय ही गुहाका निवासकाल था उसके लिए। हिमांशुकी उज्ज्वल किरण-राशि, पवनका लास्य एवं ताण्डव, मघवाकी सीकर निर्झरिणी तथा तड़तड़के साथ अखण्ड अभिषेक-धारा, मार्तण्डकी स्वर्णवृष्टि-वह मोमकी पुतली नहीं जो इन नैसर्गिक आनन्दोत्सवोंके समय कहीं कोनेमें छिप जाय। वह लौह-पुरुष है और अपने गुहाद्वारके उन्नत मस्तक खड़े शालतरुके समान प्रकृतिकी क्रीड़ाओंमें उन्मुक्त गगनके नीचे उसे आनन्दानुभव होता है।

नैकषेय—बेचारे राक्षस—कापुरुष हैं वे। वह कोई प्रतिरोधहीन तपस्वी नहीं कि गाजर-मूलीकी भाँति

उदरस्थ हो जायगा। बलिष्ठ भुजदण्डोंमें वनराजको उठाकर उसने जब एक शिलापर दे मारा, तो उसके लिए व्याघ्रचर्म उतारना वैसा ही रह गया, जैसे ऋषि वृक्षोंसे वल्कल उतार लेते हैं। उसकी कटिका वह आच्छादन देखकर भी राक्षस साहस कर सकते हैं ? करें—उसे इतना अवकाश नहीं कि इन व्यर्थकी बातोंको सोचे। एक धक्केमें मत्त गजराजको ढूह-सा ढहा देनेका जिसके शरीरमें बल हो, जिसके हाथोंमें वाराहके दन्त खींच लेनेकी स्फूर्ति हो, जो महासर्पके ऊपर वामपाद रखकर उसको पुरानी बाँसकी लाठीकी भाँति चीर देनेका शौर्य रखता हो, वह यह व्यर्थ बातें क्यों सोचे ?

चण्ड—उसके इस नामके अतिरिक्त कोई नहीं जानता कि वह कौन है। कटिमें व्याघ्रचर्म लपेटे वह कज्जलकाय सुपुष्ट भील तरुण कब यहाँ आ बसा, कौन बतावेगा। दण्डकारण्यके असुर उससे दूर ही रहना चाहते हैं। उसकी गुहाकी ओर भूलकर आ जाना तो कल्पनासे बाहरकी बात है, जब वह वनमें किसी सुपक्व तरुको तना पकड़कर झकझोरता होता है, जब वह फल या कन्दके लिए कहीं प्रस्थान करता है, उसके मार्गको छोड़कर क्रूर जीवजन्तु एक ओर खिसक जाया करते हैं। उसकी मैत्री है कपियों, ऋक्षों एवं मृगोंसे और इनके दल उसे घेरे ही रहते हैं। उसके साथ निःशङ्क फल, मधु-छत्रक एवं हरित तृण जो प्राप्त होते हैं।

निश्चय वह दक्ष धनुर्धर होगा। उसकी कलाइयोंपर ज्याके चिह्न कोई भी लक्षित कर सकता है। उसके त्रोण, धनुष, बाण पता नहीं कब कहाँ डाल आया वह।

आखेटकी आवश्यकता न रहनेपर भार-वहन कौन करे। आततायीको दण्ड देनेके लिए उसकी भुजाओंमें पर्याप्त शक्ति है और पाषाण एवं तरु किस बाणसे कम आघात करते हैं। आज तो उसकी आवश्यकता वन्य फल, मूल एवं पुष्पोंतक सीमित हो चुकी है।

अपनी गुहाके भीतर प्रायः वह किसलय-दलों एवं पुष्पोंको एकत्र करके ले जाता है। निर्माल्य सरिताके वक्षपर जब प्रवाहित होते हैं, वह वनमें पुष्पचयनमें लगा होता है, उन वज्रकर्कश-करोंमें इतनी कोमल कला है, उस लौह शरीरमें इतना भावुक हृदय है, कौन समझ सकता है। जब वह अपनी गुहामें किसलयदलोंका आस्तरण करके उनपर पुष्पचित्र बनानेमें तन्मय हो जाता है, कोई भी समझ लेगा कि दैत्यराज मय ही गुहागर्भमें मूर्ति बन गये हैं।

जब अंशुमाली मध्यगगनसे प्रतीचीका अभिनन्दन स्वीकार करनेको समुत्सुक हो उठते हैं—अपने कुसुमास्तरणसे निवृत्त होकर वह गुहासे बाहर आता है। कौन जाने वह लास्य है या ताण्डव, दोनों हाथ उठाकर कुछ पुकारते हुए उसका अद्भुत नृत्य प्रारम्भ होता है और जब नृत्यावेशमें उसके हाथ ताल देने लगते हैं, सम्पूर्ण अरण्य प्रतिध्वनिसे काँपने लगता है। मृगराज चुपचाप अरण्यकी ओर भागते हैं और पक्षी वृक्षोंपर बैठने नहीं पाते। वे उड़ते हैं और अपनी ध्वनिसे वनको अत्यधिक ध्वनिपूर्ण करते हैं। आप यदि इसे अर्चना कहना चाहें तो यह अर्चना पूरे डेढ़ प्रहर चलती है। तब वह

भूमिपर लेट जाता है चुपचाप। अपनी गुहाको दण्डवत् प्रणिपात करनेके पश्चात् सन्ध्याकी सिन्दूरी अरुणिमामें उसे अपने लिए भी कुछ चाहिये—यह सोचनेका अवकाश मिलता है। कौन जाने, यदि आराध्यको कन्द-मूल दिखलाने आवश्यक न हों तो वह उनका स्मरण करे या नहीं।

एक ऊँची शिला है गुहाद्वारके सम्मुख शालतरुके मूलमें। वीरासनसे उसपर एक बार बैठनेपर उसे तभी उठना पड़ता है जब प्रातः पक्षियोंका कलरव उसे यह कहता जान पड़ता है कि 'कलके पल्लव एवं सुमन अब सरितामें स्नान करना चाहते हैं। उनका स्थान अब आजके वृन्तोंपर झूमते सुकुमार अभ्यागतोंको प्राप्त होने दो!'

वह सोता तो है ही। देवता भी तो सोते हैं—मनुष्य होकर न सोये तो रहे कैसे। वह पुरुष है और पुरुषकी भाँति ही सोता है। आपने सुना होगा कि श्रेष्ठ अश्व खड़े-खड़े सो लेते हैं। वह बैठे-बैठे पलकें आवृत्त कर लेता है। पैर फैलाकर—यह तो बच्चोंकी भाँति सोना है। वह यही सोचता है, बराबर यही सोचा करता है—'उसके आराध्य पैर फैलाकर नेत्र बन्द करके बच्चोंकी भाँति सो जाते हैं।' अनेक बार उसे लगा है कि उसके उन महत् प्रतीकोंमें-से अत्यन्त सुकुमार दो श्याम-गौर कु मार निकलकर उसके कुसुमास्तरणपर पैर फैलाकर भोले शिशुओंको भाँति सो गये हैं।

दिवसके पुण्य प्रकाशमें तो उन्मुक्त स्वच्छन्दता है, पर रात्रिके नीरव कक्षमें जब उसके आराध्य विश्राम करते

हैं, कोई शब्द भी करे—यह सह्य नहीं है। उसे इसीलिए निशाचरोंसे घृणा है और कौन जाने कि उसकी इस घृणाने ही उन प्राणियोंको इस प्रदेशसे निर्वासित कर दिया हो। जब गगनमें तारक शिशु अक्षिप्रमिलन खेलते हैं, जब धूप-छाँहकी क्रीड़ामें वृद्ध शशाङ्क उनको प्रोत्साहित करने पहुँच जाता है, जब किरण-बालिकाएँ सरोवरमें स्नान करके पत्रोंपर अपनी अलकोंका सीकरजाल विस्तीर्ण कर जाती हैं, वह शान्त स्थिर बैठा अपनी गुहाकी ओर देखा करता है।

जब गगनमें विजय-दुन्दुभी बजने लगती है, जब क्षण-क्षणपर आलोकमालाके कौतुकसे देवगण अपने-अपने आमोदमें निमग्न रहते हैं, जब गगन आर्द्र आच्छादन-पटोंसे आलोक-रेखाको अपनेमें अन्तर्हित कर लेता है और जब सुरेश उल्लासमें जगतीको वारिधारासे सम्मार्जित करनेका कर्तव्य पूर्ण करनेमें लगे होते हैं, अमाके उस सूचीभेद्य अन्धकारमें भी उसके नेत्र अपनी गुहाद्वारका निरीक्षण करते रहते हैं अत्यधिक तन्मयता, सावधानी एवं तत्परतासे। यही तो समय है जब कोई जीव दृष्टि बचाकर आश्रय-स्थलपर अधिकार करनेका प्रयत्न कर सकता है।

वह वन्य प्रकृतिका मर्मज्ञ है। गुहाद्वार दूरतक तृण एवं लताओंसे अनाच्छादित है। भूमिपर सर्षपाकृति रेणुकाके आस्तरणने सरीसृपोंका सर्पण अशक्य बना रक्खा है। क्षुद्र जन्तु मूषक, शशक ही आ सकते हैं और उनके आनेका भी एक ही मार्ग है। शेष भाग सुचिक्कन खड़े पर्वतसे निरापद है। मार्गको सायंकाल ही वह विशाल

शिला-खण्ड रखकर रुद्ध कर देता है। इतनेपर भी सावधान तो रहना ही चाहिये।

क्यों करता है वह यह सब? जितना उल्लास, जितनी शान्ति, जितना आनन्द उसके मुखमण्डलपर स्थिर भावसे निवास करता है—क्या यही इसका पर्याप्त उत्तर नहीं। वह नहीं जानता कि दूसरे सदा कपियोंके समान किचकिच किया करते हैं किसलिए? यह तो एक ऐसा प्रश्न है जो मानव कभी अपने-आपसे सत्यतापूर्वक नहीं करता और करता भी है तो वह उत्तर सुननेको कभी प्रस्तुत नहीं रहता।

(२)

'मैं क्या करूँ?' महर्षि मतङ्गने देखा कि एक बलिष्ठ तरुण आश्रमभूमिमें उपलिप्त भागकी परिखापर मस्तक रखकर प्रणिपात कर रहा है। शिष्योंका सामगान समाप्त हो चुका था। हवनकुण्डसे अग्निदेवकी तेजोमय लपटें सुरभित हविधूमके साथ महर्षिकी मङ्गल-कामना निखिल त्रिलोकीमें प्रस्तीर्ण करने अन्तरिक्षमें अन्तर्हित होती जा रही थीं। समीपके धूम्र-कलुष तरुपत्र साक्षी थे कि इस एकाकी अरण्य-आश्रमने विश्वको कितनी सुरभि प्रदान की है। तरुण घुटनोंके बल बैठ गया। उसने अञ्जलि बाँध ली और भरे कण्ठसे किसी प्रकार अवनतमुख करके पूछ सका।

'कौन होगा यह?' आहवनीय कुण्डके समीप कटिमें मेखला बाँधे, हाथोंमें ब्रह्मदण्ड लिये साक्षात् अग्निके

समान तेजस्वी ऋषिकुमारोंने एक दूसरेकी ओर देखा। आचार्यके त्वरापूर्वक उठनेसे उनमें जिज्ञासा जाग्रत् हुई। समीप कोई भिल्ल-पल्ली नहीं। तरुण आकृतिसे कठोर-प्रकृति पुरुष प्रतीत होता है। असुर इस आश्रममें आते नहीं। दक्षिणाग्निके कुण्डपर कृष्ण मृगचर्मका उत्तरीय बनाये आर्य वीरश्रवाके हाथका स्रुवा उनके लिए यमदण्डसे कम भयङ्कर नहीं। अश्वत्थके नीचे वे दण्डधरकी भाँति इसीलिए तो अप्रमत्त स्थित रहते हैं। अथर्वशिरसके सस्वर मन्त्रोंके साथ आहुति सम्हालनेपर वे बलि एवं महेन्द्र, दोनोंके लिए अविसह्य हैं।

'कल्याण हो भद्र!' वह वलीपलित वरद-हस्त उठा। उसकी अभय छायाका सौभाग्य तो अमरोंका भी सदा ईप्सित रहा है। करुणाके भारसे वे महत्तम झुके। रजतवर्ण जटाजाल, श्मश्रु एवं रोमराजिमें घनीभूत सत्त्व आज अपने चरणोंमें उपस्थित शौर्यपर सानुकूल था।

'मैं अस्पृश्य हूँ देव!' तीव्रतासे तरुण तनिक दूर हट गया। 'शरीरसे भी और कर्मसे भी।'

'भीतिका कोई कारण नहीं। तुम इतने आर्त क्यों हो वत्स?' महर्षिके कण्ठमें वात्सल्य साकार हो उठा था।

'नहीं जानता, मेरा क्या होगा?' आज आखेटमें उसने एक मृगीपर बाण चलाया। जब पहुँचा तो जो कुछ भी उसने देखा, एक हृदय रखनेवाली आँखोंके लिए वह असह्य था। उदर उस प्राशुशरसे विदीर्ण हो गया था। तीन मांसके लोथड़े पृथ्वीपर कुछ चेष्टा कर रहे थे। उन अपूर्णाङ्गोंमें जीवन आ चुका था। मृत मृगीके नेत्र जैसे

अपने वधिकको देख रहे थे। घृणा-भर्त्सना-तिरस्कार, पता नहीं कितने भाव थे उन नेत्रोंमें। दोनों हाथोंसे उसने नेत्र बन्द कर लिये और वहीं बैठ गया। बड़ी देरमें उठा और जब मतङ्गाश्रमके पालित मृगोंने उसे देखा तो उसके पास न त्रोण थे और न धनुष।

पश्चात्ताप—'इससे महत्तम कोई प्रायश्चित्त नहीं। करुणार्णव श्रीभगवान्‌पर विश्वास करो।' महर्षिने प्रश्नोंका विस्तार अनावश्यक समझा। उनके लिए जिज्ञासा कोई अर्थ नहीं था।

भगवान्—'कहाँ मिलेंगे वे मुझे?' पता नहीं उस अपठित वन्य-मानवने महर्षिके उपदेशका क्या अर्थ समझा।

'जहाँ तुम चाहो!' महर्षिने कोई क्षोभ नहीं प्रकट किया। 'उनको पुकारो, उनकी पूजा करो! उनका नाम लो।'

'बड़े अच्छे हैं वे!' तरुणने सम्पूर्ण विश्वाससे कहा। 'उनको पाये बिना उनकी पूजा कैसे करूँगा?'

'उनकी मूर्ति रख लो! एक कृष्णवर्ण पाषाणकी और एक गौर वर्णकी! एक दिन वे आयेंगे, यदि तुम उनकी श्रद्धासे अर्चना करते रहोगे।' आप चाहें तो इसे दीक्षा कह सकते हैं।

'अच्छा, वे दो भाई हैं। एक काले हैं और एक गोरे। मैं आज ही पर्वतसे बड़ी-बड़ी मूर्ति ले आऊँगा।' शोक बालोचित प्रसन्नतामें परिवर्तित हो चुका था। 'वे मुझे क्षमा कर देंगे?'

'वे आवेंगे और एक रात्रि तुम्हारे आश्रममें शयन करेंगे। तुम्हारे सब पाप-ताप उनके स्मरणसे ही नष्ट हो जायँगे।' उन त्रिकालदर्शीको अधिकारी परखनेमें कितने क्षण लगते थे।

'वे सो जायेंगे !' एक क्षणको वह कुछ सोचने लगा और तब अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला 'तो वे पैर फैलाकर बच्चोंकी भाँति चुपचाप सो जायँगे।'

जैसे किसी भिक्षुकने कुबेरके कोषगृहका पता पा लिया हो और चुपचाप भागे। उसे भय हो कि किसी दूसरेको पता लगनेपर भाग देना पड़ेगा। तरुणने पुनः भूमिपर मस्तक रक्खा और सीधे दक्षिणकी ओर भागा। उसने निर्झरके किनारे आज प्रातः एक गुहा देखी है ! सीधे गुहाके समीप गया। भली प्रकार पर्वतके उस अन्तरालको स्वच्छ करके, जितनी बड़ी शिलाएँ उससे उठ सकती थीं, उतनी बड़ी एक कृष्ण वर्ण तथा एक श्वेत शिला लाकर उसने गुहामें स्थापित कीं। ऋषियोंको शालिग्रामजीका पूजन करते उसने देखा है। मूर्ति ही रखनी है तो छोटी क्यों रक्खी जावे। गोल-गोल विशाल शिलाएँ ले आया वह।

× × ×

'तो तुम नहीं सोओगे ?' उसने तो सोचा था कि उसके श्याम-गौर दोनों भगवान् उसके कुसुमास्तरणपर पैर फैलाकर बच्चोंकी भाँति पास-पास सो जायँगे। ऐसे नहीं हुआ। छोटे गोरे कुमार धनुष-बाण लेकर उसकी

उसी शालमूलमें स्थित शिलापर उसीके समान वीरासनसे बैठ गये। वह शिलाके नीचे बैठ रहा। उसके रहते भला गुहा-द्वारकी रक्षाका श्रम इन कुमारोंको क्यों करना चाहिये।

'आज तुम सो जाओ' छोटे कुमारने किञ्चित् हास्यके साथ कहा। इस भावुकके सान्निध्यमें मानव-नाट्यका आवरण आते ही अनावृत हो चुका था। उन जगद्गुरुसे यह कहाँ छिपा था कि वे जिस आसनपर विराज रहे हैं, वहाँ इसी प्रकार बैठकर रात्रियापनका अधिकार किसने दीर्घकालसे अपना बना लिया है।

'बड़े अच्छे हो तुम! मेरे भगवान् बच्चोंकी भाँति अपने लाल-लाल पैर फैलाकर सो रहे हैं और मैं सो जाऊँ! तुम्हारे लिये यहाँ पत्ते और फूल बिछा दूँ?' रात्रि हुई तो क्या। उसे किसलय एवं पुष्पचयनमें इस समय भी कौन रोकेगा।

'मैं तुम्हारे पाषाणपर अधिकार किये बठा हूँ। इसे अब तुम नहीं पा सकोगे!' छोटे कुमारने परिहास करके उसे अप्रतिभ करना चाहा। इसी प्रकार तो आते ही उन नवजलधर श्यामने भी कहा था 'चण्ड! आज हम तुम्हारी गुहाके निवासी बनेंगे। तुम कुछ भी कहो, यह गुहा आज हम तुम्हें नहीं देंगे।'

शबरीके बेर यदि चण्डकी गुहामें न पचेंगे तो और कहाँ पच सकेंगे। यहाँ आकर शोकनाट्य अनावश्यक हो गया था और चण्ड—वह तो एकटक देखता ही रह गया था। अपनी विशाल शिला-मूर्तियोंमें वह जिन्हें

बराबर देखता रहा है, आज वे उसके सम्मुख खड़े हैं। आज उससे न तो बोला जायगा और न कन्द-मूल ही एकत्र हो सकेंगे। सन्ध्याकी उड़ती अबीरमें इन वल्कल-वसनधारी दोनों दिव्य-कुमारोंने आकर उसे जड़-मूर्ति बना दिया है। उसकी मूर्तियाँ आज इन रूपोंमें चलने और बोलने लगी हैं और वह स्वयं जड़ हो गया है। वह एकटक देखता रहा, देखता रहा और तबतक देखता ही रहा, जब तक सायंकृत्य समाप्त करके दोनों कुमार गुहामें गये। वह तब भी देखता रहा जब छोटे कुमारने अग्रजके चरण दबाने प्रारम्भ किये और तब भी देखता रहा जब वे गुहासे निकलकर उसकी शिलापर बैठ गये। वह समीप ही बैठ गया।

'चण्ड ! तुम हमारे साथ चलोगे ?' इस समय तो सौमित्रिको भी आश्चर्य हुआ। श्रीराघवेन्द्रने अवधसे अबतक संग चलनेका कितनोंका अश्रुपूर्ण आग्रह अस्वीकार कर दिया था और आज वे स्वयं इस भील तरुणको आमन्त्रित कर रहे हैं !

प्रातःकृत्य समाप्त हो चुका था। पता नहीं क्यों चण्डको आज किसलय एवं कुसुमास्तरणको समेट कर प्रवाहमें समर्पित करना उचित नहीं प्रतीत हुआ। निर्माल्य विसर्जित करनेकी इच्छासे वह गुहामें जाकर लौट आया। दोनों कुमारोंने जटामुकुट व्यवस्थित किये। त्रोण कसा और कंधोंपर धनुष रखकर वे चलनेको प्रस्तुत हुए।

'मेरे भगवान् ! मैं कहाँ जाऊँगा ?' चण्डका कण्ठ आर्द्र हो गया था। उसके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु थे; किंतु विह्वलता या व्याकुलता कहना उसके साथ अन्याय होगा।

रामानुज यह देखकर और भी चकित थे कि इस भीलने प्रभुके साथ चलनेका आग्रह भी अस्वीकार कर दिया। इतने धैर्य, इतनी शान्ति एवं इतने प्रफुल्लभावसे श्रीराघवेन्द्रको विदा दे सकनेमें तो कोई महर्षि भी समर्थ नहीं हुए हैं।

'तो तुम आतिथ्य भी न करोगे हमारा? हमें भूख जो लगी है!' कौन जाने कि उन सर्वात्माको कैसी भूख लगा करती है। चण्डने मस्तक झुकाया और कन्द-मूल लेने वह वनमें चला आया।

× × ×

'हमने वचनोंसे भी उसका सत्कार नहीं किया!' परमोदार, जीवोंके नित्य सहायक आज एक भीलपर द्रवित हो रहे थे। आज प्रथम अवसर था कि उनके अग्रज एक श्रद्धालुका सत्कार पाकर भी उसे बिना कुछ दिये चले आये थे। उन असीम करुणा-पारावारके पास कार्पण्य तो नहीं है। तृण एवं जलके बदले तो वे अपने-आपको दे डालते हैं। एक अपढ़ भोला प्राणी, पता नहीं कितने वर्षोंसे प्रतीक्षामें कुसुमास्तरण करता रहा है और आज उसकी प्रतीक्षा सफल करके भी वे उसे कंगाल ही छोड़ आये हैं।

'राघव कंगाल है लक्ष्मण! वह उसे क्या देगा?' भर आये दोनों जलजारुण दीर्घनयन। 'क्या नहीं है उसके समीप जो उसे दिया जा सके। उसकी इच्छा, उसका मन, उसकी बुद्धि, कहीं भी कुछ चिह्न चाहका हो तो उसकी पूर्ति हो।'

'हमने उसे प्रतारित किया।' मर्यादा-पुरुषोत्तम किसीसे मिथ्या नहीं बोलते। किसी दुर्बलको व्यथित करके सुखानुभव करनेकी जो प्रवृत्ति सबल सम्पन्नोंमें होती है, वह तो उन दीनबन्धुमें है नहीं। भला जब वनसे फल-मूल लेकर वह भावुक तरुण लौटेगा और हम दोनोंको अपनी गुहामें न देखेगा तो उसे कितनी वेदना होगी। यह सब अग्रजसे कुमार न कह सके; किंतु उनके स्वरने सब कह दिया।

'कल शबरीके सुस्वादु बेर मिले थे और आज चण्डके कन्द-मूल-फलोंने वल्कल भर दिया है।' बिना उत्तर दिये श्रीरघुनाथ एक शिलापर आसीन हो गये। उन्होंने उत्तरीय फैला दिया और लक्ष्मणने देखा कि सुस्वादु फल-कन्दादिका एक अच्छा संग्रह अग्रज साथ ले आये हैं। 'क्या सोच रहे हो? चण्ड हमारे साथ नहीं आया तो हम उसके साथ रहनेको विवश हैं। तुम तो जानते हो कि उसके प्रतीक अब प्रतीक नहीं रह गये हैं।'

रामानुजने अब तथ्य अवगत किया। अग्रजके चरणोंपर उनके नेत्रबिन्दु गिर रहे थे और वहाँ अपनी गुहामें चण्ड फल-मूल अपने उभय प्रभुओंके सम्मुख रखकर बाहर उद्दाम नृत्यमें तन्मय हो रहा था। उसे विश्वास था कि भगवान् भूखे हैं और उसका सब फल-मूल वे ग्रहण कर लेंगे। भगवान् चले गये—यह कैसे सम्भव था। यह तो वह अपढ़ भी माननेको प्रस्तुत नहीं था।

अव्यक्तोपासक

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

मर्मर पत्रोंपर ज्योत्स्नाकी धवल चादर बिछाकर हिमांशु निद्रित जगतीके ताप निवारित कर चुका था। तरुओंने अपने समस्त पत्र त्याग दिये थे। उनकी शाखा एवं टहनियाँ अपने ही पादतलमें पड़े तलोंपर केवल एक छायाचित्र बना रही थीं। इससे प्रकाश बाधित नहीं, भूषित हो रहा था। पत्रहीन अश्वत्थके मूलमें वे वनदेव ही तो नहीं विराजमान हैं। नीरव रजनी, सुनसान कानन और उसमें एकाकी तरुण। अपने त्यागमय वनका वह अधिष्ठाता ही जान पड़ता है। गौरवर्ण, कृशकाय, भव्याकृति शान्त बैठी थी। अर्धोन्मीलित लोचन बाह्यको छोड़कर अन्तरमें ही कुछ देखनेमें निमग्न थे।

'वह शाश्वत है और स्थिर है!' तरुण अपने आप ही सोच रहा था। 'है वह इस समस्त मायिक मिथ्या प्रपञ्चका अधिष्ठान, अतः उसका साक्षात् हृदयमें होना ही चाहिये।'

एक बार गोदमें पड़े विकसित पद्मके समान दोनों हाथ हिले। नेत्र खोलकर उसने देखा। एक भोला मृग-शावक अपने दीर्घ नेत्रोंसे उसीको देख रहा था। 'कितना सुन्दर प्राणी है !' तरुणने पुचकारा और उसके शरीरपर हाथ फेरने लगा। मृगने उसके कंधेपर मुख रख दिया और नेत्र बन्द करके निश्चिन्त हो गया।

एक कठोर गर्जनसे कानन कम्पित हो गया। मृग चौंका, अपने आश्रयदातापर निर्भर रहना उसे निरापद न जान पड़ा। उसने बड़ी शीघ्रतासे छलाँग भरी और झाड़ियोंमें दृष्टिसे बाहर हो गया। तरुण उसकी ओर देख रहा था। सहसा दो मशालें चमकीं। स्वर्ण-पीत वर्णपर काली धारियाँ बड़ी भव्य जान पड़ती थीं। चड़मड़-चड़मड़ करते पुट्ठे अपनी शक्तिकी सूचना दिया करते थे। वह एकाकी होकर भी वनराज है। उसके चलनेकी गरिमा ही यह सिद्ध करती है। वह अपने प्रदेशका निरीक्षण करने ही निकला था। क्षुधाकी क्रूरता उन नेत्रोंमें नहीं थी। तरुण देखता रहा। शेर समीप आया, उसने तरुणको देखा और उपेक्षापूर्वक एक ओर चला गया।

'वह सर्वव्यापी ही मुझमें, मृगमें, इस व्याघ्रमें व्याप्त है !' हृदयकी गति अनायास बढ़ गयी थी और रोमराजिने मस्तक उठा लिया था। भय तो इसे कहना कठिन है; किंतु अकारण ही आशङ्का उत्थित हो गयी थी। तरुण उस दूर जाते वनराजसे दृष्टि हटा लेना चाहता था। "इस प्रकार कहीं तत्त्वका चिन्तन होता है। वह अचिन्त्य है। सब कहीं है, इस प्रकार चिन्तन करनेसे तो सब पदार्थ ही मनमें आवेंगे। सारे चिन्तनोंसे 'नेति-नेति' के

मार्गसे मनको विरत करना है।" उसने आसन छोड़ दिया और एक ओर चल पड़ा।

'मृग और मृगेन्द्र - दोनों सुन्दर हैं। दोनोंमें अपना-अपना आकर्षण है। यह कुसुम !' उसने समीपके वृन्तपर-से एक उत्फुल्ल सुमनको तोड़ लिया। सहज ही दृष्टि उधर चली गयी थी, इसी प्रयत्नमें पैरोंमें एक काँटा चुभ गया। बिना सी किये झुककर उसने काँटेको निकाल लिया 'और यह काँटा भी—सब अपनी विशेषता रखते हैं। सबमें अपनी मधुरिमा है।' एक बार काँटेको ध्यानसे देखकर उसने पुष्पके साथ ही उसे भी फेंक दिया।

'वही है और उसीके कारण सबकी सत्ता है। सबमें सौन्दर्य है, आकर्षण है, जीवन है।' उसने एक सरोवरके जलमें दोनों पैर डाल लिये थे और एक तटकी शिलापर वह बैठ गया था। उसका ध्यान इधर नहीं था कि चञ्चल मछलियाँ किसी सुस्वादु भोज्यके भ्रमसे उसके अरुण, सुकोमल पदोंको अपने दन्तहीन मुखोंसे बार-बार स्पर्श कर रही हैं। वह अपनी धुनमें था। 'वह अव्यक्त है सबमें। यह सुषमा, राग एवं जीवन उसे व्यक्त नहीं करते। ये नाशवान् हैं और वह अविनाशी है। इनके द्वारा उसका निर्देश शक्य नहीं। उसका तो किसी भी प्रकार निर्देश नहीं होता।'

'ओह, व्याघ्रने उस भोले मृगको मार डाला!' तरुणने देखा कि मृगराज समीप ही जल पी रहा है। उसके मुख एवं पंजे रक्ताक्त हो रहे हैं। किसी पशुका आखेट किया होगा उसने। पता नहीं क्यों तरुणके मनमें

वह मृग ही आया। 'जिसकी जो प्रकृति है, वह उसका अनुगमन करेगा। जिसका जो प्रारब्ध है, वह उसे भोगेगा। स्वप्नके दृश्योंमें न्यायान्यायकी कल्पना भ्रान्ति है।' उसने बहुत चेष्टा की; किंतु आज मन यह सब इस प्रकार स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं था। अन्ततः गुरुदेवके श्रीचरणोंमें प्रार्थना करनेका उसे निश्चय करना पड़ा।

(२)

'मेरे बाण पाणाणको द्रवित करनेमें असमर्थ हैं!' पुष्पपुरुषने मस्तक झुकाया। मल्लिकाकी मादक सुरभिसे सुधर्मा-सभा झूम उठी। स्वरोंमें एक विषादका भार होनेपर भी अद्भुत झंकृति थी। गन्धर्वोंके वाद्य मूक हो चुके थे और पाटलके अरुणाभ आस्तरणपर देवबालाएँ प्रतिमाओंकी भाँति निष्कम्प स्थिर थीं। सहस्राक्षके समस्त नेत्र मकरध्वजको देख रहे थे। 'भगवान् दत्तात्रयके पावन पदोंमें प्रणाम! वे देवदेव अपने प्रिय शिष्यके प्रति की गयी इस चञ्चलकी उच्छृङ्खलताको क्षमा करें!'

बड़ी भव्य है भारतभूमि। सुरासुरजयी मीनकेतु भी यहाँ आकर सदा विजयकी आशा नहीं कर सकते। आज पराजित काम लज्जित नहीं थे। वे यदि हारे हैं तो उसी आर्यभूमिमें और वह भी भगवान् दत्तके एक प्रिय अनुचरद्वारा। अप्सराएँ तो इस प्रकार अवस्थित हो गयी थीं, जैसे कहीं गयी हो न हों। वे पारिजातकी सुरभिसे यात्राजन्य क्षुधाक्षीणता निवृत्त करनेमें लग चुकी थीं।

'नासिका-गोलकसे यदि कोई नासिकेन्द्रियको पृथक् कर दे तो मेरे सुमनोंका सौरभ क्या शक्ति प्रदर्शित करें।' महेन्द्रका संकेत पाकर वसन्तने युद्धक्षेत्रका विवरण दिया। 'कोकिलकी काकली एक बार श्रवणोंमें पड़ी और बस— वह बहिरा बन गया। अप्सराओंके नूपुरोंकी रुनझुन एवं कण्ठोंका कलगान वहाँ मृतप्राय कर्णकुहरोंमें गया तो और न गया तो। नेत्र तो प्रथमसे ही निमीलित थे और एक ध्यानस्थके मुखमें क्या दिया जा सकता है, रसद्वारा उसे लुब्ध करनेको। एक ही साधन था स्पर्श। घृताची तो चीख ही पड़ी थी उन स्थिर करोंको स्पर्श करके। बेचारीको क्या पता कि भगवान् दत्तके शिष्य जब समाधिमें स्थित हो जाते हैं तो उनका शरीर शवकी भाँति शीतल हो जाता है और उनका हृदय भी गति शिथिल कर देता है। हम जीवितको प्रभावित कर सकते थे। वह तो एक योगीका जड़ शरीर था।'

समस्या कठिन थी। सम्पूर्ण ऐश्वर्यसम्पन्न राज्यको जो चरणोंसे ठुकरा आया है, वह अमरावतीके सिंहासनसे कम तो क्या चाहेगा। महेन्द्रके लिए किसी तापसको सशरीर स्वर्ग देना बहुत कष्टकर नहीं था। प्रश्न अपने पदका था। इसी समय वीणाकी झंकृति श्रवणोंमें पड़ी। देवसभा ससंभ्रम उठ खड़ी हुई अभ्युत्थानके लिए।

'तुम क्रमशः प्रलोभनके विषय प्रस्तुत करो और वह भी धराकी परिस्थितिके अनुरूप। एक साथ सबको भेजकर सतर्क मत करो मानवको।' अर्घ्य स्वीकार करके

देवर्षि नारद आसनासीन हो चुके थे। देवेन्द्रसे उनकी विपत्ति सुनकर आश्वासन दिया उन्होंने।

\+ \+ \+

'वत्स ! जो मिथ्या है, उससे भय कैसा ? बाह्यसे भयवश सदा अन्तरमें समाधिस्थ रहनेका प्रयत्न सूचित करता है कि मिथ्याका मिथ्यात्व केवल बुद्धि-प्रतिपादित है। हृदयने उसे स्वीकार नहीं किया। राग-द्वेषसे रहित समबुद्धिके लिए तो समाधिकी आवश्यकता है नहीं।' आज मानव तपस्वी देवर्षिको अपनी अर्चा निवेदित करके धन्य हो गया था। देवर्षिने उसे उपदेश किया एवं आशीर्वाद देकर वहीं अन्तर्हित हो गये।

'देव !' वह सौन्दर्यकी प्रतिमा अपने-आपमें संकुचित हो रही थी। तापसके सम्मुख उसने एक स्वर्णथाल अनावृत कर दिया। सुरभिसे दिशाएँ पूर्ण हो गयीं। स्वादुभोगोंसे वह पूर्ण था और उसके पदार्थोंसे अधिक आकर्षक था निवेदित करनेवालेका अनुरोध। वह एक ओर सिकुड़कर खड़ी हो गयी थी और अपने दीर्घ नेत्रोंमें अपार आग्रह भरकर तापसकी ओर देख रही थी।

'गुरुदेव !' एक क्षणको तापसके नेत्र बन्द हुए। वह कर्तव्यका निश्चय कर लेना चाहता था 'मेरे लिए शास्त्र इन भोगोंको उपयोग करनेकी आज्ञा नहीं देते। देवि ! तापस केवल वन्य कन्द एवं फल लेते हैं और वह भी ऋतुके अनुरूप जो स्वेच्छासे प्राप्त हों ! मेरे समीप इस समयके लिए कन्द हैं।' धूनीमें भूकूष्माण्ड भुन चुका था।

एक पत्तेपर उसे निकालकर उसने शीतल किया और वह कषाय कन्द तापसके लिए उन सुरभित पक्वान्नोंसे कम स्वादु नहीं प्रतीत हुआ।

'बाहर जब कोलाहल होता है, तब अपने-आपमें एकाग्र होकर सुनायी पड़नेवाला वह दिव्य अनहद नाद सम्पूर्ण कोलाहलोंमें व्याप्त है, वह प्रत्यक्ष हो जाता है।' आगत तरुणी गयी ही थी कि एक ओरसे कोई सुमधुर संगीत ध्वनि आयी। तापस तन्मय हो गया। ध्वनिमें नहीं, ध्वनियोंमें एकरस व्यापक जो अव्यक्त नाद है, उसमें। यही नाद तो उसने पावसकी घोर रजनीमें बूँदोंके पत्र एवं शिलाओंपर पड़नेवाले शब्दमें उपलब्ध किया था। इसी नादको उसने लक्षित किया है जलदके गर्जन एवं निर्झरोंके कलकलमें।

'आओ!' झंकृति समीप आती गयी और तापसने एक चन्द्रमुखीका अभिनन्दन किया। 'मेरे इस काननमें ठीक ऐसे ही नेत्रोंवाले मृग रहते हैं। तुम्हारे इन करोंकी भाँति ही अश्वत्थके ये नवपल्लव अरुण एवं गतिपूर्ण हैं। गजोंका मत्त गमन मैंने देखा है और देखी है कलभोंकी क्रीड़ा भी। सुषमा केवल कोमलताका उपहार नहीं। ये बड़े-बड़े टेढ़े-मेढ़े काले-श्वेत पाषाणखण्ड, ये कण्टकमयी झाड़ियाँ.........।'

वह भूल ही गया कि उसने किसीका समादर किया है। अपने पूर्व जीवनमें वह एक निपुण चित्रकार रहा है और कलाका कुशल पारखी जब प्रकृतिके विशाल मंचपर भारतीके विविध स्वरूपोंका दर्शन करने लगा तो उसे

किसी विशेषके बन्धनमें कौन बाँध सकता है। उसे यह ज्ञात ही नहीं हुआ कि गायिका कब चली गयी।

'सब व्यक्त है, सब विनाशी है। मृत्यु-क्षय-विकृति!' एक बीभत्स स्वरूप आया उसके सम्मुख सम्पूर्ण जगतीका और दुखित होकर उसने नेत्र बन्द कर लिये। जो सबमें समबुद्धि रखकर विषयोंसे इन्द्रियोंको दूर रखता है, उसका पतन कैसे सम्भव है। समदर्शिता जब मर्यादा भूलकर समवर्तनमें परिणत होती है तो विकार जन्म पाता है उससे। समदर्शन तो सबमें समान व्याप्त महाकालका उग्र नृत्य दर्शन करके विरतिको ही स्वीकार करेगा।

'बार-बार पदार्थ एवं उनका निषेध—कहाँतक चलेगा यह।' मन बार-बार इसी मिथ्याका चिन्तन कर रहा था। वह समझ नहीं पाता था कि किस प्रकार एकरस अनिर्वचनीय निर्विकार निश्चय तत्त्वमें वह स्थिर हो। मनोनिरोध करके जिस अवस्थामें वह स्थित होता है, वह भी तो एक अवस्थाविशेष ही है। ऐसी अवस्था भी कुछ सीमित कालतक ही रह पाती है। दूसरा उपाय नहीं था। आसन लगाया, प्राणोंको संयत किया, नेत्र स्वयं भ्रूमध्यमें स्थिर हो गये। एक दिव्य ज्योतिर्बिन्दु और एक अलौकिक ध्वनि। क्रमशः वह अपनी अभ्यस्त स्थितिमें पहुँच रहा था।

(३)

'निर्मल, अच्छा तू आ गया!' अभय हस्त मस्तकपर आ गया। कर्पूर-गौरमूर्ति अपने त्रिमुखोंकी मधुर

मुस्कानसे त्रिविध तापोंको हरण कर रही थी। कमण्डलु, त्रिशूल, अक्षमालादि उपकरण धारण किये भगवान् दत्तात्रय प्रसन्नवदन अपने पदोंमें मस्तक रक्खे तापस तरुणको देख रहे थे। उनके साथके श्वानोंने एक बार वायुमें गन्ध ली और फिर सब कूँ-कूँ करते निर्मलको घेरकर पूँछ हिलाने लगे। उनका स्नेह, परिचय उनकी भाव-भंगीमें स्पष्ट था। 'उठ और प्रसाद ले ले!'

गिरिनारके गर्भमें विस्तृत प्राङ्गणके मध्य विशाल कटाह अग्निपर क्षीर लिये उबल रहा था। कहींसे शृङ्गनाद हुआ। पत्तोंकी पंक्ति स्वतः विस्तृत हो गयी। बड़ी-बड़ी कपिश, श्वेत, अर्धकृष्ण-श्वेत जटाएँ, वृद्धशरीर शान्तमूर्तियाँ कमण्डलु लिये प्रकोष्ठोंसे निकलीं और पत्रोंके समीप बैठ गयीं। उन दिव्य सिद्धोंका वह साधनाश्रम कोई उन-सा तापस ही देख पाता है। निर्मलने अश्रु पोंछे, उठकर एक ओर खड़ा हो गया। महात्माओंने पायसका प्रसाद ग्रहण किया।

'आज एक भागीदार और है।' भगवान् दत्तके उच्छिष्ट पत्रपर बैठते हुए निर्मलने श्वानोंको पुचकारा। वे शान्त स्थिर रहे। सबने प्रसन्नता प्रकट की और जब निर्मल अपना भाग समाप्त कर चुका तो वे पंक्तिमें 'सीथ' ग्रहण करने आगे बढ़े।

'साधनमें मन तो लगता है?' भगवान् एक शिलापर आसीन हो गये। किसीने उसपर मृगचर्म डाल दिया था। निर्मलने प्रसाद-ग्रहणके अनन्तर प्रभुके श्रीचरणोंको अपनी गोदीमें ले लिया था। संत मौनभावसे समीप मंडलाकार

बैठ चुके थे। निर्मलका शरीर कृश हो गया था। मुखपर तपस्याका तेज था और नेत्र श्रद्धासे भर आये थे।

'एकके पश्चात् एक पदार्थोंका ही चिन्तन होता है। कभी सबमें व्याप्त, स्थिर एवं शाश्वत सुषमाका अन्वेषण करने और कभी सबमें स्थित अव्यक्तका सबको बाध करनेके मिस।' उसने अपने अन्तर्द्वन्द्वको प्रकट किया। 'मन उस अनिर्देश्य, अचिन्त्यमें स्थिर नहीं रहता है।'

'मन स्वयं व्यक्त है।' भगवान्‌ने समझाया। 'मनसे परे जो सत्ता है और जिसमें मेरा और तुम्हारा भेद नहीं, वही नित्य स्थिति है। मनका वहाँ स्थायित्व कैसा? त्रिविध शरीरोंसे परे जो परतत्त्व है, उसमें अवस्थितिके पूर्व मन एवं अहंसे ऊपर उठना होगा तुम्हें।'

'शान्ति—जो साधनका उद्देश्य है, वह अखण्ड बनी रहे!' निर्मलने पता नहीं भगवान्‌की वाणीका क्या अर्थ ग्रहण किया। 'शान्ति—इसे शाश्वत रूपमें उपलब्ध करना और वह भी इसी मन-जीवनमें, यही कठिन हो रहा है।'

'निश्चय ही जिसे तुम चाहते हो, वह तुम्हारा स्वरूप है।' वह मेघगम्भीर स्वर अमृतवृष्टि कर रहा था। 'किन्तु शान्ति नहीं—आनन्द चाहिये तुम्हें। पाहनोंकी निष्क्रिय शान्ति किसे अभीष्ट होगी? ज्ञानात्मिका शान्ति—एकरस प्रमाद विरहित आनन्द! वस्तुतः जीव इसीका अभीप्सु है और इसलिए कि वही उसका स्वरूप है। मन और जीवन—ये व्यक्तके विकार हैं और अव्यक्तमें इनकी गति साधनके अपार क्लेशके पश्चात् ही होती है।

साधन जब व्यक्त एवं अव्यक्तके मिथ्या पार्थक्यकी यवनिकाको नष्ट कर देता है—एक ही निर्विशेष सत्ताका साक्षात् आनन्दके अम्बुधिको अनवच्छिन्न कर दिया करता है।'

वहाँका एक-एक पल साधनकी कठोर शृङ्खलाओंसे आबद्ध था। प्रमादकी दूषित वायु उस गिरिके अन्तर्गतमें प्रविष्ट होनेमें असमर्थ ही रही है। सिद्धोंने शीश झुकाये। सहस्रोंकी संख्या उठी और प्रकोष्ठोंमें अपने आसनोंपर चली गयी। न तो कोई शब्द हुआ और न किसी प्रकारकी आकुलता लक्षित हुई। मध्याह्नोत्तर सत्संगका समय समाप्त हो चुका था। निर्मलने पीछे मस्तक घुमाकर देखा। भगवान्‌के श्वानोंके मध्य उनकी हिमधवल गौ अपने बछड़ेको चाटनेपर लगी थी और केशरी खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था।

'शुभं भूयात्!' भगवान्‌का आशीर्वाद मिला। साधनाश्रममें आनेका मार्ग वनराज ही निर्देश करते हैं और उन्हींके पीछे जाना भी पड़ता है। निर्मलने उन्हें देखते ही समझ लिया कि अब उसे जाना चाहिये। उठकर खड़ा होनेपर भी वह कुछ पूछना चाहता है। प्रभुने स्वयं कहा 'प्रदीप लेकर पथमें बढ़नेपर अग्रिम पथ क्रमशः प्रकाशमें आता जाता है।'

वनराजका कुछ दूरतक अनुगमन हुआ और आगे जब वे सम्मुख बैठ गये तो निर्मलने उनके पृष्ठभागको आसन बनाया। एक छलाँग अन्धकारमें कुछ दूर गति और जब चन्द्रमाके उज्ज्वल प्रकाशमें वह खड़ा हुआ तो

वनराज वनमें अदृश्य हो चुके थे। भूमिमें मस्तक रखकर उसने किन्हीं पदोंमें प्रणिपात किया और नीचे उतरने लगा।

(४)

'मृत्यु, यह तो जीवनका धर्म है। प्रारब्ध समाप्त होनेपर मृत्यु अनिवार्यतः आवेगी ही! पता नहीं क्यों आज ये विचार उसे शान्ति नहीं दे पा रहे थे। स्नानार्थ सरितामें उतरनेपर एक पक्षी प्रवाहमें पतित दृष्टिगत हुआ। वह भली प्रकार तैरता है और चाहता तो उसे निकालनेमें समर्थ था। महाकालकी क्रीड़ाका दर्शन करता वह पक्षीकी ओर दृष्टि लगाये प्रारब्ध एवं उसके परिपाककी मीमांसा करनेमें लगा रहा। अब लगता है कि कोई त्रुटि हो गयी। हृदयमें एक वेदना है, एक उलाहना है और बुद्धिके समस्त तर्क वहाँ व्यर्थ हो रहे हैं।

'जीवन एवं आनन्द, दोनों दृश्यमें भ्रान्ति हैं। उनसे तटस्थ रहनेमें ही कल्याण है।' वह किसी प्रकार अपने मन-क्लेशपर विजयी होनेका प्रयास कर रहा था। 'मृत्यु एवं क्लेश भी उसी प्रकार भ्रान्ति हैं। दोनोंमें समान अवस्थिति ही तो आदर्श है।'

पता नहीं वह कबतक सोचता रहा। उसे चौंकाया उसे घण्टानादने जो अपनी प्रणवकी ध्वनिमें अन्तर्बाह्यके भेदको विलुप्त करता समीप आता जा रहा था। शिलापर उसने अपना ही उत्तरीय डाल दिया। भगवान्‌की कपिलाके कण्ठमें बँधे घण्टानाद को वह पहचानता है।

इतना भी अवकाश नहीं मिला कि समीपकी स्वर्णयूथिकाके कुछ सुमन वह ले सके। उन पावन पदोंकी पूजा नेत्रोंके उज्जवल पुष्पोंने सम्पूर्ण की।

'समदर्शन यह आज्ञा नहीं देता कि समाचरण किया जाय।' भगवान् दत्तने आसन स्वीकार करनेके अनन्तर स्वयं ही कहना प्रारम्भ किया। 'मानव चेतन है और जब तक उसे अपने शरीरका बोध है, अपने अधिकार एवं कर्तव्यका बोध भी उसे होना ही चाहिये।'

'प्रभु क्षमा करें! अपनी सावधानीमें कोई मर्यादा-प्रतिकूल व्यवहार न हो, इसका प्रयास सदा करता हूँ।' वह भीत हुआ। अवश्य उसने कोई तापसके लिए अनुपयुक्त वस्तु स्वीकार की है या कोई अयोग्य आचरण किया है। एकके बाद दूसरे दिन मानस नेत्रोंके सम्मुख आने लगे और बड़ी सावधानी एवं शीघ्रतासे वह इस प्रयत्नमें लगा कि कहाँ उससे प्रमाद हुआ है।

'पाषाण समदर्शी हैं। उन्हें किसीसे कोई अपेक्षा नहीं। कोई दृश्य उन्हें प्रभावित नहीं करता। शान्ति है उनके समीप—एकरस अविचल शान्ति!' भगवान्‌की वाणीमें न तो व्यङ्ग था और न उपहास। वे नित्य शान्त सदाकी भाँति बोल रहे थे। 'जड़की यह शान्ति चेतनको अभीष्ट नहीं होनी चाहिये। उसे जड़ एवं चेतन, सत्य एवं मिथ्या, जागृति तथा स्वप्नके द्वन्द्वोंका ध्वस्त करके एक ज्ञानात्मिका शान्ति प्राप्त करनी है।'

वह क्या करे। चुपचाप उस अमल धवल शान्तिवर्षी सुधांशुकी ओर देखता रहा। भगवान् समझा रहे थे—

'दृश्य मिथ्या है तो जीवन, कर्म, प्रारब्ध एवं फलभोग सब मिथ्या हैं। उनकी मीमांसा निरर्थक है। दृश्यको सत्य मानकर उनकी व्यवस्था है और इस दृष्टिसे उनका दायित्व उनके संचालकपर है। स्थिर एवं शाश्वत शान्ति अन्तरमें है और समस्त अन्तरोंका अभेद प्रत्यक्ष कर लेनेपर बाह्यमें भी उपलब्ध होती है। अपने शरीर और दूसरेके शरीरका भेद भ्रान्ति है। दूसरोंके दुःखको अपना दुःख बनने दो। भय मत करो! सबका सुख, सबका आनन्द तुम्हारा हो जायगा।'

उसके चरणोंपर मस्तक रक्खा। प्रभुने और स्पष्ट किया—'**अपने शरीरके कष्ट तथा अपने मङ्गलके लिए तुम्हें जिस परिस्थितिमें जो करना अभीष्ट है, समस्त प्राणियोंके प्रति भी वही अभीष्ट होना चाहिये। सम्पूर्ण शरीरोंको अपना हो जाने दो! सबके कल्याणमें लगो! तुम्हारा 'अहं' सबमें व्याप्त होकर नानात्वका भेद ध्वस्त कर देगा।** बाह्य एवं अन्तरका मिथ्या-भेद ध्वस्त होनेपर पदार्थ-चिन्तनकी चिन्ता तुम्हें न होगी। अनिर्देश्य, अचिन्त्य, अव्यक्तमें समस्त व्यक्त लय हो जायगा। **बिना सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मभावसे कल्याण चिन्तन किये, व्यक्त मन अव्यक्तमें कैसे स्थित होगा?**'

सहसा उसने चौंककर मस्तक उठाया। भगवान् तो वहाँ हैं नहीं। तब क्या उसने स्वप्न देखा है? अब भी शिलापर उसका उत्तरीय आस्तृत है और वायुमें अब भी एक दिव्य सुरभि है। शिलातलपर भावविभोर होकर मस्तक रक्खा उसने।

× × ×

सौराष्ट्रका वन्य प्रदेश बहुत दिनोंतक एक पागल साधुके प्रेमका पुरस्कार पाता रहा। पशुओंका एक समुदाय घूमा करता था उनके साथ। उनके समूहमें मृग, व्याघ्र, वाराह एवं शशकका वर्गद्रोह नहीं था। प्रत्येक स्वेच्छानुसार उनके समीप जाकर उनके स्नेह-स्निग्ध स्पर्शसे प्रसन्न होनेका अधिकार रखता था।

रुग्ण एवं आहत पशुओंकी चिकिसा वे शिशुओंके समान स्नेहसे किया करते थे। वनके निवासियोंकी उनमें अपार श्रद्धा थी और वे उन्हें साक्षात् वनदेवता ही मानते थे। उनका अनुभवपूर्वक विश्वास था कि रोगी मानव उनके करोंका स्पर्श पाते ही स्वस्थ हो जाया करता है। कोई नहीं जानता कि वे कहाँ गये। कुछ वन्य जातियाँ उनके निमित्त अब भी पूजासामग्री ग्राम-सीमासे बाहर रख आती हैं। वे समझती हैं कि वे वनके देवता आज भी उसे ग्रहण करने रात्रिमें पधारते हैं।

निवृत्ति-निरत

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

'मेरे अपराधोंकी कोई इति नहीं है।' उसके शब्द हिचकियोंमें डूबते जा रहे थे। मुख अरुण हो गया था और बार-बार वह पृथ्वीमें सिर पटक देता था। पाश्चात्तापकी ज्वाला जब हृदयके कलुषको भस्म करने लगती है, वाह्य सन्तप्त हो जाता है। 'नरक भी मेरे नामसे काँप उठेंगे ! मैं आया था श्रीविग्रहके रत्नालङ्कार अपहरण करने !'

शिष्यवर्गने घृणासे मुख फेर लिया। श्रीविग्रहके आभूषणोंकी चोरी करने जो आया हो, वह अधम तस्कर उनकी दृष्टिमें किसी परिताप या दण्डसे शुद्ध नहीं हो सकता। आचार्यने पुनः अपना वरद-हस्त उस लौहपुरुषके मस्तकपर रख दिया, जो शिशुकी भाँति उनके श्रीपदोंमें फूट-फूटकर क्रन्दन कर रहा था। 'तुम व्यर्थ संतप्त होते हो वत्स ! प्रभु तो सबके परम पिता हैं। यदि तुमने अपने ही पिताकी सम्पत्ति लेनेका सङ्कल्प किया तो कौन-सा अपराध हो गया। सर्वात्माके भोले शिशु, तुम्हारे दयालु पिताके समीप इनसे भी बहुमूल्य रत्न हैं।

उन अखिलेशको ही प्राप्त करनेके बदले तुम कुछ कंकड़ोंपर क्यों संतुष्ट होना चाहते हो ?'

'आप मुझे शाप दें भगवन् ! अनुग्रहका यह असीम भार मेरे पापी प्राण सह नहीं सकेंगे।' उसने अपने सुगठित सबल करोंमें दोनों चरण पकड़ लिये। 'इस अधम वेंकटका नाम आपने सुना होगा। हिंसा, चोरी और अनाचार—बस, इसीसे यह पिशाच बना है। एक वेश्याको प्रसन्न करनेके लिए आपके श्रीविग्रहके आभूषण हरण करने आया था और यदि कोई प्रतिरोध करे—' दूर पड़े खड्गकी ओर उसने दृष्टि की। शस्त्र पहले ही नोंच फेंका था उसने।

'साहसिक वेंकट !' शिष्य चौंके। भय, आश्चर्य एवं आशङ्कासे उनके नेत्र विस्फारित हो गये। जिसका आतङ्क आज राज्यके अधिकारियोंतकको व्यवस्थित निद्रा नहीं आने देता, वह इस प्रकार कातर हो रहा है। बटी हुई रस्सीके समान गठीला कृष्णवर्ण शरीर, लाल-लाल नेत्र और रूक्ष केश, वह देखते ही आतङ्क उत्पन्न करता था। आजकल जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य प्रभुपादके विरोधियोंका कोई-न-कोई षड्यन्त्र चलता ही रहता है। उसी वर्गने एक वेश्याको प्रेरित किया और उसने वेंकटको श्रीविग्रहके आभरण लानेको भेजा। आशा यह थी कि महाप्रभु अवश्य बाधा देंगे और तब वेंकटके शस्त्र विरोधियोंकी कामना सफल कर देंगे।

'विश्वका मङ्गल हो ! प्राणियोंका कल्याण हो !' वेंकटने प्रभुपादको आराध्य चरणोंमें प्रार्थना करते देखा।

तेजोमयी मूर्ति, अपरिमित दयासे द्रवित कण्ठस्वर और सम्पूर्ण विश्वकी मङ्गल-कामना लिये यह दिव्य पुरुष। साहसिकको लगा जैसे उसकी नाड़ियोंमें रक्त जमता जा रहा है। अङ्ग अवश होते जा रहे हैं। उसने शस्त्र फेंक दिये और दौड़कर उन महामहिमके श्रीचरणोंमें गिर पड़ा।

'मैंने तुम्हारा नाम सुना है।' आचार्यका कण्ठस्वर स्नेहस्निग्ध था। 'मैं नहीं समझता कि तुम इतने कातर क्यों हो रहे हो? श्रीरङ्गनाथकी करुणाका पारावार अपार है। उनके सम्मुख सभी एक समान शिशु हैं। अपराध-जैसी कोई वस्तु नहीं उन दयामयकी दृष्टिमें। अपनेको उनके चरणोंमें समर्पित कर दो! वे तुम्हें स्वीकार करेंगे।'

वेंकट अब साहसिक नहीं रह गया। महापुरुषकी कृपाने उसे परिपूत बना दिया। व्यसनीके पास सम्पत्ति तो हुआ नहीं करती। द्रव्य न रहनेपर साथियोंने साथ छोड़ दिया। गोदावरीके पावन कूलपर उसने अपनी झोंपड़ी बनायी और वहीं गुरुदेवद्वारा प्राप्त श्रीविग्रहको विराजमान किया। घरमें और तो कोई था ही नहीं, केवल माता थी। उस वृद्धाको पुत्रके उग्र कृत्योंसे बड़ा कष्ट हुआ करता था। उसे सदा भय रहता था कि वेंकटको किसी दिन राजपुरुष शूली दे देंगे। पुत्रके परिवर्तनपर माताको अपार आनन्द हुआ। वह भी पुत्रके समीप ही रहने लगी।

(२)

'भगवान्‌को प्रसाद निवेदित करना है।' वेंकटने थोड़ी भूमि स्वच्छ करके कृषिके उपयुक्त बना ली थी।

बड़े परिश्रमसे उसीमें वह अन्नोत्पादन कर लिया करता था। झोंपड़ीके पीछेकी ओर कुछ फलोंके वृक्ष लगा लिये गये थे और तुलसी तथा पुष्पोंकी छोटी-सी सजी वाटिका थी सम्मुखकी ओर। वह झोपड़ी एक आश्रमकी भाँति मनोरम हो गयी थी।

'आज एकादशी है और आज गोपाष्टमी!' बड़े उत्साहसे प्रायः सभी पर्व मनाये जाते थे। माता-पुत्रको पुष्प-चयन, तरु-सिञ्चन, प्रसाद प्रस्तुत करने प्रभृतिसे अवकाश ही नहीं मिलता था। वे श्रीहरिका सुमधुर नाम गायन करते और पूजाके उपकरणोंके सज्जित करनेमें लगे रहते। कृषि, उपवन, स्नान, भोजन सब तो पूजाके लिए ही हो गया था।

प्रायः संत पधारते थे। महात्मा भी तो विशुद्ध अन्न अन्वेषण करते हैं। वेंकटकी झोपड़ी अपने उन्मुक्त हृदयसे स्वागत करती। कथा, कीर्तन तथा भगवद्गुणानुवादसे समीपके ग्रामवासी भी अपने श्रवण परिपूत कर जाते। एक दिन जिसका नाम लोगोंको भयसे द्वार बन्द करनेको विवश कर देता था, आज प्रत्येक द्वार उसका स्वागत करनेको उत्सुक रहता है। कहाँ है वेंकट भाईको अवकाश अपनी अर्चनासे कि वे किसीका अनुरोध मान सकें।

'बेटा! वृष्टिका जल खेतोंसे निकल जायगा, मेड़ बाँधने नहीं जायगा क्या?' वृद्धा माता बहुत देरतक प्रतीक्षा करनेके पश्चात् आयी थी पुत्रको सावधान करने।

'भगवान्‌को शयन कराके जाता हूँ।' वेंकटने आरती उठायी तो पता ही नहीं लगा कि हाथके प्रदीपकी ज्योति

घृत समाप्त होनेके कारण कब शान्त हो गयी। बाहर प्रबल वर्षा हो रही थी। बूँदोंके शब्दमें एक अव्यक्त नाम-ध्वनिका आभास हुआ और वे मग्न हो गये। वर्षा समाप्त हो गयी। रात्रि डेढ़ प्रहर निकल चुकी। अब कहीं उनकी आरती समाप्त हुई है। अभी तो स्तवन अवशेष है और तब आराध्य शयन करेंगे।

'क्या हुआ ! लड़का लौटा क्यों नहीं !' वृद्धाने अन्तमें प्रदीप उठाया। भूमि कीचड़से भर गयी थी। मेंडकोंका अखण्ड नाद कर्णोंको अभ्यस्त हो चुका था; किंतु झिलनी एवं चेटककी झंकार अब भी व्याकुल करती थी। कहीं-कहीं पानीमें नालियोंमें-से बह रहा था। वृद्धा वेंकटको पुकारती भटक रही थी उस अन्धकारपूर्ण रजनीमें। उसका प्यारा पुत्र कई घण्टे हो गये नहीं लौटा था। बड़ा पगला हो गया है वेंकट इन दिनों। जहाँ खड़ा हो जायगा, चुपचाप खड़ा एकटक बुत बना देखता रहेगा किसी ओर।

'अरे मा ! इतनी रात्रिको तुम यहाँ कैसे !' बुढ़ियाने जब समीप आकर कंधेपर हाथ रक्खा तो वह चौंका। खेतका जल नालीसे चला जा रहा था। उसने सम्भवतः थोड़ी मिट्टी पहले डाली है। उस मिट्टीका एक छोटा अंश प्रवाहमें बराबर छोटा होता जा रहा है। पता नहीं क्या देखने लगा वह उस प्रवाहमें और फावड़ेपर रखे झुका है कबसे।

'तू क्या कर रहा है ?' माताने स्नेहपूर्वक डाँटा।

'चलो घर चलें !' झटपट दो-तीन हाथ चलाकर पानी बन्द कर दिया उसने फावड़ेसे, पर्याप्त मिट्टी डालकर पैरोंसे नयी मिट्टीको दबाकर, उसने खेतमें हाथ-पैर धोये और माताके साथ वह घरको लौट चला।

इस प्रकार कहीं खेती हुआ करती है। प्रातः पूजा करने बैठे तो मध्याह्न हो गया और सूर्यास्तसे पूर्व ही पुनः स्नान कर लेना है। विवश होकर बैल पड़ोसीको दे दिये। ब्राह्मणको कोई भी दो रोटीका आटा दे देगा। पेटके लिए पूजा-अर्चामें व्याघात पड़े, यह सह्य नहीं था। कृषि छोड़ देनेसे पूजाके लिए पर्याप्त समय मिलने लगा। माता निश्चिन्त हुई। अब पुत्र घरमें तो रहेगा। वह इतना बेसुध रहने लगा है कि घरसे बाहर रहनेपर माता उसीकी चिन्तासे आकुल रहा करती थीं।

'अरे स्नान नहीं कराओगे प्रभुको!' वेंकटने बड़ा सुन्दर पुष्पहार देखा और उठा लिया चढ़ानेके लिए। 'अभी तो प्रभुने स्नान नहीं किया है। निर्माल्य भी उतारा नहीं गया है।' वृद्धाको चिन्ता होने लगी है। अवश्य उसके वेंकटको कोई रोग हो गया है। उसे न अपने वस्त्रोंका पता रहता और न भोजनादिका। पूजा भी वह विधिपूर्वक कर नहीं पाता है।

'मा! तुम्हीं अब पूजा कर दिया करो।' लज्जित होकर माल्य उसने नीचे रख दिया। पुष्पवाटिका वृद्धा माता सींचती है, वही पुष्प-चयन करती है। माल्य निर्मित करती है। गृह स्वच्छ करके प्रसाद बनाती है। पार्षद भी उसे ही मलने पड़ते हैं। अब पूजा भी उसे ही करनी पड़ेगी। भगवान् उसके पुत्रको ठीक कर दें! वह सावधान रहने लगे। करनेको तो वह और भी बहुत कुछ कर लेगी।

पूजा भी छूटी। अब वह भगवान्‌के सम्मुख चुपचाप बैठा रहता है। उन्हींकी ओर देखा करता है। कभी-कभी

रोने लगता है। माता जब प्रसाद ग्रहण करनेका आग्रह करती है तो उठकर प्रसाद ले लेता है। प्रातः यदि उसे माता स्नान करनेको नित्य सावधान न करे तो सम्भवतः वैसे ही जाकर श्रीविग्रहके सम्मुख बैठ रहे। जब रात्रिमें प्रभुका शयन हो जाता है, चुपचाप जाकर अपने आसनपर पड़ रहता है।

उत्सव अब भी होते हैं। अतिथि अब भी आते हैं। सबके सत्कारके लिए सामग्री भो श्रद्धालु-जन दे ही जाते हैं। सब होता है; किंतु वृद्धाको शान्ति नहीं। उसका पुत्र सबसे तटस्थ गुमसुम बैठा जो रहता है। वह प्रत्येक आगत संतसे रोकर प्रार्थना करती है कि 'मेरे पुत्रकी यह उदासीनता किसी प्रकार दूर हो जाय।' उसे तब आश्चर्य होता है एवं रोष भी आता है, जब कोई साधु कहता है कि तुम्हारे पुत्रकी दशा बहुत अच्छी है।

वेंकटकी उदासीनता बढ़ती जा रही थी। माताको स्नान-भोजन एवं शयनके लिए उसे अब हाथ पकड़कर उठाना पड़ता। वह स्नान करते-करते खड़ा हो जाता या भोजन करते-करते हाथ रोककर किसी चिन्तामें लग जाता। माता उसे सावधान करती। वैद्य तो कोई रोग बता सकनेमें असमर्थ रहे और झाड़-फूँकका कोई लाभ न हुआ। माताकी चिन्ता बढ़ती जा रही थी।

(३)

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' श्रुतिका उद्धरण देकर पण्डितजी मुसकरा उठे। तर्कोंका तो कोई भले खण्डन

करे, श्रुतिको अस्वीकार करनेका साहस कौन करेगा। उन्हें विश्वास था कि अब किसीको बोलनेको कुछ रह ही नहीं गया है। एक बार गर्वपूर्वक सबकी ओर देखकर उन्होंने पीछे दृष्टि की। उनके छात्रोंने अपने आचार्यको आदर, प्रशंसापूर्वक देखते हुए मस्तक झुकाया।

'जब बन्धन अज्ञानसे है तो ज्ञानसे मुक्ति तो होगी ही।' भगवान् रामानुजपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। श्रुति-वचनोंमें अपार श्रद्धाका आदर्श वे स्थापित नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा। उन्होंने श्रुतिको स्पष्ट किया—'ज्ञानका अर्थ शब्दविशेष या भावविशेष नहीं; क्योंकि जो परम तत्त्व श्रुतिद्वारा 'नेति-नेति' कहकर प्रतिपादित है, वह शब्द एवं भावका विषय नहीं हो सकता। वे चिन्मय निर्गुण निराकार या सर्वसद्गुणैकधाम क्षीरसागरशायी ही ज्ञानघन हैं। उनके श्रीचरणोंकी प्राप्तिके बिना मुक्ति नहीं हुआ करती।'

'ओह, तब आपका कहना है कि श्रवण, मनन एवं निदिध्यासनके द्वारा मल, विक्षेप एवं आवरणकी निवृत्ति होनेपर स्वरूपका निर्विशेष बोध नहीं होता? पण्डितजीको अपनी आशाके प्रतिकूल उत्तर मिला था। क्षोभने उनके स्वरको तीव्र कर दिया था। अपने आसनपर वे स्थिर होनेका प्रयत्न करने लगे थे। 'आप यह भी कहना चाहते हैं कि महर्षि पतञ्जलिकी निर्विकल्प समाधि भी ज्ञानदात्री होकर मुक्तिदा नहीं होती?'

'सगुण और निर्गुण दोनों ही उस परात्पर तत्वके स्वरूप हैं। यदि शेषशय्यापर वह सशङ्खचक्र नवजलधर

ज्ञानघन होकर शयन करता है तो प्रत्येक अन्तःकरणमें अन्तश्चैतन्यके रूपमें उसीका प्रकाश भी है।' आचार्य शान्त थे। 'सायुज्य और कैवल्य भी मोक्षके ही स्वरूप हैं। योगी चित्तवृत्ति-निरोध करके एवं विचारक वृत्तियोंका बाध करके उसी कूटस्थको उपलब्ध करता है।'

'जिसने न तो कभी इच्छा की और न सोचा, जिसमें कभी वैराग्यका उदय ही नहीं हुआ। मुमुक्षा जिसमें जाग्रत् ही नहीं हुई, वह मुक्त हो जायगा।' पण्डितजीने अट्टहासके आवरणमें अपनी ग्लानि छिपानेका प्रयास किया। कम-से-कम अपने छात्रोंकी दृष्टिमें अपना सम्मान बनाये रखना आवश्यक था। आज ऐसे विकट अवसरसे सामना पड़ेगा, यह जानते होते तो वे इतना साहस ही क्यों करते।

'आपकी इच्छा हो या न हो, अग्निका स्पर्श आपके त्वक्को उष्ण तो करेगा ही।' आचार्यके मञ्जु मुखपर भी मृदुहास्य आया। 'वैराग्यके उदयका कोई अर्थ नहीं होता, जब अन्तर उन सौन्दर्य-राशिमें लगकर मायिक पदार्थोंकी ओर देखता ही नहीं। मृत्यु, संसार, अज्ञान, माया—ये सब कैसे रह सकते हैं, जहाँ वे ज्ञानघन आविर्भूत होते हैं। आप जलना नहीं चाहते, परंतु अग्निका स्पर्श करते हैं, अतः चर्म दग्ध होता है। उपासक संसारसे भीत होकर आवागमनके चक्रसे मुक्त होनेके लिए आराध्यकी शरण नहीं लेता; किंतु जब वे ज्ञानघन पधारते हैं तो अज्ञान स्वयं ध्वस्त हो जाता है। वे आराधकको इस जन्म-मरणके चक्रसे स्वयं ऊपर उठा लेते हैं।'

'आप कवि भी हैं !' पण्डितजीने परिहासमें उड़ा देना चाहा। 'उपमाएँ बड़ी सुन्दर प्रस्तुत कर देते हैं। तथ्य काव्यका विषय नहीं और ये ललित उपमाएँ जीवनके लिए उपयोगी नहीं हुआ करतीं।'

'उपमाओंको भी एक प्रमाण तो शास्त्र मानता ही है।' आचार्य प्रतिवादको कटु होने देना नहीं चाहते थे। 'प्रत्यक्ष भी प्रस्तुत कर सकूँगा। काञ्चीकी यात्राका विचार है। आप यदि साथ प्रस्थान करें तो भगवती गोदावरीका प्रसाद हम सबको कृतार्थ करेगा।'

'अरे कोई धनाढ्य भक्त है क्या ?' पण्डितजी अपनी ही दृष्टिसे विश्वको देखते हैं। 'यात्राका विचार तो मैं भी कर रहा था किंतु—'

'आप कोई चिन्ता न करें। दीनबन्धुके अनुचर उलूकवाहिनीके कृपापात्र तो नहीं हुआ करते, फिर भी वेंकटकी पूँजी अपार है।' आचार्य अब गूढ़ कथनपर पहुँच गये थे। 'आपकी आत्यन्तिक सेवामें कोई त्रुटि रहे, इसकी कोई आशङ्का नहीं।'

(४)

'ओह, मेरा बच्चा !' वृद्धा माता आज तीन दिनसे ग्राममें रोती हुई घूम रही है। कोई नहीं जो उसके पुत्रको स्वस्थ कर सके। उसका वेंकट—पता नहीं क्या हो गया है उसे। न तो बोलता है, न देखता है किसीकी ओर और न कुछ सुनता ही है। उठानेपर उठता भी नहीं। लोगोंने उठाकर मन्दिरसे शयन-कक्षमें बैठा दिया तो

वहीं बैठा है। न खाता है, न पानी पीता है और न तीन दिनसे स्नान ही किया है उसने। कभी-कभी फूटकर रोने लगता है और कभी हँसता है उच्च स्वरसे।

लोगोंने यथासम्भव उपचार किये। कुछने मन्त्र पढ़कर फूँक मारी और दो एक सिर एवं हाथ हिलाकर हुंकारें भी भरते रहे। सबने निश्चय करके बता दिया वृद्धाको कि वेंकट पागल हो गया है और अब उसके ठीक होनेकी कोई आशा नहीं। घरमें पहले तो सम्पूर्ण ग्राम उमड़ आया। एकके पश्चात् दूसरेकी भीड़ लगी रहने लगी। धीरे-धीरे कुतूहल शान्त होने लगा। भीड़ घटने लगी। आज तीसरा ही दिन है; परंतु उस झोपड़ीमें उस दुःखिनी वृद्धाके अतिरिक्त कोई नहीं।

सहसा कुछ स्मरण हुआ। श्रीठाकुरजीको दो दिनसे स्नान नहीं कराया किसीने। वृद्धाने स्नान किया। पुष्प एवं तुलसीके वीरुध इस ग्रीष्ममें दो दिन जल न पानेसे कुम्हला गये थे। पार्षद मलकर जो दो-चार कुसुम मिले, उन्हींसे वह पूजन करनेको प्रस्तुत हुई। किसी प्रकार नीराजन सम्पूर्ण हुआ। नेत्रोंका बाँध टूट गया। श्रीविग्रहके सम्मुख पृथ्वीपर मूर्छित होकर वह गिर पड़ी।

जैसे शरीरमें जीवन आ गया हो। भगवन्नामकी उच्चध्वनि श्रवणोंमें पड़ी। वृद्धाको स्वर परिचित जान पड़ा। उठी और दौड़ती हुई द्वारपर पहुँची। 'ओह, आज उसके द्वारपर स्वयं जगद्गुरु अपने शिष्यमण्डलके साथ उपस्थित थे।' जैसे उसकी प्रार्थना सुनकर वे

मन्दिरके चतुर्भुज देव ही प्रत्यक्ष हो गये हों। अश्रु एवं रुदनके अतिरिक्त वहाँ और क्या स्वागत होता।

'वेंकट कहाँ हैं ?' महाप्रभुने वृद्धाको आश्वस्त करके पूछा। साथमें आये पण्डितजी अपने छात्रोंके साथ निराश हो रहे थे। आज किस कंगालके यहाँ मध्याह्न व्यतीत करना है। भला क्या सत्कार होगा यहाँ। झोपड़ी एवं वाटिकाकी दशा देखकर और भी निराशा हो गयी थी। वेंकटके नामने उन्हें चौंकाया। इसी भक्तका आतिथ्य स्वीकार करने तो वे चले हैं। उन्होंने तो समझा था, वेंकटका कोई महान् प्रासाद होगा।

'वह तो पागल हो गया है!' रोते हुए वृद्धाने भीतर सङ्केत किया तथा बड़े कातर नेत्रोंसे आचार्यकी ओर देखा। 'मेरा पुत्र—आप ही उसे जीवन देनेमें समर्थ हैं प्रभो!' प्रार्थना नहीं, शब्दोंमें हृदय आ गया था बाहर।

'चलो, छुट्टी हुई!' पण्डितजीने अपने प्रमुख छात्रसे धीरेसे कहा। आचार्य उस कुटीरमें चले जा रहे थे। उनका अनुगमन आवश्यक था शिष्टताके नाते।

'पण्डितजी! आप अपने पवित्र करोंको इस ब्राह्मणके मस्तकपर रख दें!' आचार्यने सहसा पीछे मुड़कर अनुरोध किया।

'मैं इस योग्य कहाँ हूँ ?' कहनेको तो पण्डितजीने कह दिया, परंतु वे आगे बढ़ आये थे।

'आपको ब्राह्मणपर अनुग्रह करना चाहिये।' आचार्यके स्वरोंमें आदेश था। यह क्या। पण्डितजीने

वेंकटके मस्तकपर हाथ रक्खा और जैसे किसीने धक्का दे दिया हो, वे लुढ़क गये। फूट-फूटकर रो रहे थे और आचार्यके पावन पदोंपर बार-बार मस्तक रख रहे थे। उनके नेत्र चढ़ रहे थे। मुखसे शब्द नहीं निकलता था। पृथ्वीमें लोट रहे थे।

'आचार्यदेवको क्या हो गया!' पण्डितजीके छात्र आगे बढ़ आये थे। उनके उद्भट विद्वान् गुरु क्यों इस प्रकार भूमिमें पड़े क्रन्दन कर रहे हैं, कुछ समझमें नहीं आता था। बेचारी बुढ़िया एक कोनेमें पाषाणकी मूर्तिकी भाँति खड़ी थी। जब उसके पुत्रको स्पर्श करके इस ब्राह्मणकी ऐसी दशा हो गयी तो पुत्रके स्वस्थ होनेकी क्या आशा है। उसकी बुद्धिने साथ छोड़ दिया था। नेत्र परितापकी अधिकतासे शुष्क हो चुके थे।

'वेंकट! आचार्य आगे बढ़े। उन्होंने उस शान्त, स्थिर तरुणके मस्तकपर हाथ रखकर स्नेह-स्निग्ध स्वरोंमें पुकारा। धीरे-धीरे पलकोंकी गति आयी। जैसे वह किसी अपरिचित स्थानपर आ गया हो। एक बार इधर-उधर देखा उसने और तब वैसे ही आचार्यके पदोंपर मस्तक रखकर पृथ्वीमें लेट गया।

'वेंकट! मेरे बच्चे!' आचार्यने उठाकर हृदयसे लगा लिया। उनके नेत्र भर आये थे और उनकी वाणीमें वह वात्सल्य था जो केवल पृथ्वीपर एक ही प्राणीमें और सम्भव था; वह थी कोनेमें आनन्दविह्वल अर्धमूर्छिता मूर्ति-सी खड़ी वह वृद्धा। आचार्य इस प्रकार देरतक वेंकटको हृदयसे लगाये रहे।

'मैंने तुम्हें बताया था कि किस प्रकार श्रीरङ्गके चरणोंमें अनन्य होकर, समस्त कर्मोंका उनमें न्यास करके तुम अपने साहसिक जीवनके दुष्कर्मोंसे परित्राण पा लोगे।'

ग्रामीणोंकी श्रद्धाके उपकरणोंसे उस जीर्ण कुटीमें आचार्यका जो प्रेमपूर्ण आतिथ्य हुआ था, सम्पन्नोंके सौधमें वह सम्भव नहीं। भगवत्प्रसाद लेकर सब स्थिर बैठे थे। अपने चरणोंके समीप बैठे वेंकटको आचार्य सम्बोधित कर रहे थे। 'अब पण्डितजी तुम्हें बतावेंगे कि किस प्रकार ज्ञानके द्वारा तुम संसारके मृत्युमय बन्धनसे मुक्त होओ।'

'जिनका स्पर्श मेरे-जैसे अधमोंको मृत्युके बन्धनसे मोक्षका मार्ग तुरंत बता देता है, उन्हें मैं बताऊँगा ?' पण्डितजीने आतुरतापूर्वक आचार्यके चरण पकड़ लिये। 'प्रभो! इस अहंकारीपर कृपा करें। जिनका मन श्रीरङ्गमें लग चुका है, वे नित्यमुक्त हैं, यह मैं समझ चुका। अब उस कृपामयकी शरण प्राप्त हो—प्रपत्तिके परमाचार्य मुझे वह मार्ग प्रदान करें।

त्वमेवेदं सर्वम्

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

'भारतसम्राट्का युद्धपोत !' पोतावासके निरीक्षकने अपने उच्च निरीक्षण-स्थलसे संकेत किया। नीलोदधिके विशाल वक्षपर सिंहध्वज लक्षित कर लिया था उसने। बड़ी शीघ्रतासे आवासाध्यक्षने आवश्यक सूचनाएँ दीं और एक अश्वारोही राजसदनकी ओर द्रुतगतिसे बाणकी भाँति छूट चला। सम्पूर्ण पोतावास तोरण, पुष्पमाल्य एवं राजकीय पताकाओंसे सुसज्जित होने लगा।

'गड़ाम ! गड़ाम !' शतघ्नियोंने गगनकी ओर मुख उठाकर ज्वालाएँ फेंकनी प्रारम्भ कीं। महत्तम अतिथिकी अभ्यर्थनामें आगत अपनी अग्नियोंके साथ जैसे प्रोत्थान दे रहे हों। गगन धूम्रकी विशाल कुण्डलियोंसे पूर्ण होने लगा। राजहंसकी भाँति लहरोंपर बढ़ता, एकके पश्चात् दूसरी हिलोरके करोंका सत्कार स्वीकार करता वह रजत शुभ्रपोत निकट होता जा रहा था।

शतघ्नियाँ मूक हो गयीं। दुन्दुभी और शृङ्गनादने स्वागत-गान प्रारम्भ किया। राजकीय पोत आगे बढ़े और उन्होंने दोनों ओरसे सम्राट्के पोतको पंक्तिबद्ध होकर मार्ग प्रस्तुत किया। विप्रोंके स्वस्तिवाचन एवं तुमुल शङ्खनादके मध्य पोत तटपर पहुँचा। कौशेय

रज्जुओंने उसके स्थिराधारको आबद्ध किया और अवरोहणिका भूमिपर व्यवस्थित हुई।

'महाराज नहीं आये? सम्राट्के ध्वजका अभिवादन उन्हें आवश्यक नहीं प्रतीत हुआ?' अवरोहणिकासे मृगेन्द्रकी भाँति एक स्वर्णगौर तेजस्वी युवक उतरे। अक्षत, दूर्वा, चन्दन एवं पुष्पोंकी वृष्टि प्रारम्भ हो गयी उन रत्नजटित मुकुट एवं स्वर्णकवचधारीके ऊपर। उपस्थित विप्रवृन्दोंको करबद्ध होकर उन्होंने मस्तक झुकाया। वृद्ध मन्त्रियोंका अभिवादन एक दृष्टिपातसे स्वीकृत हुआ। जयघोषके मध्य एक बार सतर्क दृष्टि घूम गयी। भालपर किंचित् बल पड़े, भृकुटियाँ खिंचीं और नेत्रोंके अरुणिम डोरे कुछ अधिक स्पष्ट हो उठे।

'राष्ट्रध्वजके प्रति महाराजका हार्दिक प्रणिपात युवराज ले आये हैं!' बड़ी नम्रतासे प्रधान अमात्यने स्थितिको सम्हालनेका प्रयत्न किया। 'उज्जयिनीके युवराजका दर्शन प्राप्तकर यह द्वीपराज्य कृतार्थ हो गया। महाराज अस्वस्थ हैं, अन्यथा आनेमें प्रमाद नहीं होता।'

'युवराज यवद्वीपका संरक्षण करनेमें समर्थ हैं?' भारतीय राजपुरुषने सीधे प्रश्न किया। यवद्वीप ही उन दिनों समस्त पूर्वी द्वीपसमुदायका शासन-केन्द्र था। भारतीय साम्राज्यने कभी किसीका शोषण नहीं किया। भारतके साम्राज्यका अर्थ था सम्मान। बहुत थोड़े-से ऐसे अवसर आते, जब भारत-सम्राट् कोई आदेश देते या कोई राजपुरुष भारतसे पधारते। ऐसे आदेश मैत्रीपूर्ण

होते थे और भारतसे किसीका आना तो गौरवकी वस्तु थी। केवल अनिवार्य था सम्राट्का पोत एवं प्रतिनिधि आनेपर समुचित सम्मान।

'हम अपने उदार महाराजके प्रतीकसे अवश अपराधकी क्षमा चाहते हैं।' यवके युवराजने मस्तक झुकाया। पिताके प्रति उनका सम्पूर्ण स्नेह था। यदि तनिक भी पहले सूचना मिली होती तो वे किसी भी प्रकार महाराजको ले आये होते। बड़ी शीघ्रतामें स्वागतका आयोजन करना पड़ा है। वे जानते थे कि राष्ट्रध्वजको तटतक आकर सम्मान न देनेवाला शासक नहीं रह सकता। उज्जयिनीके युवराज नियमका पालन करके महाराजको पदच्युत करना चाहते हैं। 'हमारी केवल इतनी प्रार्थना है कि श्रीमान् राजसदन पधारें। किसी निर्णयसे पूर्व एक बार महाराजका साक्षात् कर लेनेसे हमारी विशुद्ध भावनामें कोई सन्देह नहीं रहेगा।'

'राजसदन तो मुझे चलना ही है।' युवराज आदित्यके स्वरोंमें नम्र होनेका कोई भाव आया नहीं था। वैसे किसी प्रकारका औद्धत्य उन्हें अभीष्ट नहीं था।

'क्या विवाद है, आदित्य? अकारण रोष अनुचित हुआ करता है।' एक शान्त, स्निग्ध स्वर अवरोहणिकासे आया। सबके नेत्र उधर आकृष्ट हुए। भगवान् वैश्वानर जैसे सशरीर आविर्भूत हुए हों। कटिकी मेखलामें वल्कलकी कौपीन लगाये, ऐणेयाजिन कक्षमें दबाये, हाथमें नारिकेल-कमण्डलु लिये स्तुतश्मश्रु तेजोमय वृद्ध उतर रहे थे धीरे-धीरे। भृत्यवर्ग सम्भवतः उन्हींकी

प्रतीक्षामें युवराजके साथ नहीं उतरा था। उन तपोधनने प्रातः-कृत्य पोतमें ही समाप्त किया था।

जैसे मृगेन्द्रके आनेपर कपिसमूह स्वयं वृक्षोंसे नीचे आकर बैठ जाता है, जैसे प्रबल पवनके सम्मुख वेत्रवन भूमिमें गिर पड़ता है, सम्पूर्ण समाजने पृथ्वीपर पड़कर प्रणिपात किया। अपने अरण्योंके इन्हीं वीतराग सचल प्रकाश-पुञ्जोंसे भारत विश्वगुरु है। विश्व-शक्तिके सम्मुख तो एक बार मस्तक उठा भी सकता है; किंतु इन विवेक भास्करोंके पावन पदोंका प्रसाद प्राप्त करनेका लोभ उसे विवश करता है आर्योंके पुण्य निवासके सम्मुख मस्तक झुकानेके लिए।

'महाराज नहीं आ सके, क्यों?' उन तपोधनने अपने चरणोंसे द्वीपराज्यके युवराजको स्नेहपूर्वक उठाया। युवराज आदित्य—जिनकी कठोर भृकुटिसे सम्पूर्ण उपस्थित वर्ग आतङ्कग्रस्त हो गया था—इस प्रकार संकुचित खड़े थे, जैसे कोई शिशु कुछ औद्धत्य कर रहा हो और सहसा शिक्षक आ पहुँचें। अमात्यवर्गका आतङ्क समाप्त हो गया था। समदर्शी परम कृपालु ऋषिकी उपस्थितिने उन्हें मूकभावसे ही अभयदान दे दिया।

'जन्म-जन्मान्तरके पापोंका इससे भीषण परिपाक क्या होगा कि इन पावन पदोंमें प्रणिपातके पवित्रतम अधिकारसे महाराज आज वञ्चित रहे हैं।' युवराजके अश्रुविन्दु उन चरणोंपर ही पड़ रहे थे।

'मैं अन्वेषण कर लूँगा—चिन्ताका कोई कारण नहीं।' युवराजके कंधेपर उस बलीपलित शुभ्ररोमा हस्तने आश्वासकी थपकी दी। 'आदित्य, युवराज तुम्हारे

बन्धु हैं। राजसदन पधारो और उनका सत्कार स्वीकृत करो। मैं एकाकी जाना चाहता हूँ।' बिना किसीके उत्तरकी अपेक्षा किये वे एक ओर चल पड़े।

उत्साह शिथिल हो गया स्वागतका। आदेशका अनादर नहीं किया जा सकता था। कुमार आदित्य राजपथपर पहुँचे। सम्पूर्ण राजपथ मूल्यवान् पाटम्बरोंसे आच्छादित हो चुका था। मङ्गल-घट लिये दोनों ओर नागरिकाओंके नेत्र स्वागतार्थ झुक रहे थे। हर्म्योंसे लाजा एवं कुसुमोंकी वृष्टि पथके पाँवड़ोंका रंग अपनी शुभ्रतामें अन्तर्हित कर चुकी थी। जयघोष एवं शङ्खनादके मध्य मध्यम गतिसे रथ बढ़ता आ रहा था।

'महाराज राजसदनमें नहीं हैं।' प्रधान अमात्यके कानोंमें धीरेसे चरने समाचार दिया। अमात्यने युवराजको सूचित किया। सबके मुखोंपर गम्भीर चिन्ता स्पष्ट हो गयी। 'कुमार आदित्य पता नहीं क्या अर्थ लगावेंगे महाराजकी अनुपस्थितिका।' महामात्यको उन तपोधनके दर्शनसे आश्वास मिला था; किंतु वे तो अब पता नहीं कहाँ, किस काननमें होंगे। यहाँ यह विकट अवसर उपस्थित हो गया। पता नहीं, महाराजको यह क्या सूझा।

'मैं अन्वेषण कर लूँगा।' युवराजके हृदयमें उन तपस्वीके वचनोंका अर्थ अब समझमें आया। 'चिन्ताका कोई कारण नहीं।' उन्होंने जब यह आश्वासन दिया है तो कोई-न-कोई समाधान अवश्य होगा। सर्वज्ञ महर्षिका आश्वासन निराधार नहीं हो सकता। परिस्थितिके सम्मुखीन होनेको युवराज प्रस्तुत हो रहे थे।

नागरिकोंने तोरणद्वार बना लिये थे। स्थान-स्थानपर राजरथको उनका नीराजन स्वीकार करना पड़ा। उपहार कुमार आदित्यके करोंका स्पर्श पाकर पुनः वितरित हो जाते थे पुरस्कार बनकर। राजद्वारपर मत्त गजराजोंने करोंमें स्वर्णकुम्भ उठाये और सुगन्धित अर्घ्यसे दिशाएँ झूम उठीं। मङ्गलवाद्योंने कुमारका स्वागत किया।

(२)

'जब कोई अधिकार अर्जित कर लेता है तो विश्वात्माके प्रबन्धमें उसे एक क्षण भी वञ्चित नहीं रक्खा जाता।' कालिन्दीके कलित उपकूलमें पूर्वाभिमुख आस्तृत कुशासनोंपर कृष्णाजिन आस्तृत थे और उनपर सम्मुखके यज्ञकुण्डमें प्रज्वलित हव्यवाह ही जैसे अनेक रूप धारण कर आसीन हो गये थे। ऋषि-बालिकाएँ नीवार प्रस्तीर्ण करने लगी थीं। मृगोंने अभीतक जृम्भण समाप्त करके हरित तृणोंकी ओर दृष्टि नहीं डाली थी। सत्य तो यह है कि वे प्रतीक्षा कर रहे थे उन मुनिकुमारोंकी, जो समिधाहरणके लिए काननमें अभी जायँगे। आज विलम्ब हो रहा था, फिर भी अभ्यस्त सहचरोंके बिना मृगयूथ एकाकी जाना नहीं चाहता था। ब्राह्मकुण्डके समीप उच्चवेदिकापर आसीन महर्षि अमित किसी गम्भीर चिन्तनमें तल्लीन थे। शिष्यवर्ग आचार्यका अभिप्राय ज्ञात करनेको समुत्सुक था।

'किसी महाभागने श्रीचरणोंका स्मरण किया है अत्यन्त स्नेहसे ?' प्रधान छात्रने तनिक साहस किया।

सबने भावभङ्गीसे अनुमान किया कि मधुपुरीके इस आश्रमको आचार्य कुछ दिनोंके लिए छोड़कर कहीं प्रस्थान करेंगे।

'दूर—पूर्व क्षितिजकी ओर, उदयाचलकी पावनतम दिशामें नीलोदधिके द्वारा आवेष्टित द्वीपसमुदाय हैं।' आचार्य अनेक बार अपने एक शिष्यका भावविभोर वर्णन करते हैं। सुदूर यवद्वीपका वर्तमान शासक किसी दिन कालिन्दीकी पावन लहरियोंसे अपनेको प्रक्षालित करके इन्हीं पदोंमें भारतीकी आराधना करता था। शिष्योंने समझ लिया कि आज भी आचार्य अपने पूर्व शिष्यकी प्रतिभा, भावुकता तथा सेवाका वर्णन करेंगे। 'भगवद्धामकी प्राप्तिका भी अधिकार होता है। धाम स्वयं श्रीविग्रहस्वरूप है और बिना अधिकारके कोई वहाँ निवास नहीं कर सकता।'

'श्रीमान् यवाधिपति क्या श्रीचरणोंके दर्शनार्थ प्रस्थान कर चुके हैं?' शिष्यवर्गने समझा कि उस सुदूर पूर्व क्षितिजके देशसे आनेवाले शिष्यका स्नेह सर्वज्ञ आचार्यको प्रेमविभोर कर रहा है।

'बड़ा मानी है वह—उसका प्रेम अधिकार दे चुका है कि वह सर्वेशसे भी मान करे। वह ठीक ही तो सोचता है—पवित्रतम भारतमें जब जन्म नहीं मिला तो व्रजभूमिके वासका साहस दुःसाहस ही तो होगा।' महर्षि जब भावावेशमें होते हैं तो प्रायः काव्यकी भाषामें बोलते हैं। उस समय उनका अभिप्राय समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है। वे कहते जा रहे थे 'जब किसीके

हृदयमें प्रेमरज्जुसे श्रीव्रजचन्द्रके चरणकमल आबद्ध हो जाते हैं, वह जहाँ भी रहे, वही भूमि पावन है। वहीं भगवद्धामका आविर्भाव हो जाता है।'

'पिता, एक बार सबसे कहो, इन सबोंको दूर ले जावें!' एक बालिकाने दूरसे पुकारा। महर्षिका स्नेह पाकर वह कुछ धृष्ट हो गयी थी। विलम्ब होते देख मृगमण्डली उठ खड़ी हुई थी। एकाकी वनमें भटकनेकी अपेक्षा नीवारोंका आस्वादन उन्हें सुविधाजनक प्रतीत हुआ। मुनि-कन्याएँ यदि मारनेको शुष्क समिधा उठातीं तो वे उसीको सूँघने लगते। किसीके मुखको क्रोड़में लेकर और किसीको करोंसे हटाते हुए वे व्यस्त हो गयीं। निष्ठुरता उनसे होनेसे रही और ये हठी मृग मानते नहीं। अन्तमें एकने महर्षिका ध्यान आकृष्ट किया। बच्चे परस्पर कलहमें पराजित होने लगते हैं तो माता-पिताको ही तो पुकारते हैं।

'अतिकाल हो रहा है!' महर्षि सावधान हुए। 'मध्याह्न-सन्ध्याके पूर्व ही काननसे सबको लौट आना चाहिये। मध्याह्नोत्तर मैं उज्जयिनी प्रस्थान करूँगा। यवद्वीपका अधिष्ठाता मेरा आह्वान कर रहा है।' थोड़े शब्दोंमें कथनीय स्पष्ट हो गया।

'इतनी विस्तृत यात्रा—समय पर्याप्त लगेगा और प्रभुका शरीर····।' प्रधान छात्रने मस्तक झुकाया। अपने आचार्यके साथ सेवामें जानेका निवेदन वाणीसे प्रकट न हो सका; किंतु प्रत्येक भाव-भङ्गीने उसे व्यक्त कर दिया नम्र अनुरोधके साथ।

'एकाकी जाऊँगा ! केवल प्रारब्ध ही मानवका वास्तविक सहचर है।' ऋषिने कोई आग्रह करने नहीं दिया। 'मेरी अनुपस्थितिमें आश्रमकी व्यवस्था तुम्हें करनी है, अग्निकी आराधना और अतिथियोंकी अभ्यर्थनामें प्रमाद नहीं होना चाहिये। उज्जयिनीसे यवद्वीपतक मेरी यात्राका प्रबन्ध सम्राट् कर देंगे !'

(३)

'श्रीकृष्ण !' यह तो जब वे युवराज थे, तभीसे उनका आवृत्ति-वाक्य था। भारतीय ऋषिकुलमें शिक्षाका सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था और वह भी मधुवनके महर्षि अमितके पुण्याश्रममें। वहींसे भुवनसुन्दरका पावन नाम गुरुके प्रसादमें उन्होंने प्राप्त किया था। खाते-पीते, उठते-बैठते, खाँसते-छींकते 'श्रीकृष्ण' अनायास वे बोल जाते थे। दूसरोंसे कुछ कहते समय वे बार-बार उसकी आवृत्ति किया करते थे।

राज्यासन प्राप्त हुआ। द्वीप-राज्योंके कलाकारोंसे सन्तोष नहीं हुआ तो सम्राट्से प्रार्थना करके उज्जयिनीसे शिल्पी आहूत हुए। मुरलीमनोहरका विस्तृत मन्दिर प्रस्तुत हुआ। मन्त्रियोंने सोचा था कि शासनाभार आनेपर उदासीनता दूर हो जायगी। वृद्ध महाराज कबतक रोके जा सकते थे। उन्हें भारत जाकर विश्वनाथपुरीमें शेष आयु व्यतीत करना था। युवराज महाराज तो हो गये, किंतु उनकी अन्यमनस्कता नहीं गयी थी। अवश्य ही

मन्दिर-निर्माणमें उन्होंने सम्पूर्ण मनोयोग प्रदर्शित किया। पूरे उत्साहसे संलग्न रहे।

अर्चनाकी घटियाँ बढ़ती गयीं। शासनका उत्तरदायित्व मन्त्रियोंपर पहुँचने लगा। यों महाराज प्रतिभाशाली एवं तेजस्वी थे। बहुत अल्प समय देकर भी उन्होंने अपने उत्तरदायित्वसे प्रमाद नहीं होने दिया। मन्त्रियोंके कार्योंका वे सूक्ष्म निरीक्षण कर लेते तया आदेश दे दिया करते थे। इतना सब होनेपर भी शासन-कार्योंमें उनका मन लगता नहीं था। पुत्रके वयस्क होते ही उसपर शासनका भार वे देने लगे। जहाँतक सम्भव हो, तटस्थ हो जाना उन्हें अभीष्ट था।

प्राचीन परिपाटीके नृत्य-गीत-समारोह अवरुद्ध हो गये। मन्दिरमें पर्व एवं उत्सव मनाये जाते। भजन तथा संकीर्तनका समारम्भ होता। राजसभामें नटोंके नृत्यका स्थान लिया लीलाभिनयने और वन्दियोंकी विरुदावली भगवद्गुणानुवादमें परिवर्तित हो गयी। पुराणोंका प्रवचन शास्त्रार्थ-पीठको भूषित करने लगा। आवश्यक राजकार्यके अतिरिक्त शेष सब कार्य नवीन रूपमें व्यस्थित हुए। मनोविनोद ही प्रधान रहा है—नृत्य, गीत, अभिनय, शास्त्रार्थादिमें। अतः जब नरेशका मन इनमें नहीं लगता तो ये स्वतः प्रयोजनहीन हो गये। अमात्योंने अपने भूपतिकी रुचिके अनुकूल परिवर्तित किया इनको।

मन—महाराजका मन करे भी तो क्या। ब्राह्ममूहूर्तसे स्नान करके मन्दिरमें महाराज जा विराजते थे। पूजन समाप्त होता मध्याह्न समाप्त होनेपर। भगवान्का प्रसाद,

भगवान्‌का गुणानुवाद और थोड़ा बहुत राज्यकार्य था तो वह भी इसलिए कि प्रभुने यह सेवाका भार अपने ऊपर डाल दिया था। वह भी भगवान्‌का दिया कार्य। शासन-सभासे उठते ही सीधे स्नानागारके शीतल जलका स्वागत करो और एक प्रहर रात्रितक तो मन्दिरमें बैठना ही है। बेचारा मन चन्दन, पुष्प, माल्य, श्रीमद्‌भागवतके श्लोक और नीराजनके प्रदीपमें जहाँ-जहाँ आता, वहीं वह नटखट ललितत्रिभङ्गी वनमाली उपस्थित था। 'श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण' प्राणोंके साथ ब्रह्माजीने उसका अभिन्न ग्रन्थि-बन्धन कर दिया है; अतः प्राणोंका यह जप उसका व्यायाम तो बनकर ही रहता है।

'मेरे श्यामसुन्दर मिर्च नहीं खाया करते!' मन्त्रियोंने निवेदित कीं कुछ काली मिर्चें। बहुत छोटी हुई थीं वे इस वर्ष। कृषकोंको इनके कारण आय कम होगी। महाराज कुछ और ही सोच रहे थे। अमात्योंकी बातोंका उन्होंने पूरा-पूरा अर्थ ही ग्रहण नहीं किया। कृषि-अध्यक्षने समझानेका प्रयत्न किया कि वर्षा-विपर्ययसे सभी मसाले बहुत कम हो सके हैं। केवल इक्षु ही पर्याप्त होगी, ऐसी आशा है। 'मिश्री ही तो चाहिये ब्रजेन्द्रनन्दनको! हमारी गौओंको पर्याप्त तृण मिलना चाहिये। नवनीतकी न्यूनता अत्यन्त कष्टदायी होगी।' महाराज अपने विचारोंमें लीन थे।

जो ठिकानेसे सोचता भी न हो, उससे भला कहीं शासन हो सकता है। महाराज केवल नाममात्रके शासक रह गये। मन्त्रियों तथा प्रजाकी अगाध श्रद्धा थी उनमें।

पितृ-भक्त युवराज पिताके रहते सिंहासनपर बैठनेकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। समस्त व्यवस्थाका संचालन राजकुमार कर लिया करते थे।

'व्रज ! वह दिव्यधाम और कहाँ पुण्यात्माओंसे वर्जित तस्कर-प्रदेशमें उत्पन्न एक अधम !' आजकल प्रायः महाराज प्रलाप किया करते हैं। उपासना-गृहमें वे कदाचित् ही पहुँच पाते हैं। नियमित अर्चनका भार अब युवराजने पैतृक सम्पत्तिके रूपमें स्वीकार कर लिया है। महाराज प्रायः अपने कक्षमें रोया करते हैं। 'जब अपनाना नहीं था तो मनुष्य बनानेकी विडम्बना भी क्यों की ! जीवन—मानव-जीवन नष्ट हो जायगा और····मेरा अधिकार, मेरे दुर्भाग्य····बड़ा दूर है व्रज मुझसे।'

'सम्राट्का युद्धपोत पधार रहा है !' युवराजने बड़े असमंजसमें पड़कर सूचना दी पिताको स्वयं उपस्थित होकर। इधर महाराज अत्यन्त कृश हो गये हैं। रात्रिमें भी सोतेसे क्रन्दन करते हुए वे उठ बैठते हैं। उनकी विह्वलता दूसरोंको आकुल कर देती है। उनका स्वास्थ्य ऐसा नहीं कि उनसे कक्षके बाहर भी पधारनेका अनुरोध किया जा सके।

'त्रिभुवन-सम्राट्ने मेरी उपेक्षा कर दी ! अब कोई सम्राट् आवे या जाय !' महाराजने जिस दृष्टिसे पुत्रकी ओर देखा, उसकी वेदना युवराज सँभाल न सके। शीघ्रतासे नेत्र पोंछते हुए हट आये। भारतीय पोतसे सम्राट्का चाहे जो प्रतिनिधि आवे, महाराजको देखते ही उसका मस्तक इनके चरणोंमें झुक जायगा। भयका

कोई कारण नहीं था। अमात्योंको उन्होंने प्रस्तुत कर लिया।

(४)

'महाराजने राष्ट्रध्वजको समुद्र-तटपर पहुँचकर अभिवादन नहीं दिया है!' तपस्वी अमितका स्वर राजसभामें गूँजा। युवराज और अमात्यवृन्द चौंक पड़ा। कुमार आदित्य महाराजको क्षमा कर चुके थे। राजसभामें इस विषयके उठनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। कुमारका तो प्रतिवाद भी सम्भव था; किंतु महर्षिका प्रतिवाद करनेकी शक्ति तो महेश्वरमें भी नहीं। भय, विस्मयसे सबके नेत्र अपलक हो गये।' कुमार आदित्य कोई अधिकार नहीं रखते उन्हें क्षमा करनेका। द्वीपराज्यका सिंहासन अब उनका नहीं है।' वाक्य पूर्ण हुआ। सभासदोंको सिंहासन रिक्त देखकर कोई आशङ्का नहीं हुई थी। सबने समझा था कि महाराज अपने आचार्यके आदरके कारण उनके चरणोंके समीप बैठ गये हैं! इसकी आशा किसीको नहीं थी कि सिंहासन महाराजको खो चुका।

'अपराध तो हुआ ही नहीं!' कुमार आदित्य स्वयं खड़े हुए। नम्र स्वरोंमें पर्याप्त विनय थी। 'क्षमा तो होती अपराधकी। शरीरका भान होनेतक ही अपराध होते हैं। महाराजके समान भगवान्‌के परम प्रेमियोंका अपमान करनेका साहस भारतसम्राट्‌में नहीं। सम्राट्‌के प्रतिनिधिकी दृष्टिसे मैं अपनेको उनकी पावन पदरजसे

पवित्र करनेमें सौभाग्य मानूँगा।' सभासद् एवं अमात्योंके नेत्र कृतज्ञतासे भर आये। भारतके सम्राट्का योग्यतम पूर्वाधिकारी अपनी उदारताका परिचय दे रहा था। यही तो महत्ता है, जो दूसरोंको विवश करती है स्वेच्छापूर्वक भारतनरेशको सम्राट् स्वीकार करनेके लिये।

'बच्चे! तू यह कहता है सम्राट्के प्रतिनिधिकी उपस्थितिमें मैं महाराजको पदच्युत नहीं कर सकूँगा?' तपस्वीके स्वरमें परिहास था या रोष, कोई समझ न सका।

'सम्राट् भी इसलिए सम्राट् हैं कि उन्हें आपका आशीर्वाद प्राप्त है।' कुमारने मस्तक झुकाया। 'महेन्द्र भी जिनके सङ्केतपर अमरावतीसे च्युत हो सकते हैं, उनके पुण्यपदोंमें मैं अपने वात्सल्यस्नेहका अधिकार लेकर केवल अनुरोध कर रहा हूँ।'

'युवराज सिंहासनासीन होंगे और द्वीपराज्यके नवीन महाराजको भारतके युवराज अपने प्रथम अभिवादनसे सम्मानित करेंगे।' महर्षिने आदेश दिया। 'जिसे शरीरका भान नहीं रहता, वह अपराध नहीं करता। इतना सत्य होनेपर यह भी सत्य है कि वह शासन भी नहीं करता। राज्यसिंहासन उसके लिए नहीं है।'

कल सायंकाल महर्षि अमितके साथ ही महाराज राजसदन पहुँच गये थे। राजसेवक जिसे घोर काननमें परिश्रम करके भी प्राप्त नहीं कर सके थे, एक अपरिचित देशमें महर्षिने उसे ढूँढ़ लिया था। गुरुदेवका साक्षात् करके महाराजकी विह्वलता बहुत कुछ दूर हो गयी थी।

उनका शरीर भी अपेक्षाकृत सशक्त हो चुका था। कुमार आदित्यने परिचय पाकर महाराजके प्रति आदर प्रकट किया और सागर-तटपर अपनेद्वारा हुए औद्धत्यकी क्षमा चाही। आजकी राजसभा केवल सम्राट्के प्रतिनिधिका सत्कार करने एकत्र हुई थी। किसी प्रकार यह नहीं जाना जा सका था कि तपस्वी ऐसा आदेश देंगे।

'राज्य तो सदा सेवकोंद्वारा ही संचालित होता है!' युवराजने साहस किया। उनका कण्ठ भरा हुआ था। पिताके प्रति जो निर्णय हुआ था, उनके लिए वह असह्य हो गया था। 'मैं अपनेको असमर्थ पा रहा हूँ। यदि महाराज अपने स्थानपर आसीन नहीं होते तो मैं श्रीचरणोंमें क्षमा चाहूँगा। अनेक सुयोग्य राजपुरुष हैं—मुझे इस असहनीय भारके लिए प्रभु विवश न करें!' द्वीपराज्योंमें भला ऐसा कृतघ्न कौन है, जो युवराजके अधिकारको आमत्सात् करनेको प्रस्तुत हो जाय। सब जानते थे कि इससे कोई लाभ नहीं होगा। महर्षिकी आज्ञा स्वीकार करनेके अतिरिक्त दूसरा साधन नहीं।

'पुत्रके कष्टको पिता समझता है। महाराज तुम्हारे पिता हैं और मेरे शिष्य!' महर्षिने युवराजके कन्धेपर हाथ रखा। 'तुम्हें यह स्वीकार है कि वे रात्रि-दिन आर्तनाद करते रहें, अश्रु बहाते रहें और एक असहायकी भाँति तड़पते रहें? तुम उनके समीप रहकर भी उसे सह सके हो, किंतु मधुपुरीके एकान्त काननसे उनकी पुकारने मुझे विवश किया है, यहाँ आनेके लिए। व्रजभूमि उनका आह्वान कर रही है।'

'व्रज—मैं अधम, व्रजमें प्रवेश पा सकूँगा प्रभु ?' महाराजने कातर होकर अपने आचार्यके पद अश्रुजलसे प्रक्षालित कर दिये।

'जिसके मनने श्रीकृष्णमें स्थिति प्राप्त कर ली है, जिसकी बुद्धि उन नवजलधरसुन्दरमें समाहित हो गयी है, वह उनमें ही निवास करता है। इसमें सन्देहको कोई स्थान ही नहीं।' महर्षिके नेत्र भी आर्द्र हो आये। 'महाराज ! व्रज श्रीकृष्णका ही स्वरूप है।'

युवराजने मस्तक झुका दिया। अभिषेककी प्रस्तुति हुई और यह प्रथम अवसर था जब द्वीपराज्यके किसी शासकको एक भारतीय महर्षिद्वारा अभिषिक्त होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। तीसरे दिन जब भारत-सम्राट्का युद्धपोत शतघ्नियोंके गगनभेदी नादमें उदधिके वक्षपर बढ़ा तो उसमें कुमार आदित्य एवं महर्षि अमितके संरक्षणमें एक सम्मान्य अतिथि भारत पधार रहा था और पधार रहा था कंगाल व्रजवासी बननेके लिए वह महाराज !

अभ्यासयोग

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ।।९।।

गौर वर्ण, गोल मुख और श्वेत-कृष्ण केश। मुण्डित मस्तक तो मैंने देखा नहीं है, अवश्य केश छोटे करा लिये जाते हैं और फिर भी अंग्रेजी कटकी शोभा स्कन्ध एवं कर्णके समीप उन्हें अत्यधिक अल्प करके सम्पन्न कर ली जाती है। जैसे किसी बच्चेने स्याहीसे मूँछ बना लिया हो, कैंचीकी सहायतासे एक काली रेखा रख दी गयी है और उस्तरेने उसे नुकीली कर दिया है। मुख चमक उठता है वेसलीनकी चमकसे और संकीर्तनमें सम्मिलित होनेके लिए यह आवश्यक है।

'चित्त समाहित हो यदि उसको समाहित करनेकी इच्छा हो।' वे कह रहे थे और मेरे सम्मुख एक चित्र घूम रहा था। उनकी छोटी काली तेजस्विनी आँखें जैसे अन्तरको पढ़ रही थीं। विशाल भालपर वह कभीके आघातका चिह्न भी उस तेजमें भव्य हो उठा था। अपने स्थूल शरीरको व्यवस्थित करते हुए उन्होंने कहा 'हम प्रदर्शन करते हैं, हम दूसरोंको दिखाना चाहते हैं और अपने आपको ही धोखा देते हैं।'

'सचमुच, अपने-आपको ही तो धोखा देते हैं।' मैं सोचने लगा। जहाँ समीपमें कोई बैठा नहीं है, वहाँ भी झुककर हाथसे रेखा-सी बनाते चलना क्या नम्रता है।

हमारी यह नम्रता और सावधानी जीवनमें तो नहीं है ! क्यों वह तभी कूद पड़ती है, जब कोई अपना प्रतिष्ठित सम्मुख हाता है। सचमुच क्या एकाकी भर जोर झाँझ पीटकर, आलाप लेते हुए हम उस सर्वात्माको पुकारते हैं ? मुझे सन्देह होता है श्लोकोंके सस्वर पाठकी भाँति यह सब भी यहींके किन्हीं कानोंतक पहुँचानेका प्रयास है।

'आत्मनिरीक्षण—हम उन सर्वेशको चाहते हैं या संसारके भोगोंको, लोगोंको प्रशंसाको, यह हमें स्वयं देखना चाहिये !' वह अपने-आपसे ही जैसे कह रहे हों। मुख नीचे झुक गया था। चिबुकके नीचेका माँसल भाग उभर आया था और उनका साँवला वर्ण अपने अन्तरकी शुभ्रता छिपानेमें असमर्थ था। 'सच्चे होकर हम कभी इसपर विचार ही नहीं करते। हमने कभी यह सोचना आवश्यक ही नहीं समझा। हम जो कुछ भजन-पूजनादिके नामपर करते भी हैं—वह हमारी प्रतिष्ठाकी प्राप्तिका साधन मात्र होता है।'

'प्रतिष्ठाकी प्राप्ति उससे होती है या नहीं—यह दूसरी बात ! जो दूसरोंको मूर्ख बनाना चाहता है, उपहासास्पद ही बनता है वह औरोंकी दृष्टिमें।' मेरा चिन्तन चल रहा था। जब हम इस प्रकार मस्तकको दोनों कर्णोंकी दिशाओंमें अविराम गति देने लगते हैं, जैसे कण्ठदेश शेष शरीरसे किसी स्नायुसे ही आबद्ध है, वहाँ अस्थिका नाम नहीं और मस्तक अपना भार सम्हालनेमें असमर्थ है, तो क्या हम दूसरोंकी दृष्टिमें अपनेको भावोन्मत्त सिद्ध कर पाते हैं ? और जब हाथ-पैर

बचाकर हम मूर्च्छाका नाट्य करके गिरते हैं, जब व्याकुलताका अभिनय करके अपने-आपको लथेड़ते हैं पृथ्वीपर—हम चाहे जो समझें, दूसरोंकी दृष्टियोंमें एक हास्य ही देख सकते हैं उस समय हम।

'अपनी सुविधा—अपनी अनुकूलताका ध्यान हमें सदा विवश किया करता है। इसमें तनिक भी व्याघात पाकर हमारा क्रोध अपनी सीमापर पहुँच जाता है। हम क्षुब्ध होते हैं और दूसरोंका तिरस्कार करते हुए यह भी नहीं देखना चाहते कि किन परिस्थितियोंमें उसके द्वारा यह प्रमाद हुआ है।' चश्मेके भीतर उनके नेत्रोंके भाव गम्भीरतम हो उठे थे। प्रत्येक हृदयकी वाणी जैसे उनकी वाणीमें मूर्त हो गयी थी। यह आत्मालोचन है—आक्षेप नहीं, कोई भी उनके भावोंमें यह स्पष्ट लक्षित कर लेता।

'साथियोंको जो सुविधा मिली है, वह हमें क्यों नहीं? हम कब देखते हैं कि अपने अधिकारका उपयोग हो चुका है!' मैं सोच रहा था, छिद्रान्वेषण और अपने दोषोंका दूसरोंपर आरोप, तनिक-सी बातमें तमतमा उठना तो प्रकृति हो गयी है। अपने द्वारा दूसरोंका भी उपहास, अनादर और अधिकार हरण होता है, दूसरोंकी भी कुछ सुविधा होती है, इधर दृष्टि कहाँ जाती है? हमारे नेत्र कहाँ जाकर टिकते हैं—हमारी मन्द मुसकान किन स्थानोंसे प्रतिफलित होती है और कब हम धीरेसे सिर झुका लेते हैं, अपने नाट्यमें हमने सबको यदि आवृत न कर लिया होता! किंतु क्या सर्वेश नहीं जानता कि हमारे हृदयमें कौन-सी क्रीड़ा होती है।

'हम दूसरोंका एक अपराध क्षमा नहीं करना चाहते, यदि विश्वात्मा हमारे जन्म-जन्मके अपराधोंको गिनने लगे?' हृदयकी वाणीने स्तब्ध कर दिया। 'हम दूसरोंको नीच और पापी तो कहते हैं; किंतु हमने जन्म-जन्मान्तरमें क्या-क्या किया है, अब भी क्या कर रहे हैं? कुछ पता है?' सच तो है, ऐसा कौन-सा अपराध है जो हमसे न हुआ हो। हम दूसरोंका एक दोष देखकर दण्ड देनेको उद्यत होते हैं और आशा करते हैं, सर्वेश हमारे सब अपराध क्षमा कर देगा। दूसरोंके एक कृत्यसे घृणा करके हम मुख फेर लेते हैं और अन्तरमें रौरवकी वीभत्स पूयगन्ध लिये भी हमारी धारणा है कि वह परम उदार हमें अङ्कमें लेनेको समुत्सुक हो उठेगा!

जन्म-जन्मान्तर पशुत्व अन्तःकरणमें घनीभूत हो उठा है। अनेक नारकीय योनियोंका परिभ्रमण करके हम यहाँ पहुँचे हैं। अपने संस्कारोंमे क्या सहज ही परित्राण हो जायगा? हमारी चेष्टाएँ, हमारे प्रयत्न, सब विकृत हो उठते हैं। क्रियाओंपर अन्तरकी विकृति अपना एकाधिकार कर लेती है और तब कर्मोंका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। कर्म हमारे भावोंका संस्पर्श पाकर अपने मूलरूपसे अनेक रंगोंके आवरणोंमें आवृत हो जाते हैं।

मानव—मेरे सम्मुख मानवके दो चित्र हैं, मैं जानता हूँ वे अनेक, असंख्य हो जायँगे। क्या लाभ? अन्तर सदा ही इसी अनेकतामें लगनेका अभ्यस्त है। लाभ और हानि, मन कहाँ सोचता है इसे। बुद्धि जिसे स्वीकार करती है, यदि हृदय भी उसे स्वीकार कर लिया करे! कहाँ होता

है ऐसा ? 'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।' आत्मालोचन—यदि करने भी बैठें तो कौन करेगा ? बुद्धिने तो कभी विश्वासघात नहीं किया । क्या प्रभाव पड़ता है हृदयपर ?

सुख-शान्ति, आनन्द और चित्त समाधान, एकाग्रता-तल्लीनता पर्याय हैं सब-के-सब । जन्म-जन्मान्तरोंसे मनकी जो प्रकृति हो गयी है, जो स्वभाव बन गया है, कैसे छूटे वह । होगा जलका वास्तविक स्वरूप अमल, शुद्ध । जब वह नालीमें इतर पदार्थोंको आत्मसात् करके सड़ गया, सरल तो नहीं है उसे मूलरूपमें वहाँ उपलब्ध करना । चित्त उस आनन्दघनमें लग जाय; यह बाह्य चिन्तन, यह छिद्रान्वेषण, ये जगतीके अनेक चित्र सम्मुख न आवें; बड़ा भव्य स्वप्न है । स्वप्न अपने वश में नहीं हुआ करते । स्वप्न यदि जागृतिका सत्य बन जाया करता ।

असमंजसकी भी एक सीमा होती है । जब मन किसी समस्याको सुलझा नहीं पाता, किसी अनिवार्य उलझनका भार उसे क्लान्त कर देता है, श्रान्त हो जाता है वह । शरीरकी स्थूलताके बन्धन उसके लिए असह्य हो उठते हैं । आप उसे निद्रा कहें या तन्द्रा; किंतु मन एक प्रयत्न करता है अपने अभीष्टको स्थूलके संकीर्ण कक्षसे बाहर होकर अनन्तकी उन्मुक्त क्रोड़ीमें प्रतिफलित देखनेका । जीवनके इस उन्मुक्त स्तरको मानसशास्त्री स्वप्न कहते हैं ।

मैं नहीं जानता कि आप कभी बैठे-बैठे, जागते-जागते स्वप्न देखते हैं या नहीं; किंतु जागृतिका यह स्वप्न बड़ा

मधुर होता है। शरीर अवश, स्थिर ज्यों-का-त्यों है और मानसकी सृष्टि अपना संचालन करने लगी। जहाँ बैठे हैं, वहाँ नहीं—दूर—बहुत दूर हैं वहाँसे हम।

(२)

जंगलोंमें रहूँगा, फल एवं कन्द-मूलपर जीवन व्यतीत करूँगा। पहननेको वस्त्र मिले तो क्या और न मिले तो क्या। भगवान्का भजन करूँगा। अन्न-जल छोड़कर जब उन्हींको पुकारूँगा, कैसे नहीं आवेंगे वे!' उस समय अवस्था होगी पन्द्रह-सोलह वर्षकी। नाड़ियोंमें नवीन रक्त प्रवाहित होता था। कुछ पुस्तकें पढ़ ली थीं और मनमें उमंग भरी हुई थी। कष्ट क्या होता है, अबतक पता नहीं था। माता-पिताके आश्रयके उपरान्त पाठशालाका उच्छृङ्खल जीवन और फिर आजके युगमें बिना भटके-भटकाये नौकरी मिल गयी। कलकत्ता-जैसा विशाल नगर, उसमें भी साफ-सुथरी अंग्रेजी पट्टी। जिधर दृष्टि जाय, आकर्षित होकर ही रहेगी। साथ भी ऐसे लोगोंका प्राप्त हुआ जो अत्यधिक स्नेह करते थे।

'ध्रुवने भगवान्को पाँच महीनोंमें प्राप्त कर लिया था। मैं क्यों नहीं कर सकता।' अनुभवहीन मन नहीं जानता कि आज सत्ययुग नहीं है और उस समय भी सब ध्रुव नहीं हो गये थे। यदि कोई मुझे समझानेका प्रयत्न करता तो निश्चय मैं समझता वह कापुरुष है। मन भगवान्में लगाकर, सब सुख-दुःखोंसे परे होकर स्थिर हो जाना जैसे कोई बात ही नहीं थी। वहाँ किसीको पता

नहीं था। कोई ऐसा नहीं था, जिससे कुछ कह-सुन सकूँ। मनके भाव मनमें ही दृढ़ होते गये।

'मेरा अन्वेषण व्यर्थ है। मैं अब नहीं लौटूँगा।' किसको क्या देना है, घर क्या सूचना भेजनी है, मेरे वस्त्रों और पुस्तकोंका क्या होगा, सब एक पत्रमें लिखकर रख दिया टेबिलपर। उस दिन रविवार था। सभी स्वेच्छानुसार नगर-भ्रमणको स्वतन्त्र थे। मैं जानता था कि रात्रिको न आनेपर भी किसी परिचितके यहाँ सो रहनेकी सम्भावना कर ली जायगी। अन्वेषण प्रारम्भ होगा कल और वह भी सायङ्काल। क्योंकि दिनभर तो सब अपनी नौकरीपर रहेंगे। बहुत अवकाश था। एक ही धोतीका आधा भाग पहनकर और आधा कंधोंपर डालकर धीरेसे निकल पड़ा।

कलकत्तेके उत्तर और पश्चिम घोर जंगल है, भूगोलमें यह पड़ा था। कितनी दूर है वह जंगल, इसकी कल्पना नहीं थी। कितनी भी दूर हो, पहुँच जाऊँगा। मेरे निश्चयमें कोई शैथिल्य नहीं आया था। एक मार्ग पकड़कर चल पड़ा उत्तर-पश्चिम। अच्छी स्वच्छ सड़क थी। भगवती भागीरथीके समानान्तर मैं पश्चिम झुकता जा रहा था। कहाँ जा रहा था? किसी भी वनमें। मानव-समुदायसे दूर। कोई मेरी ओर देखता है, मैं नंगे पैर और नंगे शरीर हूँ, यह सोचनेका मुझे अवकाश नहीं था। बड़ी तीव्रतासे चला जा रहा था। मनमें एक ही धुन थी, दूर जाना है—बहुत दूर।

घना नगर समाप्त हुआ। बंगले आये और उनकी दूरी बढ़ती गयी। झाड़ियाँ आयीं और धानके खेत

मिलने लगे। प्यास लगी, एक खेतमें अञ्जलि भरकर तृषा शान्त कर ली। अब दोनों ओर खेत ही थे। हरे धानने धरणीको हरित वस्त्र पहना दिया था। कहीं-कहीं केलोंके झुरमुटोंमें नारिकेलके वृक्ष मस्तक उठाये खड़े थे। वहाँ पहुँचनेपर ज्ञात होता, दो-चार झोपड़ियाँ हैं। गोलस्तूपाकार तृणोंको मस्तकपर उठाये मिट्टीसे पुती बाँसके टट्टरोंकी स्वच्छ भित्तियाँ। अधिक देखनेका अवकाश नहीं था। मानसके समीप जानेमें हिचक होती थी। मैं उसी सड़कसे जा रहा था। अवश्य ही उसका सुचिक्कण कृष्णवर्ण पीछे छूट चुका था और अब कुटे कंकड़ोंकी कंकड़ियाँ यदा-कदा पैरोंमें चुभकर अपने अस्तित्वका परिचय दे दिया करती थीं।

ओह ! सड़क तो समाप्त हो गयी। सम्मुख कोई सरिता थी। मेरे पास पार उतरनेको एक अधेला भी नहीं था। आजतक अनुनय करनेका अवसर नहीं मिला था। सूर्यास्त हो चुका था ? धूमिल प्रकाश अन्तर्हित होता जा रहा था। पैर उठते नहीं थे। दिनभर चल चुका था। श्रान्तिका अनुमान आप कर लें। दिनमें चार-पाँच बार भोजन और जलपान करनेवाला आज जल पीकर रहा था। अब रात्रि तो व्यतीत करनी थी। समीपके झोपड़ोंमें सङ्कोचवश शरण लेने न जा सका। दूर एक वृक्षके नीचे बैठ गया। अब प्रातः विचार करूँगा कि मुझे क्या करना है।

ओह ! पता नहीं क्यों रोमाञ्च हो आता है। हृदयकी गति बढ़ गयी है। इस अन्धकारमें भय कहाँसे आकर

आक्रान्त कर रहा है, कौन जाने। नेत्र बन्द करके बैठा ध्यान करने। कहाँ, किसका ध्यान ?

'मेरे आनेपर वहाँ लोग क्या सोचेंगे। क्या प्रयत्न करेंगे। किस प्रकार पत्र पढ़कर दुखी होंगे।' मन यही सब सोच रहा था। शीत पड़ने लगा। किसी प्रकार सिर और घुटने पेटमें दबाकर, उसी आधी धोतीमें लिपटकर लुढ़क गया। कहींसे मेंढकका आर्तनाद सुनायी पड़ा। मैं जानता हूँ, उसका यह स्वर तभी निकलता है, जब सर्प उसे पकड़ लेता है। पासमें सर्पके भयसे चौंककर इधर-उधर देखने लगा। कई बार ताली बजायी। वह रात्रि कैसे व्यतीत हुई—न पूछिये।

किसी प्रकार अरुणोदय हुआ। एक क्षणके लिए भी शीत एवं भयके कारण निद्रा नहीं आयी थी। उठकर सरिता-किनारे गया। धोती झाड़ ली। मुख धोया। क्षुधाके कारण शरीर अवसन्न हो रहा था। जब यहीं यह दशा है तो वनमें क्या होगा। यहाँ तो फिर भी मानव रहते हैं। वहाँ सर्प, व्याघ्र, भल्लूक, ओह! शीत एवं लू सहना अपनी शक्तिसे परे है। पेड़के पत्ते और कन्दपर जीवन-निर्वाहकी स्वर्ण-कल्पना विदा हो चुकी थी। कोई जूँठे चने भी देता तो मैं ले लेता। अब लौटना था। ओह, पैर तो उठते नहीं और लौटना है। भाग्य अच्छे थे। कलाकी धुनमें देख नहीं सका था कि स्टेशन समीप है। कोई छोटी लाइनका स्टेशन था। बिना टिकट गाड़ीमें बैठना पड़ा। सोमवारको दस बजे मैं अपनी ड्यूटीपर

था। यह जानकर आप क्या करेंगे कि कितनी झिड़कियों और सङ्कोचका सामना करना पड़ा।

(३)

चित्रकूटकी पहाड़ियाँ—जंगली बेर, वन्य भिण्डी और कसैले कन्द पर्याप्त होते हैं वहाँ। वर्षमें एक-दो महीने चार (चिरोंजीका फल) और तेंदू भी उपलब्ध होता है। आज भी एकाध साधु इस पवित्र सीता-रामोपवनमें इन्हीं वनके कन्दादिपर अपना जीवन चला देते हैं। मानवके कृत्रिम आहार उनके लिए अग्राह्य हो गये हैं।

एक टूटा-सा मन्दिर था। मूर्ति नहीं थी और कह नहीं सकता, वर्षामें जलकी कोई-बूँद उससे बाहर भी जाती है या नहीं। द्वारके किवाड़ क्या हुए कौन जाने। अवश्य वे कभी थे; क्योंकि टूटी चौखटका अवशेष दीमकोंके गृहोंकी पंक्तिमें-से कहीं-कहीं दिखायी पड़ता है। भीतरकी धूलि कहती है, मध्याह्नमें गवय (नीलगाय) का विश्रामागार होता है यह। जो कुछ हो, बस्तीसे दूर, मानव-सम्पर्कसे मुख मोड़े यह किसी मन्दिरका जीर्ण स्वरूप अवश्य मेरी ही प्रतीक्षामें होगा। मैं ऐसे ही एकान्तकी अपेक्षामें जो था।

कल अपने अन्तिम दोनों पैसोंके भुने चने उदरस्थ कर चुका हूँ। आज भरपेट भिण्डियाँ और खटमिट्ठे बेर खाये हैं। अवश्य इन जंगली भिण्डियोंके रोम अधिक तीक्ष्ण हैं और इनमें बीज-ही-बीज हैं, क्या हुआ, क्षुधा तो शान्त

हो ही गयी। पयस्विनीका पावन-नीर स्नान एवं तृषा-शान्तिके लिए बहुत है। मैं कम्बल लाया हूँ साथ। शीतसे भय है नहीं। वनमें बहुत शुष्क काष्ठ हैं। सायङ्काल धूनी प्रज्वलित हो जायगी। अग्निके समीप न सर्प आता, न बाघ, न रीछ और न प्रेत ही। कोई बाधा नहीं है यहाँ। निश्चिन्त भजन करना है।

पहले ही दिन गीताके पाँच पाठ कर डाले। शेष समय बराबर माला चलती रही। अपनी जप-संख्यापर मुझे सन्तोष हुआ। दोनों समय आसन लगाकर खूब प्राणायाम किये। ध्यान—बस यही अपने बसकी बात नहीं थी। मन पता नहीं क्या-क्या सोचने लगता था। ध्यानका प्रयत्न अवश्य घंटेभर करता रहा था। रात्रिमें—कुछ नहीं। सोचा अवश्य था कि उठूँगा, किंतु जो नींद आयी तो उठनेपर भगवान् भास्करके दर्शन हुए।

पेट पता नहीं क्यों कुड़मुड़ाने लगा। दूसरे दिन जप और पाठकी संख्या किसी प्रकार पूर्ण तो हुई किंतु मन नहीं लगा प्राणायाममें। बहुत शीघ्र उठना पड़ा। ध्यानके लिए बैठना व्यर्थ था। आज ज्ञात हुआ कि यहां मच्छर भी तंग करते हैं। निद्रा अच्छी नहीं आयी; किंतु जगते हुए भी रात्रिमें उठकर बैठनेमें मनने अनेक बहाने बना दिये। पड़ा रहा और सोचता रहा—यही बेसिर-पैरकी बातें।

'एक ही ग्रन्थकी बार-बार आवृत्ति—क्या लाभ? अरे, उसके अनुसार जीवन बनाना चाहिये।' मनमें अनेक प्रकारके कुतर्क उठने लगे। पाठके लिये श्लोक अवश्य पढ़ रहा था; किन्तु पता नहीं था कि किस

अध्यायका कौन-सा श्लोक पढ़ रहा हूँ। 'गीतामें कहाँ लिखा है कि इस प्रकार सब छोड़-छाड़कर एक खँडहरमें बैठकर उसकी आवृत्ति किया करो। वह तो कर्मयोगका ग्रन्थ है। संसारमें रहकर कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करना, यही उसकी शिक्षा है। किसी ग्रन्थके मूल उद्देश्यको छोड़कर उसीकी आवृत्ति तो अन्ध-विश्वास है।' पाठकी दो आवृत्ति ही बहुत भारी हो गयीं।

'यह राम, राम, कृष्ण, कृष्ण, क्या अर्थ है इसका ? न तो राम सन्यासी थे और न कृष्ण। अपनेको समाजके लिए उत्सर्ग कर दिया था उन्होंने। समाजकी उन्नति एवं सेवामें ही उन्होंने अपनी उन्नति चाही।' माला उठाते ही मनने अपना कार्य प्रारम्भ किया। 'वे भगवान् होकर भी विश्वमें आकर मानव बने। उनके आदर्शोंका अनुगमन न करनेवाला भी मानव उनको अपना आराध्य कैसे कह सकता है। उन्होंने जिन आदर्शोंकी प्रतिष्ठा की है, उनको अपने जीवनमें उतारो। यही तो उनकी सच्ची आराधना है। नाम-जप ठीक है। भगवान्का नाम लेना उत्तम है। लेकिन यह माला क्यों ? मैंने इतना जप कर लिया। इस अहङ्कारकी क्या आवश्यकता ? जपके लिए इस वनमें क्यों बैठा जाय ? हाथसे काम करते हुए भी तो मुखसे जप हो सकता है और वही सर्वश्रेष्ठ जप है।' कम्बल बिछाकर लेट गया। माला छोड़ दी। फिर क्या जप होना था। निद्रा आ गयी।

'इस जंगलमें आकर विकारोंमें बचे रहनेकी कल्पना तो बच्चों-जैसी है।' जागते ही सङ्कल्प होने लगे। 'जहाँ काम और क्रोधके लिए आधार ही नहीं, वहाँ

उनका दमन भी कैसे होगा ? यहाँ क्या वनभिण्डियोंका लोभ होगा ? जहाँ विकार आते हैं, वहीं उनको रोकनेका प्रयत्न भी हो सकता है। वहाँ निर्विकार रह सके, वही सच्चा संयमी। यहाँ पता क्या लगेगा कि विकारोंका नाश हो गया या वे केवल आधार न मिलनेसे पड़े हैं।' अपने-आप अपनी दुर्बलतापर खेद होने लगा।

पेट खराब हो चुका था। मस्तकमें दर्द प्रारम्भ हुआ। चौथे दिन जब लौटा तो ज्वर हो आया था। कई सप्ताह चिकित्सामें लग गये। कच्ची वनभिण्डियोंके बीज और जंगली बेरोंके छिलके आँतोंमें चिपक गये थे। कब्ज हो गया था। जुलाब एवं एनिमाके द्वारा किसी प्रकार छुटकारा हुआ। आप जानना चाहते हैं, उन सिद्धान्तोंका क्या हुआ ? भित्तिपर लगी हुई गेंद जैसे उसी वेगसे लौटती है, यहाँ आकर उसी प्रकार लिप्त हो गया हूँ।

(४)

'पागल है तू !' कौपीन लगाये, उनका शरीरवर्ण उनके गैरिक-वस्त्रोंसे एक हो गया था। एक साधारण टाटके टुकड़ेपर मूर्तिमान् आनन्दकी भाँति रह-रहकर वे खिलखिला उठते थे। आज ही कहीं गङ्गा-किनारे घूमते-घूमते आये हैं इस आम्रकुञ्जमें और कौन जाने कल कहाँकी धरा उनके पावन-चरणोंसे परिपूत होगी। मधुकरी करके गङ्गाके जलमें भिक्षाको भली प्रकार दो बार धो डाला था उन्होंने। पेट भरनेके उपरान्त धोकर

हंडिया इस प्रकार उलटकर रख दी गयी, जैसे हम सब यदि यहाँ प्रतीक्षा न करते होते तो उसे तकिया बनाकर वे लेट रहते। मैंने बैठते ही अपनी बात सुना दी। 'कलसे व्यायाम प्रारम्भ कर! देखना, कहीं पहले ही दिन डेढ़-दो-सौ दण्ड-बैठक न लगा लेना।' उनका उज्ज्वल हास्य उन्मुक्त हो उठा।

'ऐसा करके तो रोगको आमन्त्रण देगा कोई भी।' अपनी स्वाभाविक धृष्टतावश मैंने कहा—'किंतु व्यायाम कभी मेरे वशका नहीं रहा है। मैं कभी नियमसे कर नहीं सका हूँ। दो-चार दिन कई बार कर चुका हूँ। प्रमादके कारण नियम भङ्ग होता है और सदा कष्ट ही हाथ रहता है।' व्यायाम करके शरीरको सुपुष्ट बनानेकी कभी प्रबल इच्छा अपनेमें हुई नहीं।

'हाँ—किसी शराबीको शराब छुड़ाना हो तो तुम सब सत्याग्रह करके उसे तुरंत रोक देते हो न?' उन महापुरुषके प्रश्नोंकी संगति लगाना शक्य नहीं था। हम सब शिविरमें रहते हैं और यहाँके गाँजा-भाँग तथा शराबकी दूकानोंपर मेरे ही निरीक्षणमें धरना चल, रहा है, इसका परिचय उन्हें कहीं मिल गया होगा।

'हम शराब न खरीदनेकी प्रार्थना करते हैं।' मैंने स्थिति स्पष्ट की। 'यदि कोई शराबी शराब छोड़नेकी प्रतिज्ञा करके हमारे नियन्त्रणमें रहना स्वीकार कर ले तो उसे निश्चित समयतक घटती मात्राओंमें शराब लेनेकी अनुमति देनी पड़ेगी। एक दिन ही बंद कर देनेका प्रभाव उसके स्वास्थ्यपर हानिकर पड़ सकता है। ऐसा

अवसर कभी आया नहीं है।' मैंने जो मुझे उचित प्रतीत हुआ, उत्तर दे दिया। उस समय ऐसी समस्या आनेपर ऊपरसे क्या आदेश मिलता, यह कहना कठिन था।

'तुम्हारे मनने जन्म-जन्मान्तरसे विषय-सुराका अभ्यास किया है। तुम उसे एक ही दिनमें उससे पृथक करना चाहते हो और आशा करते हो कि वह स्वस्थ रहे।' वे पुनः खिलखिलाकर हँस पड़े। 'तुम एक ही दिन माला लेकर या आसन लगाकर अंधाधुंध व्यायाम करते जाते हो और समझते हो कि तुम्हारी गति बनी रहेगी। ऐसा व्यायाम पूर्णतः बंद हो जायगा और अपना प्रसाद मानसिक रुग्णता छोड़ जायगा।' उनकी चेतावनीमें पिताका स्नेह था।

'तब किया क्या जाय?' मैंने मस्तक झुकाकर प्रश्न किया।

'जितना सहन हो सके, उससे भी कमसे प्रारम्भ करो। पर उसे छोड़ो मत, नहीं तो थोड़ा व्यायाम भी मध्यके विरामोंसे रोगका कारण हो सकता है।' शान्त-स्निग्ध स्वरोंमें समझा रहे थे वे। 'प्रबल इच्छा रक्खो उसको बढ़ानेकी। सतत सावधान रहो कि उसमें शैथिल्य न आवे। बहुत धैर्यपूर्वक बढ़ाओ। उसी गतिसे बढ़ो, जिसे बनाये रक्खा जा सके। मनको अभ्यस्त होने दो। अभ्यास करो और सावधान रहो कि तुम्हारा अभ्यास पीछे न लौटे।' अधिक विलम्बसे उनको कष्ट होता, हम उठ आये वहाँसे।

अभ्यास—जन्म-जन्मान्तरसे जो पाठ पढ़ते आ रहे हैं, उसके विपरीत 'क, ख' से यह नवीन पाठ प्रारम्भ करना है। अभ्यास तो करना ही पड़ेगा। वन्य कपि एक दिनमें कुर्ता-टोपी पहनकर, कन्धेपर लाठी लेकर, गलेमें बँधी रज्जुके सहारे मध्यम पदोंसे चलना और नाचना कैसे प्रारम्भ कर सकता है। डमरूके डिम्-डिम्का अनुगमन करनेके लिए उसे अभ्यास करना होगा।

× × ×

'यह चञ्चल मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँसे लौटाकर उसे आराध्यके चिन्तनमें लगाना चाहिये। यही अभ्यास है।' मेरी तन्द्रा टूटी और उन्हें मैंने कहते सुना।

'अभ्यासका अभाव क्रियाको आडम्बर बना देता है और जब एक बार मन इस **धर्माभासके जालमें उलझ** जाता है, समझ नहीं पाता कि दूसरोंको मूर्ख बनानेके प्रयासमें केवल दूसरोंका उपहासास्पद बन रहा हूँ। दूसरोंकी दृष्टिमें उठनेका प्रयत्न उन्हीं दृष्टियोंमें गिरा रहा है। कोई उस अन्तरमें आसन लगाये स्थिर बैठे सर्वसाक्षीको धोखा नहीं दे सकता। केवल अपने-आपको ही धोखा देता है वह।'

आत्मनिरीक्षण—आत्मालोचन—अभ्यास; लोग उठने लगे थे और मुझे भी उठ ही जाना चाहिये। मनमें इन उलझनोंको सुलझाते उठ पड़ा। जीवनमें ये कब अवतीर्ण होंगे, कौन कह सकता है।

अनासक्त

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

'सत् श्री अकाल !' गौरवर्ण, सुगठित शरीर, परिपुष्ट दीर्घ आकृति, आजानु प्रलम्बबाहु युग्म, विशाल वक्ष एवं भाल, सघन कृष्ण सज्जित श्मश्रुजाल, मस्तकपर बाँधा हुआ केशरिया शिरोवस्त्र, करमें पड़ा सुपुष्ट कर्द, दोनों ओर लटकती डेढ़-डेढ़ हाथ लम्बी कृपाणें, कटिमें पृष्ठ भागपर कन्धोंतक कसे दो त्रोण और वाम स्कन्धपर पड़ा कोदण्ड । कौन कह सकता था उन कवचमण्डित तेजोमयको देखकर कि इस मूर्तिमान् शौर्यमें योग एवं अध्यात्मके तत्त्व एकाकार हो गये हैं ।

गिरिशिखरने अपने उन्नत तरुओंके द्वारा, जो पुष्पभारसे झुक गये थे, अभ्यागतके वन्दनीय चरणोंमें जैसे मस्तक झुका लिया हो । कोमल अमल अरुण किसलय अन्तरका अनुराग व्यक्त करने लगे थे । पिकीने स्वागत गान किया और कीरोंने स्वस्तिवाचन । मृगोंके यूथ निर्भय निकल उन सुदीर्घलोचनको अनिमेष देख रहे थे । कपियोंकी मण्डली शाखाओंपर शान्त बैठ गयी थी । सम्भ्रान्त अतिथिके सम्मानमें जैसे समस्त प्रकृति ससम्भ्रम अभ्युत्थान देने लगी हो ।

'प्रणिपात स्वीकृत हो देव !' आतुरतापूर्वक अपनी शिलासे वह तरुण तापस उठा और भूमिपर लेट गया। कौन जाने एक ही दो रूपोंमें होकर यह अङ्कमालका आनन्द तो नहीं ले रहा था। एक सुसज्जित शूर और एक वल्कलधारी तापस। यदि वेशके इस वैषम्यको छोड़ दें तो आकृति, वर्ण, शरीरगठन और तेज—जान पड़ता था एक ही कलाकारने अपनी एक ही मूर्तिकी प्रतिकृति कर दी है दूसरेके रूपमें। योद्धा और तापसका यह बाह्य भेद और अन्तरके भावोंका वैषम्य, जिसका प्रतीक होता है बाह्य—उसे ही दूर करने तो आज एक दूसरेके यहाँ अतिथि हुआ था। वे महत्तम अपनी उस प्रतिमूर्तिके विभेदको दूर करके उसे आत्मरूप देने ही तो पधारे थे।

'आश्रम निरुपद्रव तो है!' मेघगम्भीर स्वर गूँजा। वहाँ शिलापर तापसका कुशासन उन्होंने स्वीकार कर लिया था।

'आश्रम तो अन्तरकी निरुपद्रवताकी अपेक्षा करता है।' तापसके स्वरोंमें करुणा थी। 'यहाँ अनेक प्रयत्न करके निराश हो चला हूँ। मन जहाँ जाता है, वहाँसे आकृष्ट करके लक्ष्यमें स्थिर करनेका प्रयास सफल नहीं हो रहा है। कब मन संयमकी परिधिसे छूट निकला, इसका पता ही नहीं रहता। वह अनेक प्रकारके अनर्गल चिन्तनमें लग जाता है और इसका पतातक नहीं चलता। जब सावधान होता हूँ—बड़ा पश्चाताप होता है। यह खेद और प्रयत्न पुनः कुछ क्षणके पश्चात् लीन हो जाते हैं और मन फिर स्वेच्छा भ्रमणमें संलग्न हो जाता है।' दुःख एवं परितापसे तापसने निःश्वास लिया।

'जब कोई अपने निश्चित स्वभावके विपरीत प्रयत्न करता है तो—यही दशा होती है उसकी।' वे महान् पुरुष गम्भीर हो गये थे। 'प्रकृति बलपूर्वक सबको उस कार्यमें संलग्न करती है, जिसके लिए आदिशक्ति महामायाने उसे इस विश्वके रंगमञ्चपर भेजा है। उसके विपरीत प्रयत्न सदा विफल होता है। श्रम, खेद और परिताप, इनके अतिरिक्त उससे कोई आशा नहीं की जा सकती।' वे सीधे साधकके अधिकारकी विवेचना कर रहे थे।

'मैं इन चरणोंका बंदा हूँ।' तापसने दोनों पैर पकड़ लिये और उनपर मस्तक रक्खा। 'मुझे क्या करना चाहिये—नहीं जानता। अन्तर कह रहा था कि मेरे पथदर्शक स्वयं दया करके अवश्य पधारेंगे। अपने प्रकाशपुञ्जको आज मैंने उपलब्ध कर लिया है। मैं आदेशकी आशा करता हूँ। उपदेश जीवनमें उतार सकूँ, इतनी शक्ति अपनेमें पाता नहीं।' नेत्रोंके सलिलने आत्मार्पणका सङ्कल्प साङ्ग पूर्ण कर दिया।

'बंदा—निश्चय तुम बंदा बनाओ अपनेको। सचराचरमें व्याप्त जो महामहिम है, उसका बंदा।' गुरु गोविन्दसिंहकी वाणी अपने स्वाभाविक ओजसे पूर्ण हो गयी—'आज असंख्य-असंख्य गौएँ अपनी रक्षाके लिए कातर नेत्रोंसे तुम्हारी ओर देख रही हैं, अबलाओंका आर्तनाद तुम्हारा आह्वान कर रहा है। देवमन्दिरोंमें प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ आज अपने आराधककी श्रद्धाकी कसौटी करना चाहती हैं। संत, विप्र और धर्म असहाय हो गये हैं आज। जब

चारों ओर दुर्दान्त दस्यु-दल अपने पैशाचिक नृत्यसे अनाथ, निर्बल असहायोंका शोणित पान कर रहा है, जब मानव-रक्तसे सिञ्चित करके सौधोंकी सामग्री सङ्कलित की जा रही है, तुम इस निर्जन काननमें शिलापर नेत्र बंद करके शान्तिका आह्वान करना चाहते हो! जैसे तुम समष्टिसे पृथक् हो और तुम्हारा व्यष्टि अपनी समष्टिसे प्रभावित ही नहीं होता।'

'युद्ध-हिंसा-क्रोध! घोर तामस एवं राजस कर्म।' विह्वल होकर उसने उनके तमकते तेजस्वी मुखकी ओर देखा। 'जब एकान्तकी इस शुद्ध सात्त्विकतामें मन एकाग्र नहीं होता तो राजस एवं तामसके घोर द्वन्द्वमें क्या दशा होगी इस दुर्बल हृदयकी?'

'यह सात्त्विकता नहीं—विडम्बना है। अपने आपको धोखा मत दो। जब संत, सत्पुरुष, नारियों, बालकों और धर्मके शव, प्रेतोंके क्रूर करोंमें छिन्न-विच्छिन्न हो रहे हैं, किस धर्म और शान्तिकी आराधना करने बैठे हो तुम यहाँ? महाशक्तिने तुम्हें क्षत्रिय बनाया है। तुम्हारी भुजाओंमें शक्ति है और कराल करवाल उठाकर प्रलयङ्करकी हुंकार देनेका कौशल है तुममें। तुम्हारा धर्म आज तुम्हें पीड़ितोंके मध्यमें पुकार रहा है। इस धर्माभासको भ्रमवश धर्म मान रहे हो तुम!' स्वर तीव्रतम हो गया। कानन गूँजने लगा। वे कहते जा रहे थे--'कर्म—सात्त्विक, राजस और तामस कहाँ होते हैं? होने दो उन्हें, जो वे हों। तुम स्मरण रक्खो! तुम्हें महान् विराट्के लिए कर्म करना है। तुम्हारा कोई कर्म नहीं। तुम अपने लिए कुछ मत करो। सर्वेशके लिए

करो। कोई गुण तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकता। तुम्हारा मन संयमित हो जायगा स्वतः। तुम अपनेको अनायास उस अनन्तकी क्रोड़ीमें देखोगे।'

उसने मस्तकको झुका लिया। दूसरे ही क्षण वही स्वर पुनः गूँजा—'सोचो मत ! निश्चय करो ! वह तुम्हें करना है। अखिलेशका बंदा केवल उसके लिए कर्म करेगा। उठो ! आर्तोंका क्रन्दन तुम्हारा आह्वान कर रहा है।' कटिसे कराल करवाल निकालकर उन्होंने आगे बढ़ा दी। दोनों घुटनोंपर बैठकर हाथ फैलाकर उसने उसे ले लिया और मस्तकसे लगाया।

(२)

'हम दो हैं और शत्रु दो सौसे भी अधिक।' पार्श्वचरने अश्व समीप किया। वह भीरु नहीं था, किंतु उसकी दूरदर्शिता उसे निषेध कर रही थी इस अग्निमें कूदनेसे। वह कैसे देख सकेगा कि उसके होते उसके नायककी ओर कोई दृष्टि भी उठावे। 'अपना कोई शिविर समीप नहीं है और यदि कहीं उन्होंने आपको पहचान लिया....।' आशङ्काने कम्पित कर दिया उसे। वे यदि पहचान लेंगे तो क्या करेंगे—यह कोई भी समझ सकता था। जिस व्यक्तिने पाञ्चालमें विपक्षको संत्रस्त कर रक्खा था, जिसका नाम लेकर स्वप्नमें भी वे चौंक उठते थे, वही यदि एकाकी मिल जाय उन्हें—प्राणोंपर खेलकर उसे समाप्त कर देना चाहेंगे वे।

'बंद करो अपनी वाणी !' बड़ी कठोर दृष्टि पड़ी पार्श्वचरके मुखपर। 'जीवन और मृत्यु एक क्रीड़ाके दो

रूपमात्र हैं केवल। बंदा जानता है कि वह किसके लिए कार्य करता है। सर्वेशके कार्यके सम्मुख होनेपर वह विमुख हो जाय - इतना नीच मान लिया है तुमने उसे। देखो, वे बच्चे किसे पुकार रहे हैं? वे असहाय अबलाएँ किसका नाम लेकर क्रन्दन कर रही हैं? कौन है वह, जिसे ये असमर्थ मानव अन्तरकी सम्पूर्ण आशासे इस असमयमें आह्वान कर रहे हैं? जिसे वे पुकारते हैं, उसीका एक बंदा, वह पुकार सुनकर भी चुपचाप खिसक जायगा?' अश्वकी रज्जु मुखमें दबा ली गयी और धनुषपर ज्या चढ़ गयी। दूसरे ही क्षण गूँजा 'सत् श्री अकाल।' और एक साथ दो दस्यु भूमिपर गिरते दृष्टि पड़े। दोनों अश्व जैसे उड़ते बढ़ते आ रहे हों।

ग्राम था छोटा-सा। कठिनतासे दो-ढाई सौ व्यक्तियोंका निवास होगा। दो-सौसे भी अधिक यवन-सेनाने उसे घेर लिया था। क्यों? यह प्रश्न व्यर्थ है। दिल्लीके सिंहासनपर औरंगजेब था और उस समय इस प्रकार कहीं भी किसी ग्राम या व्यक्तिपर बर्बर आक्रमण करनेके लिए निमित्तोंकी आवश्यकता नहीं हुआ करती थी। निमित्त जब निर्मित ही करने होते हैं तो बहुत हो जाते हैं। मानव जब धर्म, राष्ट्र या समाजके नामपर अपनी क्रूर वासनाओंको चरितार्थ करने लगता है, तब दैत्य भी उसके दुष्कर्मोंकी तुलना नहीं कर सकते। वह पिशाच हो जाता है।

अधिकांश गृह खपरैलोंके थे और कुछ फूसके। अग्निकी लपटोंमें बाँसोंकी तड़तड़ बंदूकोंकी भ्रान्ति करती

थी। लोग चीत्कार कर रहे थे। वे पिशाच भालोंपर शिशुओंको उछालकर ले लेते और अट्टहास करते। केश पकड़कर अबलाओंको घसीटा जा रहा था और प्रकृतिने पुरुषको जो अभिवर्धनके लिए शक्ति दी है, उसका इतना कुत्सित दुरुपयोग भी हो सकता है, मानव, इतना नीच हो सकता है, सम्भवतः स्रष्टाने भी यह नहीं सोचा होगा ! लपटें, रक्त और आर्तनादके मध्यमें उन प्रेतोंका क्रूर अट्टहास बार-बार उपहास कर रहा था विश्वकी शालीनताका !!

जहाँ प्रतिवादकी आशङ्का नहीं होती, वहाँ अकस्मात् आघात सधे शूरोंको भी विचलित कर देता है; फिर अधम कापुरुषोंमें साहस कितना। दो, चार, छः और आठ। एक भी बाण व्यर्थ नहीं जा रहा था। जब प्राणोंके तुच्छ मोह एवं स्वार्थकी संकुचित सीमासे परे होकर कोई उद्योग सर्वात्मासे तादात्म्य कर लेता है, अमोघ हो जाता है वह। दोनों धनुषोंकी प्रत्यञ्चाएँ अनवरत मृत्यु-वर्षा कर रही थीं। अश्वोंने मार्गकी मध्यस्थता समाप्त की और भालोंके दो हाथ होते-न-होते दो-दो कृपाणें चमक उठीं अश्वोंके दोनों ओर। अनुचर अपने नायकसे यदि आगे नहीं बढ़ सका तो पार्श्वचर तो हो ही गया था। अवश्य ही उसने अश्वको इतनी दूर कर लिया था कि दोनों हाथोंकी करवालें अपना कृत्य अबाध करती रह सकें।

'बंदा बैरागी !' आततायियोंमें जिसने सुना, उसीके मुखसे चीख निकल गयी। बहुधा प्रख्यात पुरुषोंका नाम

ही पर्याप्त हुआ करता है फिर बंदाके सम्बन्धमें तो यवनसैन्यमें अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित थीं। 'वह आसमानसे उतर आता है। चाहे जब गायब हो जाता है और चाहे जहाँ पहुँच जाता है। उसके साथ भूतोंकी एक फौज रहती है। उसे न तो तलवार काटती और न तीर तकलीफ देते। शैतान खुद उसके साथ रहता है।' ऐसी और भी बहुत-सी बातें अच्छे-अच्छे मौलवी कहा करते थे। हथियार हाथोंसे छूट गये और घोड़ोंकी पीठपर कूदकर वे भागे जिधर रास्ता मिला।

'बंदा बैरागी!' पीड़ितोंने भी सुना। 'सत् श्री अकाल!' 'हर हर महादेव!' उनके हाथोंमें बाँस और जलती लकड़ियाँ आ गयीं। भयके स्थानपर साहसका सञ्चार हुआ। नारियोंने भी उल्मुक उठाये! आततायियोंके ऊपर आघात प्रबल हो गया। अन्ततः ग्रामीणोंने भी तो अनेक किंवदन्तियाँ सुनी थीं। 'वे सिद्ध योगी हैं। उनकी ओर चला बाण लौटकर चलानेवालेको ही मार देता है। साक्षात् हनुमान्‌जी और भवानी उनके साथ युद्ध करती हैं। उनका छूटा बाण एकसे सौ हो जाया करता है।' ऐसे दिव्यपुरुषकी दैवी सहायता पहुँचनेपर भय कहाँ रह सकता था। अब तो भागते हुओंसे प्रतिशोध लेना था गिन-गिनकर और जब दस्यु भाग गये तो वहाँ बंदाका पता नहीं था। सब पहलेसे जानते थे कि वे योगिराज अदृश्य हो जाया करते हैं। कौन बतावे कि वे दोनों अश्व शत्रुओंके पीठ फेरकर भागते ही अपने मार्गपर बढ़ गये। कार्य समाप्तकर रुकना बंदाके स्वभावमें नहीं है।

(३)

'सत् श्री अकाल !' चर घोड़ेसे कूदा और उसने खड्ग मस्तकसे लगाकर उच्च स्वरसे अभिवादन किया।

एक सुसज्जित अश्व पासमें तृण चर रहा था। चरके स्वरसे चौंका वह और घूमकर अपने स्वामीके सम्मुख खड़ा हो गया। हिनहिनाकर उसने सूचना दे दी कि मैं प्रमत्त नहीं हूँ। एक ओर धनुष पड़ा था और दूसरी ओर त्रोण। कृपाणें अपनी म्यानोंमें शिलापर शयन कर रही थीं। भयङ्कर भल्ल पृथ्वीमें गड़ा हुआ प्रतीककी भाँति खड़ा था और लौह-कवच सूर्य-किरणोंसे तप्त हो रहा था। प्रकृतिकी शान्त गोदमें एक सुचिक्कण पाषाण-खण्डपर मृगचर्म डालकर अश्वत्थमूलमें वह शान्त, शुद्ध सत्व ही जैसे मूर्त होकर ध्यानस्थ अवस्थित हो।

पलकोंमें गति आयी। क्रोडीमें पड़े उत्फुल्ल पाटल-समान करपल्लव हिले। उस तेजोमयने धीरेसे नेत्र खोले। चर दोनों पैरोंको मिलाकर मस्तकसे खड्ग लगाये शान्त खड़ा था। अब उसने मस्तकसे हाथ हटाया। कृपाण म्यानमें चली गयी। 'शत्रु प्रबल हैं ! अपने सैनिक पीछे हटनेको विवश हो रहे हैं। यदि यही गति रही तो हम घेर लिये जायँगे। सुना है, शत्रुकी एक सैन्य और आ रही है।' मस्तक झुकाकर चरने परिस्थिति स्पष्ट की। अश्व फिर हींस उठा। जैसे वह भी कह रहा हो 'देव ! आपके पहुँचनेकी आवश्यकता है और मैं तो प्रतीक्षा ही कर रहा हूँ।'

'सर्वात्माकी इच्छा पूर्ण हो ! विद्युत्की तीव्रतासे उस कौपीनधारीका तेजोमय शरीर कवच एवं शिरस्त्राणसे आच्छादित हो गया। त्रोण कटिमें कस लिये गये और कृपाणें दोनों ओर झूलने लगीं। कंधेपर धनुष पहुँचा और अश्वकी काठीमें भल्ल लगा दिया गया। एक हल्की थाप और जो दो क्षण पूर्व सुशान्त महर्षि प्रतीत हो रहा था, वही अश्वपर प्रचण्ड महाभैरवकी भाँति उड़ा जा रहा था। चर जानता था कि बंदाके अश्वका साथ पहाड़ोंपर दे सके ऐसा अश्व उसके समीप तो क्या, सेनामें दूसरा है ही नहीं। आवश्यक भी नहीं था कि वह साथ ही पहुँचे।

'वाह गुरुकी फतह !' 'सत् श्री अकाल !' और 'हर हर महादेव !' का तुमुल-नाद अपने दिगन्तव्यापी उद्घोषमें 'अल्लाहो अकबर !' को शीघ्र ही आक्रान्त करके गूँजने लगा। विजयश्री जैसे बंदाकी प्रतीक्षा ही किया करती है। एक या अनेक, प्रबल या प्रबलतम, बंदा कभी नहीं सोचता शत्रुके सम्बन्धमें। वह तो जैसे प्रलयकालीन पयोदोंकी भाँति उमड़-घुमड़कर आता है और अपने वज्राघातोंसे छिन्न-भिन्न करके चिथड़े उड़ा देता है शत्रुयूथके। असह्य हैं उसके आघात। अमोघ हैं उसके बाण। पहुँचते ही गिन-गिनकर प्रतिपक्षके प्रधानोंके मस्तक लक्ष्य बनते हैं। उसकी उपस्थिति ही अपनोंमें जीवनका प्रवाह प्रवाहित करती है।

'शत्रु भाग रहे हैं ! अब उनकी संख्या ऐसी नहीं कि आप सब अपर्याप्त सिद्ध हों।' बंदाने धनुषकी ज्या

उतार दी और अश्व मुड़ पड़ा। सब जानते हैं कि अब पर्वत-शिखरपर पहुँचनेसे उसे कोई रोक नहीं सकता। वह योगी अपने अश्वकी पीठसे मृगचर्म उतारकर किसी शिलापर बैठ जायगा और तब कौन कह सकता है कि वह युग-युगसे उसीपर बैठा नहीं था। वह व्यूह नहीं बनाता। आक्रमण या रक्षणकी योजनाएँ उसके मस्तिष्कको विकृत नहीं करतीं। वह तो प्रलयङ्करकी भाँति पुकारनेपर पहुँचता है और आदेश देकर कार्यमें लग जाता है। योजनाएँ और व्यूह उसका अनुगमन करते हैं।

'अपार सम्पत्ति हाथ लगी है!' नायकने पर्वत-शिखरपर पहुँचकर विजयके उपरान्त सूचित किया। 'यदि आप योग दें और हमारा संचालन स्वीकार करें तो सुदृढ़ राज्य स्थापित हो सकता है। शत्रुको प्रबल आघात लगा है। इस समय हम व्यवस्थित एवं सुस्थिर हो सकते हैं। हमें आपके ओजमय संरक्षणकी आवश्यकता है।' नायक दूरदर्शी था और उसने अनुभव कर लिया था कि यदि बंदा एक बार चेष्टा करें तो पाञ्चाल सदाको निरापद हो जायगा।

'जिनको आवश्यकता हो, सम्पत्ति उनमें वितरित कर दो!' वह वैरागी—भला उस वीतरागको ये प्रलोभन प्रलुब्ध कर सकते थे। 'बंदा! न तो शासन करने आया है और न सञ्चय। वह तो सर्वात्माका बंदा है। उसका काम करना—वह इतना ही जानता है। तुम-लोग अपना संगठन सुदृढ़ करो और अपना संचालक अपनेमें-से ही किसीको चुन लो। वैरागी इन जंजालोंमें पड़ना नहीं

चाहेगा।' उस वाणीमें स्थिरता थी और एक उलाहनेका भाव भी। इस प्रकार व्यर्थकी बातोंके लिए अपने एकान्त ध्यानमें व्याघात देनेकी धृष्टता जो नायकने की थी, उसके लिए शब्दोंमें नहीं; किंतु स्वरमें एक मृदु चेतावनी थी।

'विपक्ष इस समय दुर्बल है और केवल आपमें वह शक्ति है कि हमें संगठित करके ठीक मार्ग दिखावें। सम्पत्तिको वितरित करनेकी अपेक्षा उससे सैन्य-संग्रह अधिक उपयुक्त होता!' नायकने एक बार और साहस किया। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ था और वैरागी-जैसा निर्लिप्त पुरुष उसकी दृष्टिमें नहीं आता था, जो निःस्वार्थ भावसे जातिके अभ्युत्थानके लिए अनवरत उद्योग करनेमें सक्षम हो, साथ ही लोकमतपर भी उसका प्रभुत्व हो।

'मुझपर दया करो।' वैरागीके अन्तःकरणको लोभ विचलित नहीं कर सकता था और कामके अतिरिक्त दूसरे किसी दायित्वको लेनेमें वह सहमत नहीं था। 'मैं बंदा हूँ और उसी प्रकार कार्य करूँगा। सम्पत्ति संचित हो या वितरित, तुम लोगोंने उसे प्राप्त किया है और तुम्हीं उसकी व्यवस्था करो। मैं तो एक क्षुद्र व्यक्ति हूँ। मुझसे व्यवस्था एवं संचालन होनेसे रहा। जो सचराचरमें व्याप्त है, उस महान्‌के लिए—उसकी तुच्छ सेवाके लिए उद्योग कर सकूँ, बस!' नेत्र बंद कर लिये उसने। निराश नायकको लौटना पड़ा।

(४)

'देखो, तुम फकीर हो! हिंदू तुम्हें हिंदू नहीं कबूल करते और सिख तुम्हें सिख माननेको तैयार नहीं।'

मौलवीने शब्दोंमें मिठास घोलकर समझानेका प्रयत्न किया। जैसे उसके समान भला आदमी दुनियाँके पर्देपर और कोई न होगा। वह दयाके कारण द्रवित हो गया है और भलाई करनेकी इच्छाने उसे विवश कर दिया है। 'तुम इस्लाम कबूल कर लो। खुदा तुम्हें माफ़ कर देगा और जहाँपनाह तुम्हें रुतबा बख्शेंगे!' सफेद लम्बी दाढ़ी, पैरोंतक लम्बा चोगा और हाथमें तस्बीह। दिलका कालापन भला इस बाहरी सफेदीसे छिपा करता है?

पैरोंमें बेड़ियाँ पड़ी थीं। दोनों हाथ जंजीरोंसे जकड़े थे। इतनेसे सन्तोष न हुआ तो भुजाओं और कमरमें भी मोटी जंजीर बाँधकर खम्भेमें भली प्रकार जकड़ दिया गया था। गर्दनके अतिरिक्त कोई अङ्ग हिल सके, ऐसा नहीं था। सामने कड़ाहेमें तेल खौल रहा था और कई तीक्ष्ण सलाखें अङ्गारमें अरुण हो रही थीं। यमदूतकी भाँति जल्लाद एक ओर खड़ा था। बगलमें और पीछे सैनिक नंगी तलवारें लिये पंक्तिबद्ध थे और जो इन सब क्रूरताओंका आयोजन करनेवाले थे, वे अपने सफेद चोगेमें अपनेको भला साबित करनेका जी-तोड़ श्रम कर रहे थे। उन कलुषकार्योंकी जहाँके जहाँपनाहका शाही तख्त बड़ी शानसे सजाया गया था। सिंहको शृङ्खलाओंमें जकड़कर अब शृगाल अपनी शक्ति-प्रदर्शन कर रहा था। आज दिल्लीकी मस्जिदोंमें घीके चिराग़ जलेंगे और समारोह मनाया जायगा। जिसने बादशाहकी नींद हराम कर दी थी, वह आज पकड़ा जा चुका था।

'तुम अपना काम करो।' जैसे वनराजने एक शशकको झिड़क दिया हो। उसकी तेजोमयी आँखें उठीं और बेचारे मौलाना खौफके मारे गिरते-गिरते बचे। चार कदम पीछे हटकर खड़े हुए वे। 'मैंने जिसके लिए सदा काम किया है, वह आज प्रसन्न है। मुझे अब वह अपने समीप बुला रहा है। मैं अपने धर्मको जानता हूँ। दूसरोंके मानने-न-माननेसे उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।' वहाँ न रोष था और न कष्टका कोई चिह्न। शान्त, स्थिर, गम्भीर। भयके ये समस्त विधान उसे भीत करनेमें असमर्थ रहे थे। जैसे वह किसी सूने अरण्यमें वृक्षोंके सम्मुख खड़ा हो और अब किसी शिलापर ध्यानके लिए बैठने ही वाला हो।

'तुम फौजमें सबसे बड़े सिपहसालार बना दिये जाओगे।' अब बादशाह खुद बोल रहे थे। मौलानाकी बातोंपर अगर विश्वास न होता हो तो उन्होंने अपने आप शङ्काओंको दूर कर देना उचित समझा। 'महज इस्लाम कबूल करना होगा। किसी तरह तुम्हारी बेइज्जती नहीं की जायगी और जो तुम्हारी बेअदबी करेंगे, सल्तनतकी ताकत उन्हें जहन्नुम भेज देगी। तुम आजाद हो सकते हो!' कितना बहादुर है यह काफिर, बादशाह खयाल करते हैं कि अगर यह उनकी फौजमें हो, कितनी बड़ी ताकत हासिल कर लेंगे वह।

'मैं बहुत दिनोंतक सेनापति रह चुका।' हँसा वह शूरमा। 'मैं जिसका सेनापति था, उसके यहाँ तू झाड़ू भी देने योग्य नहीं है।' इतनी धृष्टता, इतना साहस,

इस अवस्थामें भी यह उन्नत मस्तक। सभासद् चौंके। अपमानने बादशाहके चेहरेको तमतमा दिया।

'तुमने बेशुमार गुनाह किये हैं और अब भी अपनी बेअदबीसे बाज नहीं आ रहे हो। ऐसी हरकत माफ नहीं की जा सकती !' बादशाहका स्वर इतना नम्र क्यों है ? कोई नहीं जानता कि आज वे एक विधर्मी दुश्मनपर इतने रहमदिल कैसे हो रहे हैं। 'मैं नहीं चाहता कि एक बहादुर फकीर अपनी नादानीकी वजह मुफ्तमें मारा जाय। मैं तुमको माफ कर दूँगा और कतई जोर नहीं दूँगा कि तुम अपना मजहब छोड़ो !' मौलवी और मुल्लाओंके चेहरोंपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। यह क्या होने जा रहा है। दो-एकने परस्पर इशारे किये और एकने कुछ कहनेकी दरख्वास्त भी की।

'मैं जानता हूँ कि मेरे दरबारका कोई मुसाहिब नहीं चाहता कि तुम माफ किये जाओ।' बादशाहने किसीको बोलनेकी इजाजत नहीं दी। शाही ऐलान किसीकी परवा नहीं किया करता। वे कहते जा रहे थे—'मैं फिर भी तुम्हें माफ करूँगा। तुम्हें कबूल करना होगा कि तुम तख्तशाहीके हमेशा वफादार रहोगे। हमारे खिलाफ दुश्मनोंका साथ नहीं दोगे। अगर तुम चाहोगे तो शाही सेनामें तुम्हारी जगह तुम्हें खाली मिलेगी।' कुशल कूटनीतिज्ञने अपना अन्तिम फंदा फेंक दिया था।

'मैं कोई वचन नहीं दूँगा।' एक तिरस्कारभरा हास्य निकला उस भव्य मुखसे। 'मैं उस सर्वस्वरूप अनाथनाथ, अशरणशरण, दीनबन्धुका बंदा हूँ और

अपनी शक्तिभर उसके काममें लगा रहना—यही मेरा कर्तव्य है।' शान्त हो गया वह। एक संकेत हुआ। जल्लादने सींखचे उठाये चमचोंके द्वारा और तप्ताङ्गारवर्ण वे लौह-शलाकाएँ उन पद्मदलायत लोचनोंमें डाल दी गयीं। न चीख, न चीत्कार और न तड़पन। नेत्रोंसे रक्त एवं मज्जाकी धारा चल रही थी और वह निष्कम्प खड़ा था!

'हमारे हकीम तुम्हें बहुत जल्दी अच्छा कर देंगे। अभी तो महज आँखें गयी हैं। आगेकी मुसीबतोंसे बचो। अपने आपपर मेहरबानी करो और इस्लाम कबूल कर लो।' मौलवीने आगे बढ़कर कानोंके समीप मुख ले जाकर कहा। उसकी दया जैसे उमड़ आयी थी। वहाँ उत्तर कौन दे। वह सर्वेशका बंदा तो प्राणोंको संयमित करके सहस्रारमें अपने आराध्यके चरणोंमें उपस्थित हो चुका था।

भूखे कुत्तो और गीदड़ो! यह रहा बंदाका शव। अब तुम उसे नोचो या भूनो। मांसभक्षी गृद्धो! नोच लो आँतोंको। पिशाचो! बंदाका शरीर तुम्हारे सम्मुख खड़ा है। तुम अपनी पैशाचिकता सार्थक कर लो। बंदा—नाम मत लो! तुम और तुम्हारी यन्त्रणाएँ उसकी छायातकका स्पर्श नहीं कर सकतीं। वह तो जिसका बंदा था, जिसके लिए ही जीवनमें उसने एक-एक चेष्टा की, आज उसीकी अभय मङ्गलमय गोदमें जा पहुँचा है।

फल भगवान्‌को अर्पण

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ।।११।।

ढोलक एवं हारमोनियमके आकर्षणने भीड़ एकत्र कर दी थी । कथा सुननेकी श्रद्धासे उसमें कितने आये थे, कहना कठिन है । गैस जल रही थी और छोटे-छोटे पतंगे वहाँ आत्मोत्सर्गकी अनवरत शिक्षा देनेमें तल्लीन थे । किसे अवकाश कि वक्ताके स्वर-सौन्दर्यसे विरत होक, प्रकृतिके इस भव्य पृष्ठपर दृष्टिपात करे । पल्लव और केलेके पत्रोंसे एक मण्डप बना लिया गया था। भगवान्‌का पुष्पपूजित, माल्य-सज्जित चित्रपट विराजमान था उसपर और उससे कुछ नीची एक चौकीपर गद्दी लगाये, मसनदके सहारे स्थूलकाय वक्ता विराजमान थे । कुञ्चित स्निग्ध केशराशि, सुन्दर उज्ज्वल वस्त्र, चन्दन-चर्चित भाल तथा गलेमें खूब मोटी माला उज्ज्वल पुष्पोंकी । सामने हारमोनियम रक्खे वे बीच-बीचमें गाते जाते थे और ढोलकवाला उस समयके लिए सावधान रहता था ।

बहुत कम सौभाग्य होता है ग्रामवासियोंको इस प्रकारके कथा-सत्संग-श्रवणका । मैली दरियाँ और फटे कम्बल तथा टाटपर दिनभरके कठोर परिश्रमसे थके वे अपने कान लगाये उस स्वर-सुधाका पान कर रहे थे । वक्ता यदि चाहते तो मध्यमें हाथोंपर तम्बाकू रगड़नेवाली

चिटकियाँ बन्द हो जातीं और यह पिट्-पिट्का ठोंकना सुनायी नहीं पड़ता। वे स्वयं मुखमें पान भरे हुए थे, अतः विप्रोंके तमालपत्रपर उन्हें कोई आपत्ति नहीं हुई। भोले ग्रामीण—उनमें-से एक भी उठा नहीं द्वारके समीप जहाँ हुक्का-चिलमका प्रबन्ध था, वहाँके लिए। अवश्य ही आते समय कथामें बैठनेसे पूर्व किसी-किसीने खड़े-खड़े ही दो फूँक लगा ली थी।

ग्रामके मुखियाके द्वारपर कभी-कभी काशीके कोई व्यास आ जाते हैं। कुछ दिन उनकी कथा हो जाती है। समीपके गाँवोंसे भी लोग आते हैं। आरतीमें एक पैसा चढ़ानेकी चिन्ता तो करनी पड़ती है; किंतु ऐसे अवसर कहीं बार-बार थोड़े ही आया करते हैं। बेर, अमरूद और कनेरके पुष्प प्रायः अनेकोंके इन उपहारोंसे व्यासपीठके दोनों ओरका भाग भर जाता है। खाली हाथ सिर झुकानेवाले भी कुछ होते ही हैं।

‘चौधरी, आगे आओ!’ मुखियाजीके भाईने तनिक उठते हुए आग्रह किया। सामने दरी खाली पड़ी है। गलीचेपर केवल पण्डितजी बैठे हैं। जो आता है, पीछे ही बैठना चाहता है। कुछ बच्चे अवश्य आगे बैठे हैं और उन्हें बराबर पीछेवाले थोड़ा खिसकनेकी प्रेरणा दिया करते हैं। चौधरीने अपने अमरूद पोथीपर चढ़ा दिये। व्यासजीके गलेमें गेंदेके फूलोंका गजरा डालकर मस्तक झुकाया और एक कोनेकी ओर मुड़ चले।

‘आप आगे आइये!’ व्यासजीका ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने भी आग्रह किया। एक लड़केको थोड़ा आगे

खिसकाकर चौधरी बैठ गये। वे बच्चेसे पीछे, किंतु दूसरोंसे आगे बैठे थे। उनके इस सम्मानका कारण था। वे अहीरोंके चौधरी हैं। आसपासके ग्रामोंसे उनके संकेतपर पाँच सौ लाठियाँ एकत्र हो सकती हैं। घरपर पाँच भैंसें हैं। चार-चार पट्ठे पुत्र हैं। दो हलकी खेती है। पक्का दालान है। इस सबसे अधिक यह कि थाने और तहसीलमें उनकी अच्छी पहुँच है। दहीकी हँडियाका उपहार अफसरोंतक वे पहुँचाते ही रहते हैं। पटवारी ग्राममें आनेपर उन्हींके यहाँ टिकते हैं। समीप तकके गाँवोंके मुकद्दमोंमें एक ओरकी पैरवी चौधरीजी ही करते हैं। जिसमें शक्ति है कि चाहे जिसके खेत रातमें कटवा लेगा और साथ ही थानेदार जिसके कहनेमें हैं, जिसका एक पैर कचहरीमें ही रहता है, उससे बड़ा रौब-दाबका व्यक्ति ग्रामोंमें कौन हो सकता है। मुखिया तो नामके हैं। उन्हें अपने भजन-पूजनसे अवसर कहाँ मिलता है? गाँवके सच्चे मुखिया तो चौधरीजी ही हैं। उनका सम्मान न हो, यह कैसे सम्भव है?

'आपकी कृपासे मुखियाजी तो भगवान्‌के चरणोंमें लग गये हैं।' कथा समाप्त हो गयी थी। आरती हो चुकी थी और आरतीके थालमें पूरी अठन्नी डालकर चौधरी व्यासजीके समीप आ गये थे। उन्हें स्वयं व्यासजीने प्रसाद दिया। मुखियाजीकी ओर देखकर व्यासजीसे उन्होंने कहा 'कुछ ऐसा बताइये कि मेरा भी उद्धार हो जाय। झूठ, धोखा, खेत कटवाना, लाठी चलवाना और ऐसे ही अनेक पाप करते जिंदगी बीत चली। अब बुढ़ौती आयी। किसी तरह उद्धार हो जाय, ऐसा उपाय होना

चाहिये।' मुखियाजी समीप ही खड़े थे। चौधरीने उनकी स्तुति करनेके लिए ही कहा था।

'कर्म तो कोई भला या बुरा है नहीं, उसमें अहङ्कार करनेसे ही पाप-पुण्य होता है।' व्यासजीने पाण्डित्य-प्रदर्शनका अवसर प्राप्त किया। 'आप क्या करते हैं, इससे कोई मतलब नहीं। जो कुछ करते हैं, उसे भगवान्‌का समझकर करें। ऐसा समझ लें कि भगवान् आपसे करा रहे हैं और आप उन्हींके लिए सब कर्म कर रहे हैं। कर्मके करनेमें अपने कर्तापनका अहङ्कार न होनेपर आप कर्मदोषसे मुक्त हो जायँगे।' बड़े गर्वसे उन्होंने मुखियाजीकी ओर देखा। मुखियाजीने हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया। भला, इस तत्त्वज्ञानकी श्रेष्ठता वे क्यों स्वीकार न करते?

'कर्म करूँ मैं और उससे मेरा कुछ मतलब नहीं, भला ऐसा कैसे हो सकता है?' चौधरी सहज कोई बात माननेवाले जीवोंमें नहीं हैं। अच्छे-अच्छे वकील, मुख्तारोंको अपनी जिरहसे चुप करा देनेका उन्हें गर्व है। क्या हो गया जो पण्डितजी संस्कृत पढ़े हैं। चौधरी अपनी योग्यता दिखलानेका अवसर कैसे छोड़ देते? 'मैं करूँ भगेलूके मुकद्दमेकी पैरवी और समझ लूँ कि भगवान्‌का काम कर रहा हूँ, बुलावें तहसीलदार साहब और सोच लूँ भगवान्‌के लिए दही ले जा रहा हूँ, खेत कोई काट ले मेरा और जब लठैत लेकर चलना हो तो विश्वास कर लूँ कि मैं नहीं चल रहा हूँ, यह सब बातें मेरी समझमें नहीं आतीं। भला ऐसा भी कहीं हो सकता है?'

'चौधरीजी ठीक तो कहते हैं।' चौधरीको अपनी ओर दृष्टि उठाते देख मुखियाजीने व्यासजीको पुनः हाथ जोड़ा। चौधरीकी बुद्धिकी मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए उनके नेत्र व्यासजीसे प्रार्थना कर रहे थे कि इनका समाधान कीजिये। ऐसा न करनेपर आपके साथ मेरी इज्जत भी जायगी। चौधरी कहेंगे कि कहाँका बुद्धू बुलाया मैंने।' आरतीका थाल घूमकर लौट आया था। व्यासजी पैसे और अधन्नोंको छाँटनेमें लगे थे। अठन्नी तो चौधरीजीकी अकेली ही थी। दो-तीन इकन्नियाँ थीं।

'बड़ी गूढ़ बात है। इतनी जल्दी कैसे समझमें आ सकती है।' वाक्य समाप्त करके मुख उठाते ही व्यासजी सम्हल गये। चौधरीका मुख तमक गया था। कोई उनकी समझको कम बतावे, यह असह्य था। कोई कठोर बात कहने ही वाले थे वे। 'यह बात तो महात्माओंके लिए है। हम लोगोंके उद्धारका तो यह उपाय है कि जो काम करें, उसका अच्छा-बुरा चाहे जो फल हो, तुरन्त श्रीकृष्णार्पण कर दिया करें। मन-ही-मन कर्मका फल भगवान्‌को समर्पित कर देनेसे फिर न पाप लगेगा और न पुण्य। इस प्रकार मोक्ष अपने-आप हो जायगा।' व्यासजीको यह देखकर धैर्य हुआ कि चौधरी शान्त हो गये हैं।

'हाँ व्यासजी! अबकी आपने पतेकी बात कही!' चौधरीकी समझमें यह आ गया कि जैसे अन्न, भैंस, गाय, खेत कृष्णार्पण होता है, वैसे ही कर्मोंका फल भी हो जायगा। 'आपकी यह बात तो मैं मानता हूँ।' उसी झोंकमें वे कह गये।

'आप भगवान्‌के सामने छप्परके नीचे कह रहे हैं भला।' मुखियाजीने सावधान किया। 'कहीं पीठ फेरते ही पल्लाझाड़ न हो जाय। सावधान मनसे प्रत्येक कामका फल भगवान्‌को देते जाना है।' पता नहीं क्यों, यह पक्का वचन लेना उन्हें सूझा।

'हाँ, हाँ, अहीर अपनी बातसे डिगा नहीं करते।' चौधरीको जोश आ गया। 'मैं छप्परके नीचे, भगवान्‌के सामने ही कह रहा हूँ।'

(२)

'भगवान्! इस कर्मका फल आप ले लें।' कहनेको कह गये; किंतु जैसे मनपर एक भार पड़ गया हो। मुकद्दमेकी पैरवीमें चौधरी आये थे। गवाहोंको ठीक किया और स्वयं वकीलने जैसा सिखाया-पढ़ाया कह आये न्यायाधीशके सामने। पीठ फेरते ही उन्होंने कर्मार्पण किया और साथ ही खिन्न हो गये। जीवनमें पहली बार अनुभव हुआ कि 'मिथ्या साक्षी देना अपराध है।'

'चौधरीजी! अपना खर्चा तो लेते जाइये।' मुंशीको, चौधरीजी जो खर्चा पाते, उसमें-से आठ आने नियमपूर्वक दिया करते थे। उसे अपनी अठन्नीकी चिन्ता अधिक थी। आज यह खूसट बुड्ढा पता नहीं किस धुनमें है।

'खर्चा, मैं तो भूल ही गया था!' अभ्यासवश लौट पड़े। जहाँ कहा गया, अँगूठेका निशान कर दिया उन्होंने।

'भगवान् ! इस कर्मका फल आपका ।' जैसे किसीने भीतर चुटकी काट ली । आये दूसरेके छकड़ेपर, दूसरेने रेलका टिकट ले दिया। तीन पाव पूड़ी और पावभर मिठाईसे लेकर पान, सिगरेट, सब वह दे रहा है और अब यह खर्चा किस बातका ? लौटनेके लिए भी तो व्यय वही देगा ? चौधरी समझ नहीं पा रहे थे कि जिसके वे सदासे अभ्यस्त हैं, जो कार्य किसीकी दृष्टिमें अनुचित नहीं, उसीपर आज उनका मन उन्हें क्यों नोच रहा है ।

'भैया ! यह तुम्हारा है । मेरा खर्चा तो तुम दे ही रहे हो ।' अदालतसे मिले रुपये उन्होंने उसके हाथपर रख दिये, जिसके पक्षसे पैरवी करने आये थे । वह तो जैसे सूख ही गया । उसने समझा, चौधरी रुष्ट हो गये हैं । पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगा वह । बहुत समझाया चौधरीने, परंतु वह रुपया लेनेको किसी प्रकार राजी न हुआ ।

'धरणीधरका इतना साहस कि मेरे खेतमें गाय छोड़ दें ।' घर लौटनेपर छोटे लड़के ने बताया कि मटरके खेतमें गाय पड़ गयी थी । चौधरी रोषमें आ गये । 'आज उनके खेतमें एक मटर न रहने पावे ।' लड़कोंको तो आदेश चाहिये था । उनके साथी कहाँ कम थे ।

'चौधरी ! ब्राह्मणके बच्चे दो दिन हरी मटरकी दाल खा लेते, तुमसे यह भी देखा न गया !' ब्राह्मणने सबेरे खेत देखा तो मस्तक पकड़कर बैठ गया । वह सीधे चौधरीके दालान पहुँचा । तख्तेपरसे हाथमें गड़गड़ा उठाये

चौधरी खड़े हो गये और कुछ मुसकराते हुए उन्होंने अभिवादन किया। ब्राह्मण और करता भी क्या। उसने कहा—'कल गायने रस्सी तोड़ ली। पशु ही ठहरा, आपके खेतमें पहुँचते ही मैं पीछे दौड़ा गया था। आपको यही उचित लगा तो ठीक है। भगवान् आपका भला करें!' नेत्र पोंछते हुए वह लौट चला।

'भगवान्! मेरे कर्मोंका फल आपका।' सहसा चौधरीके हाथसे गड़गड़ा छूट गया। चिलम फूट गयी और अग्निकी चिनगारियाँ चमकने लगीं। वह दुर्गन्धित जल हुक्केसे निकलकर उनके कर्मोंकी भाँति वातावरणको दूषित करने लगा।

'अलगू!' कुछ देर हतबुद्धि-से चौधरी बैठे रहे और अन्तमें उन्होंने अपने बड़े लड़केको पुकारा। 'आजसे जबतक मटर खेतमें रहे, एक बोझ खूब कसके तुम खुद पण्डित धरणीधरके घर दे आया करो! मैं भूल जाऊँ तो तुम याद दिलाना, खलिहानसे पक्के बारह मन मटर उनको भेजना है!' लड़केने स्वीकार कर लिया। पिताकी आज्ञापर आपत्ति करना अभी उसने सीखा नहीं है।

'भगवान्! मेरे कर्मोंका फल आपके चरणोंमें।' चौधरीको लगा कि इस बार कोई भीतर हृदयके बहुत निचले स्तरमें धीरेसे मुसकरा उठा है। एक भार जो पड़ा था मनपर कुछ कम हुआ। चौधरीने छोटे लड़केको पुकारकर समझाया कि गड़गड़ा ताजा कर ले और नयी चिलम भरकर ले आवे। वे अपने कर्मोंके सम्बन्धमें सोचने

लगे। इधर तीन दिनोंसे उनमें जो परिवर्तन हो गया है, इससे वे स्वयं आश्चर्यमें हैं।

'अदालत जाना तो मैंने छोड़ दिया।' बड़ी आशा लेकर आया था वह। चौधरीजीसे बहुत पुरानी मित्रता है। बराबर उसे सहायता मिलती रही है उनके द्वारा। वे और अदालत जाना छोड़ दें! अवश्य कोई भूल हुई है। किसी कारणसे अप्रसन्न हैं। एक काइयाँ है—कुछ अधिक लेना चाहता था, उससे कहीं अधिक देनेका वचन दिया। चौधरीने जो एक बार नाहीं की, सो की। दबाव पड़े, लोगोंने केवल एक बार जानेका आग्रह किया। 'हमारे कहनेसे!' इस प्रकारके अनुरोध हुए। एकान्तमें देन-लेनकी बातें चलानेकी प्रार्थना की गयी। चौधरी आखिर अहीर ही तो हैं। वे हठपर उतर आये थे। लोगोंने नाक-भौं सिकोड़ा। किसीने घमण्डी बताया और किसीने कहा, 'दो पैसे होनेसे मगरूर हो गया है।' चौधरी अविचल रहे।

'लूट-पाट, चोरी-बदमाशी, दूसरोंके खेत उखाड़ना, कटहल तोड़ना और किसीको मारना—मेरे रहते अब यह कुछ नहीं कर सकते तुम सब!' बड़े लड़केको बुलाकर एक दिन डाँटा उन्होंने। 'मैंने कुछ सुना तो दारोगा साहबको बुला लाऊँगा और हथकड़ी भरवा दूँगा। अपने लड़के हो तो क्या हुआ! झूठी गवाही देने बहुत बार कचहरी गया हूँ, एक बार सच्ची गवाही देनेमें मेरे पैर नहीं काँपेंगे। जो अपने दरवाजे आवें, उन्हें बैठाओ। पानी पिलाओ। तंबाकू दो। किसीके साथ कहीं गये तो

मुझसे बुरा कोई न होगा !' उस दिन प्रथम प्रहर रात्रिके पश्चात् लठैतोंकी मण्डली एकत्र हुई थी। लड़केको तो डाँटनेका बहाना था, वे सबको सुना देना चाहते थे।

'अपनी ईखमें आग लगा दी किसीने ! दौड़ता हुआ मझला लड़का मुर्गा बोलनेके पहले आया। एक बार जो अन्यायमें प्रोत्साहन पाकर उद्धत हो गये हैं, वे किसीके नियन्त्रणमें नहीं रहा करते। चौधरीने शामको जो फटकार दी थी, उसका बदला दिया गया था उन्हें। 'खून पी लूँगा मैं उसका। देखूँगा कहाँ जाता है। नामका पता तो चुटकी बजाते लग जायगा !' हाथमें गँडासा लिये वह नवीन रक्तका ओज क्रोधसे काँप रहा था।

'बको मत ! चलो, बाल्टी उठाओ ! देखता हूँ, कितनी जलती है।' चौधरीने एक बड़ा घड़ा लिया और पुत्रोंको पुकारकर दौड़े। बड़ी तीव्रतासे अग्निपर जल पड़ने लगा। बीचमें गन्ना काटा जाने लगा, जिससे अग्नि वहाँ पहुँचकर आगे न बढ़ सके। सब करके भी आधा खेत जल गया। घर लौटते समय चौधरीने उत्तेजित पुत्रोंको समझाया 'तुम्हारा प्रारब्ध कोई छीन नहीं लेगा। जो तुम्हारे भाग्यमें नहीं था, वही तो गया है। चलो बड़ा अच्छा हुआ। कल अपने और मुखियाजीके भी कोल्हूको दिनभर चलने दो। सब गन्ना पेर डालो जो जल गया है। आजका सब दही और कलका सब दूध मिलाकर गाँवभरको शर्बत पिला दो। पासके दोनों गाँवोंके सब ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर दो। जले गन्नेका शर्बत बड़ा

मीठा होता है। पीने दो सबको छककर। बड़ा आनन्द आवेगा।'

इस बुड्ढेको हो क्या गया? किसीकी आधी बात तो यह सह नहीं सकता था और आज ठट्ठ बंद लगे गन्नेके जलनेपर यह दशा है। इसी गन्नेपर तो बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। लड़कोंने ज्येष्ठकी कड़कती दोपहरीमें झुलसते हुए इसे गोड़ और सींचकर यह रूप दिया था। दूसरे अन्न किसानके पसीनेकी कमायी होते हैं; किंतु गन्नेको तो अपने रक्तसे सींचकर पुष्ट करता है वह। ऐसा लगा हुआ किसी दूसरेका खेत भी आस-पास नहीं। फूँकनेवालेने आवेशमें अग्नि तो फेंक दी साथियोंके उत्तेजित करनेपर; किंतु चौधरीके रोषका ध्यान आते ही उसके प्राण सूख गये। वह भाग गया था घर छोड़कर। चौधरीके इस व्यवहारकी कल्पना ही भला किसे हो सकती थी।

'भगवान्! मेरे कर्मोंका फल तुम्हारा है!' चौधरीने संकल्प किया और यदि आसपास दूसरे न होते तो सचमुच वे नाचने लगते। इतना उल्लास, इतना आनन्द जीवनमें प्राप्त हो सकता है, यह तो स्वप्नमें भी उन्होंने कभी सोचा नहीं था।

(३)

'यह हुक्का पीना, यह भी तो एक काम है! इसका भी तो फल है कुछ! ओह! वह भी भगवान्‌को देना पड़ेगा! उस भगवान्‌को, जिन्हें बड़ी सुगन्धित धूप दी

जाती है !' चौधरीजीने गड़गड़ेको उठाकर पत्थरकी पटियापर पटक दिया। धातुका पात्र, फिर भी वेग बड़े जोरका था। झनझनाकर टुकड़े हो गया। एक ही दिनमें तंबाकूको इस प्रकार विदा मिल गयी। वैसे आगतोंके स्वागतके लिए दो घंटे बाद ही दूसरा गड़गड़ा और चिलम प्रस्तुत हो गयी; किंतु फिर चौधरीने उसे हाथ नहीं लगाया।

'भोजन और बिना भोग लगाये खाया जायगा !' अन्ततः भोजनमें-से मांस तो चला ही गया था; मिर्च, खटाई, तेल और सब अल्लम-शल्लम दूर हो गया। भला भगवान्‌को इन सबका भोग कैसे लगता। चौधरीके लिए बड़ी पवित्रतासे भोजन बनता और उनके प्रसाद ले लेनेपर तब घरके लोग मिर्च, मसाला उपयोगमें लेते। दिनमें भुना 'दाना' लेना चौधरीने छोड़ दिया। अब तो एक जामुन या बेर भी मुखमें डालनेसे पूर्व वे देखते हैं कि भगवान्‌को भोग लगा या नहीं। बड़े सबेरे स्नान किये बिना भला अब कैसे काम चले ?

'इसका फल भगवान्‌को देने योग्य होगा या नहीं ?' काम करके उसका फल समर्पित कर देना दूरकी बात हो गयी। अब तो कोई काम प्रारम्भ करनेसे पहले वे यही सोचते हैं। उन सर्वशक्तिमान्‌को किसी बुरे कर्मका फल कैसे समर्पित किया जा सकता है ? फल तो सभीके समर्पित करनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। अतः समर्पित किये जा सकें ऐसे कर्मफलके उत्पादनका ध्यान रखना नितान्त आवश्यक हो गया।

गाँवमें आये साधु-संत अब मुखियाजीके द्वारपर कदाचित् ही ठहर पाते हैं। चौधरीजीका स्नेहभरा सत्कार और कहाँ मिलेगा ? पूर्णिमाको सत्यनारायण भगवान्की कथा होती है और एकादशियोंको रात्रिभर ढोल-झाँझ बजाकर कीर्तन तथा रामायण। कोई-न-कोई महात्मा टिके ही रहते हैं। कथा-सत्सङ्ग चलता रहता है। गाँवके तथा समीपके ब्राह्मण पर्वोंपर खुले हाथ दान पाते हैं। भिक्षुकोंने तो नियम बना लिया है कि इधर आनेपर रात्रिमें चौधरीके द्वारपर ही रोटी बनाते हैं। आटे-दालके साथ दानेदार शीरा और दही या दूध जो मिलता है यहाँ।

चौधरीजी अब 'भगत चौधरी' हो गये हैं। उनके यहाँ कोई कुछ माँगने आवे, 'ना' तो है ही नहीं। कोई बीमार हो जाय तो दूध चौधरीजी पहुँचा दिया करेंगे उसके घर, कोई अर्थसंकटमें हो तो उधार चौधरीजीसे गुपचुप ले जाय, किसीके यहाँ कोई पर्व-उत्सव हो तो चौधरीजी एक सेवककी भाँति खड़े मिलेंगे वहाँ। थाने और तहसील छूट गये कभी। अब तो गाँवके झगड़े वे प्रायः समझाकर सुलझा देते हैं। एक दिन जो सबके लिए भय तथा आतङ्कके कारण थे, आज वही सबके आदर और श्रद्धाके पात्र हैं। पहले भयके कारण कोई चौधरीका एक तृण नहीं छूता था और आज तो कोई दूसरेको उनके खेतमें घास काटते देख ले तो वहीं कचूमर निकाल दे उसका। आज चौधरी सबके अपने हो गये हैं।

छोटा पौत्र बीमार है। वर्षभरका शिशु और आज तीन दिनसे आँखें नहीं खोल रहा है। ज्वर जो चढ़ा सो

उतरनेका नाम नहीं लेता। बड़ा प्रिय है वह चौधरीको। दिनभर उनकी ही गोदमें खेला करता था। उनकी सफेद मूँछोंमें अपनी पतली नन्हीं अँगुलियाँ उलझाकर हँस देता था। छोटे-छोटे उज्ज्वल दाँत चमक उठते थे। चौधरीको निद्रा नहीं आयी है, जबसे उसने खाट पकड़ी है। रात्रिभर बच्चेके सिरहाने बैठे रहते हैं। आसपासके सब वैद्य देख गये। किसीकी दवा काम नहीं करती। ज्वर कम होनेका नाम नहीं लेता। झाड़-फूँक करनेवाले आये और हाँफकर, हाथ और सिर कँपाकर वे भी चले गये।

'कोई पुण्यात्मा अपने एक महीनेका पुण्य दे दे, तो बालक स्वस्थ हो जायगा।' आज एक अच्छे महात्मा द्वारपर आये हैं। उन्होंने चौधरीके बड़े लड़केको पूछनेपर बताया। भला, यह क्या बड़ी बात है। उसके पिताके समान पुण्यात्मा कहाँ मिलेगा कोई। बड़ी उमंगसे वह घरमें आया और बालकके सिरहाने बैठे अपने पितासे महात्माका सन्देश कह गया।

'मैं—मैं पुण्यात्मा कहाँ हूँ?' चौधरीने चौंककर कहा। 'तू बच्चा है अभी। अरे मैंने तो जो कुछ किया, दे डाला। मेरे पास क्या धरा है?' वे धीरेसे उठे उन महात्माजीके समीप जानेके लिए।

'चौधरीजी! आप ग्रामकालीकी पूजा करा दीजिये। बच्चा इस प्रकार भी अच्छा हो जायगा!' महात्माने कृपा करके दूसरा उपाय बताया। पूजाकी सब सामग्री महात्माजीसे पूछकर प्रस्तुत करनेको लड़केसे कहकर वे शिशुके समीप जा बैठे। पूजाकी व्यवस्था होने लगी।

अन्तमें बच्चेको चद्दरमें ढककर चौधरी गोदमें लिये ग्रामकालीके चबूतरेके समीप पहुँचे ।

नगाड़े और शृङ्गोंके नादमें पता है ही नहीं लगा कि पण्डितजी क्या-क्या बोल गये । अक्षत, चन्दन, कुंकम, सिंदूर, जवापुष्प, माल्य, रक्तवर्ण वस्त्र और जाने क्या-क्या । प्रसाद निवेदन करके नीराजन हुआ और सुगन्धित अर्घ्य देते हुए पूरे चबूतरेकी सीमा परिवेष्टित की गयी । 'बलि दिला दो !' अन्तमें पण्डितजीने आदेश दिया ।

दूर, नैऋत्य कोणपर एकने बड़े-से मुर्गेको निकाला और छुरी उठायी । चौधरीकी दृष्टि गयी उधर । 'हाँ, हाँ' वे वहाँ पहुँच गये । 'नहीं, एकके लिए दूसरेके प्राण नहीं लेने दूँगा मैं । मेरे भगवान्‌को यह कर्म-फल ?—ना, नहीं दिया जा सकेगा !'

'आप यह क्या कर रहे हैं ? देवी रुष्ट होंगी !' पण्डितजीने समीप आकर समझाया । 'भला देवपूजामें कहीं रोक-टोक की जाती है ! आप चलिये यहाँसे !' वे हाथ पकड़कर खींचने लगे ।

'भगवती रुष्ट होंगी ? मैं नहीं जानता' चौधरीने हाथ छुड़ा लिया । 'चल भाग यहाँसे ।' डाँटा उन्होंने उसे जो मुर्गेको लिये था । 'यदि वे नाराज भी हों तो क्या होगा ! जो भी हो, इतना घोर कर्म और उसका फल ?—मैं नहीं दे सकूँगा अपने भगवान्‌को !' फटकार पाकर वह मुर्गेवाला तो खिसक गया । पण्डितजी झल्लाकर लौटे ।

'आप चलकर प्रणाम कीजिये, इतना ही बहुत है! भगवती आपका प्रणाम पाकर ही सन्तुष्ट हो जायँगी!' संत अबतक एक ओर खड़े चुपचाप देख रहे थे। उन्होंने चौधरीको समझाया।

'मा, दयामयी!' बच्चेको लड़केकी गोदमें देकर वे साष्टाङ्ग भूमिमें लेट गये उस चबूतरेके सामने और लेटे रहे।

'बच्चेके मस्तकपर हाथ रखिये। वह आपकी पूजाका आशीर्वाद पाकर ही स्वस्थ हो जायगा।' संतने एक पुष्प उठाकर चौधरीके हाथोंमें दे दिया।

'भगवान्! मेरे इस कर्मका फल आप स्वीकार करें।' अभ्यासवश चौधरीके नेत्र बन्द हो गये। मस्तक झुक गया और जैसे किसी अलक्ष्य पदोंमें कुछ समर्पित कर रहे हों, पुष्पउन्होंने चढ़ा दिया। वह भूमिपर गिर पड़ा। हक्के-बक्के होकर उन्होंने पुष्पपर दृष्टि डाली जो उनके पैरोंके समीप ही पृथ्वीपर पड़ा था और तब संतके मुखकी ओर इस प्रकार देखने लगे, जैसे उनकी दयनीय दीनता क्षमा माँग रही हो।

'बाबा!' बच्चेने पलकें खोलीं और दोनों हाथ बढ़ा दिये। चौधरीने उसे गोदमें लेते हुए अनुभव किया, भीषण ज्वर बहुत कुछ घट गया है। साधुके नेत्र भर आये थे। चौधरीके हाथोंसे गिरा पुष्प उठाकर उन्होंने अपनीं जटाओंमें छिपाते हुए कहा—'देवता! तुम कुछ चाहते हो, यही उसके पूर्ण होनेके लिए बहुत है। जिसके सम्पूर्ण कर्म सर्वेश्वरको समर्पित हुआ करते हैं, सर्वेश उसके अपने हो चुके। उसकी इच्छा ही सर्वेशकी इच्छा है!'

महत्तम

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

'मनको, जहाँ भी जाय वहाँसे लौटाकर, स्थिर करो और सोचो कि सब क्षणिक है, सब नश्वर है, सब दुःखरूप है तथा सब त्याज्य है।' तथागतने भिक्षा ग्रहण कर ली थी। चिरञ्जीव आनन्द चीवरको स्वच्छ करने एक ओर उठ गये थे। 'अपनेको सत्यमें प्रतिष्ठित होनेका अवसर दो!' काठके लंबे आसनपर भगवान् अमिताभ अर्धोत्थित लेटे थे। केवल कुशासन बिछाया गया था उसपर और गृहपति उन अरुण चरणोंको गोदमें लिये श्रद्धासे सिर झुकाये मूक भावसे स्थित थे। साथका भिक्षुवर्ग चुपचाप सुन रहा था।

'धर्मं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि!' भगवान्‌ने धीरे-धीरे इन तीन वाक्योंका उच्चारण किया और गृहपतिने उसकी आवृत्ति कर दी। इस प्रकार तो अबतक कोई भिक्षु नहीं बनाया गया है। न पहलेसे कोई प्रस्तावना हुई और न गृहपतिने प्रार्थना ही की। कोई नियम, कोई विधि व्यवहृत नहीं हुई। तब क्या अब भगवान् गृहस्थोंके लिए भी महावाक्य उन्मुक्त कर रहे हैं। भिक्षुवर्ग कुछ समझ नहीं पा रहा था।

बड़ी श्रद्धासे कल इन भद्र गृहस्थने प्रभुको संघके साथ अपने यहाँ भिक्षा करनेका निमन्त्रण दिया था। तथागत किसीके निमन्त्रणको स्वीकार करके प्रसन्न हों, कल यह नवीन बात देखनेमें आयी थी। नित्यके नियमके विपरीत समयसे पूर्व ही प्रभु भिक्षुओंके साथ यहाँ आ गये थे और उनका व्यवहार इनके गृहमें इस प्रकार उन्मुक्त हो गया था, जैसे वे संघाराममें हों।

सहसा प्रभु उठे और द्वारदेशकी ओर मुड़ पड़े। 'क्या सचमुच गृहपतिको उपदेश देकर भी भिक्षु नहीं बनायेंगे वे?' भिक्षुओंने अनुगमन किया। चिरञ्जीव आनन्दने पात्र और चीवर उठा लिये थे। प्रभु सीधे संघारामकी ओर चल रहे थे। लोगोंने देखा गृहपति ज्यों-के-त्यों बैठे हैं वहीं। उन्होंने न तो प्रभुके चरणोंमें मस्तक रक्खा और न उठकर आदर दिया। मूर्तिकी भाँति वे स्थिर थे। उनके नेत्र अर्धोन्मीलित थे और पलकोंके रोमोंमें उज्ज्वल रत्न उलझ रहे थे।

'गृहपतिको क्या संघमें सम्मिलित होनेका अधिकार नहीं प्राप्त होगा!' चिरञ्जीव आनन्दने अन्तमें साहस किया।

'आनन्द! यदि हम जिनके यहाँ जाते हैं, सबको भिक्षु बनाने लगेंगे तो भिक्षुओंको भिक्षाके लिए निमन्त्रित करनेमें गृहस्थोंको भय प्रतीत होगा।' प्रभु सामान्यतः जिस गतिसे गमन करते हैं, अनुगतोंको उनका साथ देनेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है शीघ्र गतिका। आज तो प्रभु बड़े वेगसे चल रहे थे। दूसरोंको दौड़ना-सा पड़ रहा था।

'गृहपति अकेले हैं। स्त्री और पुत्र उनसे पूर्व ही शरीरबन्धनसे छूट चुके हैं। उनमें श्रद्धा है और निष्ठा भी।' आनन्दकी अधिकार-परीक्षा कभी भ्रान्त नहीं हुआ करती। गृहपतिको देखते ही वे समझ गये थे कि उनको इस मिट्टी-पत्थरके संकीर्ण आवर्तमें दुष्ट मार अधिक दिनोंतक आवृत नहीं रख सकेगा। 'भन्ते ! आपने उन्हें स्वयं दीक्षा दी है और शरणत्रयकी तीन आवृत्ति उनकी सम्पन्न हो चुकी।'

'आनन्द ! अपना संघाराम छोटा है, भिक्षुओंकी संख्या अधिक' तथागतकी दृष्टि संघारामपर थी। अब वे द्वारके निकट पहुँच रहे थे। 'भिक्षुओंको अभ्यासके लिए भी एकान्त आसन देना कठिन होता जा रहा है।' भगवान् तो कभी स्थान तथा व्यवस्थाकी चिन्ता नहीं किया करते। संघाराममें स्थान न होगा तो भिक्षु वृक्षोंके नीचे निवास करेंगे। आज यह प्रसंग अनायास क्यों उठा ? सबने एक दूसरेकी ओर देखा। स्थानके सम्बन्धमें किसी भिक्षुने कोई विवाद तो नहीं किया।

'भन्ते ! गृहपति कुमारपाल श्रीचरणोंमें उपस्थित होना चाहते हैं।' उसी दिन जब कि भगवान् भास्कर अस्ताचलकी ओर जानेको उद्यत थे, चिरञ्जीव आनन्दने तथागतको प्रणिपात करते हुए सूचित किया। 'उन्होंने मूँछों और केशोंको मुँडवा लिया है और केवल एक छोटा-सा कपड़ेका टुकड़ा कमरमें लपेटे हुए हैं।' स्वरोंमें उल्लास था तथा आश्चर्य भी।

'प्रिय भदन्त सुब्रह्मण्य कौशल्यायन !' अमिताभने सहसा आसन छोड़ा। वे बढ़े द्वारकी ओर। 'आनन्द !

नवीन पात्र और चीवर !' बिना किसी ओर देखे उन्होंने आदेश दे दिया।

कुमारपालका नवीन नामकरण हो गया। उन्हें पात्र और चीवर मिला स्वयं प्रभुके हाथोंसे और भिक्षुओंको सम्बोधित करके प्रभुने ही घोषणा की 'हमने आज मध्याह्नकी भिक्षा जहाँ ग्रहण की है, वह भवन अपने उपवनके साथ नवीन संघाराम हो गया।' आराध्य हृदयके सच्चे आवेदनको स्वीकार करनेके लिए शाब्दिक उपचारकी अपेक्षा नहीं किया करते। कुमारपालका संकल्प प्रभुके मुखसे स्वीकृति बनकर प्रकट हो गया।

(२)

'भन्ते ! कौशल्यायन—नवीन भिक्षुने साधन स्थगित कर दिया है।' संघारामके सञ्चालक सावधान रहते हैं कि कोई भिक्षु प्रमाद न करे और भोगासक्त न हो। उनकी यह सफेद बालोंसे ढकी हुई शरीररूप लकुटी वृद्धावस्थाके कारण भले ही कम्पित हुआ करे, साधनाभ्यासमें उनका समय कभी अस्थिर नहीं रहा है। उनके निरीक्षणमें प्रमाद करनेवाले भिक्षुको स्थान नहीं। उनके संघारामसे इसीलिए चपल प्रकृति भिक्षु शीघ्र ही परिव्रजन करते दृष्टि आते हैं। 'अनेक बार सूचित किया गया, किंतु वह हँसकर टाल देना चाहता है। किसी चेतावनीको गम्भीरतासे ग्रहण करना उसने अस्वीकार कर दिया है।' स्वरोंमें क्षोभ था और एक प्रकारकी वितृष्णा भी।

'आर्य ! आप उसकी ओर ध्यान न दिया करें।' प्रभु भी इन वयोवृद्धका सम्मान करते हैं। इनकी दक्षताका प्रभुकी दृष्टिमें पर्याप्त महत्त्व है। 'वह कुछ अव्यवस्थित स्वभावका है और जब उसके अन्तरकी वृत्ति ध्यानोन्मुख होगी, वह स्वतः प्रेरणा प्राप्त कर लेगा !' अमिताभ वृद्ध संघाराम सञ्चालकको दुखी नहीं करना चाहते थे और कौशल्यायनसे भला अब क्या अभ्यासको कहा जा सकता है ?

'भन्ते ! वह भिक्षा करनेके पश्चात् आसनपर लेट रहता है और लेटा ही रहता है। स्नानादिमें भी उसके द्वारा व्यतिक्रम होता है। भिक्षाके सम्बन्धमें भी वह पात्रका विचार नहीं करता, भिक्षुओंने ऐसा कहा है।' वृद्ध आज कई दिनोंसे सोचनेके उपरान्त प्रभुके समीप आये थे। किसीके सम्बन्धमें प्रभुसे दोष-निवेदन करना उनकी प्रकृति नहीं। इस बार ऐसा भिक्षु मिला था, जिसपर कहने-सुननेका कोई प्रभाव नहीं हो रहा था और वह संघाराम छोड़कर कहीं जानेको भी प्रस्तुत नहीं था। 'कभी-कभी निरुद्देश्य उपवन में घूमता है और अकारण हँसने लगता है। अनुशासित न होनेपर उसके आचरणसे शेष भिक्षुओंके चित्तमें विक्षेप होगा और उनका साधन शिथिल होने लगेगा।' संगदोषका भय उपस्थित हो गया है, यह आशङ्का ठीक ही थी।

'आर्य ! आप कौशल्यायनको मेरे समीप भेज दें।' प्रभुने गम्भीरतापूर्वक कहा। वृद्धने समझा, उनके आग्रहकी रक्षा हुई है। वे सीधे कौशल्यायनके आवासकी ओर चले गये।

'वैशाली जाना आवश्यक हो गया है। वहाँ भिक्षुसंघ आह्वान कर रहा है और अब चातुर्मास्य समाप्त हो चुका।' मध्याह्नोत्तर समय जब प्रभु भिक्षुओंको धर्मोपदेशका अन्तिम अंश सुना चुके तो उन्होंने सूचित किया। अकस्मात् यह घोषणा की गयी थी। प्रायः सबके नेत्र भर आये और मस्तक झुक गये। 'केवल आनन्द चलेंगे मेरे साथ।' अनेकोंकी आशाओंपर तुषारपात हो गया। आग्रहका कोई अर्थ नहीं था। प्रभु ऐसे आग्रह स्वीकार नहीं किया करते। उनका निश्चय सर्वदा हिमालयकी भाँति अविचल रहा है।

'चिरञ्जीव कौशल्यायन—संघारामके धर्मोपदेशका कार्य सम्पन्न करेंगे।' भिक्षुओंके चौंकनेका अवसर था। सबसे नवीन भिक्षु, सबसे साधनमें प्रमत्त और सबसे अधिक अलमस्तको यह सम्मानित पद। भिक्षुओंमें ईर्ष्या हुई और क्षोभ भी। 'आर्य अधिक वयःप्राप्त हो चुके हैं। भिक्षुओंके साधनाभ्यासका निरीक्षण ही अब आपके लिए पर्याप्त है।' अबतक वृद्ध संघारामके सञ्चालक ही प्रभुकी अनुपस्थितिमें धर्मोपदेश किया करते थे।

'भन्ते! मैं अयोग्य हूँ और श्रीचरणोंसे पृथक् रहनेमें अनिच्छुक भी।' कौशल्यायनने बड़ी नम्रतासे प्रभुके पदोंपर मस्तक रक्खा।

'योग्यताका निर्णय मुझे करने दो।' उस भव्य मुख-मण्डलपर स्नेहकी एक झलक सदा स्थिर रहा करती है। किञ्चित् हास्यने उसे दुगुना उज्ज्वल कर दिया। 'सत्य, जिसे तुम अनुभव करते हो, अपने मित्रोंपर भी प्रकट

होने दो। बुद्ध कभी विशुद्ध हृदयसे दूर नहीं रहता। मैं लौटूँगा और देखना चाहूँगा कि तुम सचमुच मुझसे पृथक् रहनेमें अनिच्छुक हो।' वे श्रोता वक्ता ही जाने कि कौन-सी पहेली उनके शब्दोंमें सुलझ रही थी।

'भन्ते! कौशल्यायनका साधन अत्यल्प है। वे अब साधनसे उपरत हो गये हैं और प्रमादको प्रश्रय दिया है उन्होंने। दोनों ओर विशाल शालतरु अपनी शाखाओंको झुकाकर अभिवादन कर रहे थे। मृगयूथ उस देवताको निकट खड़े होकर देख रहा था और पक्षियोंके कलरवमें दिगन्त उन महत्तमके जयनादसे पवित्र हो रहा था। पात्र-चीवर लिये चिरञ्जीव आनन्द प्रभुके पावन पदचिह्नोंसे पृथक् पीछे चल रहे थे। भिक्षुके लौट जानेपर अपना हृदय-मन्थन उन्होंने प्रकट किया। 'संघारामके सञ्चालक एवं दूसरा वयोवृद्ध साधननिष्ठ भिक्षुवर्ग इसमें अपमानका अनुभव करेगा।'

'भिक्षुको मान और अपमान इन दोनोंसे ऊपर उठ जाना चाहिये। दोनों असत्य हैं आनन्द!' प्रभुने पीछे नहीं देखा और न उनकी गतिपर कोई प्रभाव पड़ा। 'अभ्यासका उद्देश्य है सत्यमें बुद्धिकी व्यवस्थिति। अभ्यास ज्ञानकी प्राप्तिके लिए होता है और कौशल्यायनकी बुद्धिमें विकल्परहित अभ्रान्त सत्य प्रकाशित हो चुका है।' तथागतका मेघगम्भीर स्वर कुछ मन्द हो रहा था गतिके कारण।

'यह संघाराम अभ्यासी भिक्षुओंका है।' आशङ्काका दूसरा स्वरूप उपस्थित किया गया। 'आचरणका आदर्श

वहाँ स्वयं प्रभु भी स्थापित करना आवश्यक समझते थे।' वृद्ध संघाराम सञ्चालकपर चिरञ्जीव आनन्दकी अपार श्रद्धा है।

'अभ्यासीको प्रकाश प्राप्त होता है व्यवस्थित बुद्धिके द्वारा।' प्रभुने समाधान किया। आचरणका आदर्श तब स्थापित किया जाता है, जब उसके लिए अवकाश हो। कौशल्यायन आदर्श स्थापित कर सकेगा और हम उसे लौटनेपर देखेंगे। प्रभुके इन अधिकारपूर्ण आदेशोंपर शङ्काको स्थान कहाँ रह जाता है?

(३)

प्रभु आज पधार रहे हैं! सम्पूर्ण संघाराम स्वच्छ किया गया है। दूरतक मार्ग चन्दन और खसके सुगन्धित जलसे सिञ्चित किया गया है। धूम्रपेटिकाओंसे सुरभिकी धूम्रकुण्डलियाँ अपना आयतन बढ़ाती हैं, आकृति विस्तीर्ण करनेके साथ अस्पष्ट करती हैं और अन्तरिक्षमें एक हो जाती हैं। सम्पूर्ण नगर संघाराममें एकत्र हो गया है। आज प्रभु जो पधार रहे हैं पूरे वर्षभरके उपरान्त।

'सबसे पहले चरणपूजनका सौभाग्य किसे प्राप्त होगा?' नियमतः संघारामके उपदेष्टाका यह अधिकार है; किंतु उपदेष्टा तो अभ्युत्थान भी दे सकेंगे, इसकी आशा नहीं। चतुर्वर्गीय भिक्षुगण भी कल ही संघाराममें पधारे हैं। उन्होंने यहीं प्रभुका साक्षात् करना स्थिर किया है। तथागतकी निधिके वे सर्वप्रथम अधिकारी और वृद्ध

संघाराम सञ्चालक—इनमें-से ही किसीको यह सौभाग्य प्राप्त होता है।

'अतिथि पूजन नहीं किया करते। वे स्वयं पूजाके अधिकारी होते हैं।' पुरजनोंका अनुरोध विजयी हुआ। वृद्ध भिक्षुके प्रति उनकी श्रद्धाका सबको आदर करना पड़ा। व्यर्थ था यह विवाद। प्रभुने स्वागत-सम्भारकी स्वीकृतिके लिए दो क्षण भी नहीं दिया। वे सीधे चलते आये और आकर आरामोपवनमें अश्वत्थके नीचेकी वेदिकापर आसनकी अपेक्षा किये बिना ही बैठ गये।

'आनन्द!' पता नहीं कौन-सा संकेत था अमिताभकी उस वाणीमें। चिरञ्जीव आनन्दने चारों ओर एक दृष्टि डाली और पुनः अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुका लिया। चतुर्वर्गीय भिक्षुओंका प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करनेका कार्य समाप्त हो चुका था। नागरिक पुष्पाञ्जलि देनेमें तत्पर थे। एकके पश्चात् दूसरा आगे बढ़ रहा था। पंक्ति लगी थी श्रद्धावनत जनोंकी। कौन अभागा है जो इस अमूल्य अवसरको छोड़ दे।

प्रभुके आसीन होनेके लिए संघाराममें सुसज्जित कमरा खाली ही रहा। वे उपवनसे उठे और नगरके समीपके 'कुमारपाल संघाराम' की ओर चल पड़े। अब सबका ध्यान गया कि प्रभु किसकी अपेक्षा करते हैं। क्यों अर्चाके पुष्प एवं अधिकारियोंके अभिवादन भी दृष्टिपातके बिना शून्य बन गये हैं। प्रभुने नवीन संघाराममें प्रवेश किया और तब घूमकर वृद्ध संघाराम सञ्चालकके सम्मुख खड़े हो गये।

'भदन्त, सुब्रह्मण्य आर्य कौशल्यायन !' वृद्धके नेत्रोंसे विन्दु गिरने लगे। श्रद्धासे उनका कण्ठ भर गया। बड़ी कठिनतासे उन्होंने अपनेको सम्हाला 'आज तीसरे दिनके सूर्यदेव साक्षी हैं, उन्होंने अपना आसन नहीं छोड़ा है। मेरे जीर्ण कण्ठकी ध्वनि उनके कानोंतक पहुँचनेमें अनेक प्रयत्न करके भी असमर्थ रही है। आचमन भी नहीं किया है उन्होंने। उनके पात्र और चीवर—अनाथ-से पड़े अपने आराध्यकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'आनन्द !' प्रभुने गम्भीर कण्ठसे आदेश दिया। 'खिले हुए कमलके पाँच पुष्प।' तब क्या बुद्ध आज किसीकी अर्चना करेंगे ? चिरञ्जीव आनन्दने चीवर और पत्र आधारपर रख दिये। उनकी अञ्जलि श्वेत-पद्मके पाँच पुष्पोंसे पूर्ण हो गयी। किसी नागरिकने उन्हें प्रभुके चरणकमलोंमें सर्मपित करनेके लिए मँगाया था। धन्य हो गया वह। उसके पुष्प प्रभुने माँगकर स्वीकार किये। तथागतने वृद्ध भिक्षुकी ओर देखा। वे एक ओर मुड़े और प्रभुके पीछे चिरञ्जीव आनन्दका उपस्थित जनवर्गने अनुसरण किया।

एक संकीर्ण द्वारदेश। भीतमें इतना स्थान भूमिसे कटिपर्यन्त ऊँचे स्थलपर बना था कि एक पुरुष आसन लगाकर सीधे बैठ सके। कुशकी चटाई पड़ी थी उसमें, और जैसे कोई प्रतिमा प्रतिष्ठित कर दी गयी हो उसपर। कौपीन लगाये, निष्कम्प दीपशिखाकी भाँति स्थिर। श्वास-प्रश्वासके कोई चिह्न लक्षित नहीं हो रहे थे। एक स्निग्ध प्रकाश उस छोटी-सी कोठरीको प्रकाशित कर

रहा था। बिना किसीकी प्रेरणाके भिक्षुओंकी अञ्जलि बँध गयी और मस्तक झुक गये। जो नागरिक पहुँच सके थे, उनके मस्तक भूमिका स्पर्श कर रहे थे। भिक्षुओंके साथ ही वे घुटनोंके बल बैठ गये थे।

'जिसका मन सत्यमें स्थिर है, वह ध्याननिष्ठ उससे श्रेष्ठ है, जिसकी बुद्धि सत्यमें व्यवस्थित है।' प्रभुने चतुर्वर्गीय भिक्षुओंकी ओर दृष्टि की। 'ज्ञान है बुद्धिकी व्यवस्थिति और ध्यान है उसका परिपाक। भिक्षुको सदा अपनेसे श्रेष्ठकी पूजाके लिए उद्यत रहना चाहिये।' मस्तक झुकाकर आदेश स्वीकृत हुआ। चिरञ्जीव आनन्द अन्तिम कमल उन ध्यानस्थके पदोंपर चढ़ाने तब भीतर जा सके, जब उनके लिए भीतर जानेका मार्ग प्रशस्त हुआ। उस संकीर्ण कोठरीमें अपनी श्रद्धाका उपहार एक-एकको क्रमशः अर्पित करना था।

'वत्स!' तथागतके अभय करकमलने स्नेहपूर्वक मस्तकका स्पर्श किया। पलकें हिलीं और उन पावन पदोंपर मस्तक रखते-रखते उस महाभागने सुना 'अन्ततः तुम मुझसे नित्य सामीप्य स्थापित करनेमें समर्थ हो गये।'

'शान्ति-शाश्वत शान्त क्या प्रभु....!' आनन्दातिरेकमें वाणी भावको स्पष्ट करनेमें असमर्थ हो गयी।

'मूर्तिमती शान्तिका साक्षात् करके ही पूछ लेना यह!' प्रभुने उठाया और हृदयसे लगा लिया उनको।

'मूर्तिमती शान्ति—मारकी भाँति शान्ति भी क्या मूर्त होती हैं।' प्रकोष्ठके बाहर चिरञ्जीव आनन्द सोचने लगे थे।

(४)

'मैं स्वयं इसे उन चरणोंमें अर्पित करूँगा।' भाद्रपद समाप्त हो रहा था। बड़ा सुन्दर आम था पका हुआ, सिन्दूरी, मोहक सुगन्धिसे संयुक्त। कहाँ पाया होगा उसने इसे। एक ही आम्रफल और दो प्रतिद्वन्द्वी। राजकुमार शतसे सहस्र निष्क तक पहुँचे और वह नगरकी सर्वश्रेष्ठ वेश्या, वह वैभवमें किस नरेशसे कम है, उसने दो सहस्र निष्क मूल्य देना चाहा। एक तुच्छ फलको इतना स्वर्ण देकर जहाँ उत्सर्ग करनेको ये लालायित हैं, वहाँ वही उत्सर्ग करके अपना जीवन क्यों न सार्थक करे। उस दरिद्र मालीने निश्चय करके दोनोंको निराश कर दिया।

'ओह खाली हाथ जाऊँगी वहाँ!' राजकुमार तो लौट गये; किंतु वेश्याके परितापकी सीमा नहीं थी। अपने घृणित व्यवसायको तिलाञ्जलि देकर सादे श्वेत वस्त्रोंमें वह उन जगत्के उद्धारकर्ताके पावन पदोंका साक्षात् करने निकली थी। जीवनमें पहली बार अकेली पैदल राजपथपर उसे लोगोंने देखा था। दस सहस्र और लक्ष, आम्रका चाहे जो भी मूल्य देना चाहती थी। सुना था कि अमिताभको आम्र अत्यन्त प्रिय है। वह दरिद्र माली; वह आज कुबेरकी सम्पत्ति भी ठुकरानेका साहस एकत्र कर चुका था। उपेक्षापूर्वक हँसकर उसने फलको वस्त्रोंमें छिपा लिया और चलता बना।

'भाग्यवान् है यह!' जिसके पैरोंमें युवराज और नगरसेठ लुढ़कते रहते हैं, आज वह राजपथपर अपनेको

भिक्षुकीसे भी हीन अनुभव करके सतृष्ण नेत्रोंसे दूर-दूर होते मालीकी ओर देख रही थी। व्यर्थ है उसका ऐश्वर्य ! तुच्छ है उसका रूप ! जब वह दृष्टिसे ओझल हो गया तो मस्तक झुकाकर बालिकाकी भाँति रोने लगी वह। 'मैं प्रभुके चरणोंमें आम्रफलोंके ढेर लगा दूँगी।' अन्तमें मानी हृदयने सङ्कल्प किया। इस प्रकार तो वह दर्शन करने नहीं जावेगी। लौटी वहाँसे अपने राजभवनके समान विशाल प्रासादकी ओर। एक संकेतपर ही तो वह अनेकों आमोंके बगीचे खरीद सकती है।

'यह घृणित धन और इसका उपहार—कैसे स्वीकार करेंगे प्रभु !' भवनके द्वारपर पहुँचकर पैर रुक गये सहसा। अभीतक अनेकों विशाल आमोंके बगीचे उसके मानस नेत्रोंके सामने घूम रहे थे। सहसा एक ध्यान आया और मालीके फल न बेचनेका रहस्य जैसे स्वतः ही प्रकाशमें आ गया हो। वहीं खड़ी होकर वह सोचने लगी। कुछ। 'पूर्वजोंकी थोड़ी-सी भूमि और उसमें एक कुआँ !' बाल्यकालकी एक धुँधली स्मृतिने उसे चौंका दिया। जैसे मालीने लौटकर आम्रफल रख दिया हो उसके हाथोंमें।

बहुत प्राचीन हो गयीं वे स्मृतियाँ। उसे स्मरण है कि जब उसने अपनी सम्पत्ति दरिद्रोंमें वितरित कर दी तो कितनोंको आश्चर्य हुआ। कितने दुखियोंने उसे आशीर्वाद दिए और कितने सत्पुरुषोंने प्रशंसा की। आश्चर्य प्रकट करनेवाले और व्यङ्ग करनेवाले भी कम नहीं थे। इस ग्राममें आकर जब पहले-पहले उसने घाससे भरे अपने खेतको देखा, तो कितनी निराशा हुई, यह भी स्मरण है। अब तो बड़ी मधुर लगती हैं वे स्मृतियाँ। उस

समय तो कुएँमें वट एवं पीपलोंके झुरमुट हो गये थे और कबूतरोंने उसमें घोंसले बना लिए थे अपने।

आज हाथ एवं पैरोंके ये श्रम-चिह्न—ओह! छाले बने, घाव बने और धीरे-धीरे कठोर हो गये। उसका सुकुमार शरीर और दिनभर ग्रामके किसानोंके खेतोंमें, जलती दुपहरी और प्रचण्ड वर्षामें कठोर श्रम। धीरे-धीरे ज्वर, दौर्बल्य, सब उसकी श्रद्धा एवं निश्चयकी सुदृढ़ शिलापर मस्तक पटककर पराजित हो गये। उसे किसीसे आभारस्वरूप तनिक भी सहायता नहीं लेनी थी। अपने श्रमके परिवर्तनमें ही श्रम लिया उसने। खेत स्वच्छ हुआ, कुआँ सुधरा और अन्तमें वह दिन भी आया, जब वह आमके प्रथम पौधेको हाथोंसे रोप सकी। कितनी प्रसन्न हुई थी वह उस दिन। कितना आनन्द मिला था उसे।

ये आमके वृक्ष—वृक्ष कौन कहता है इन्हें। अपने हृदयके रक्तसे जैसे माता शिशुका पालन करती है, रात-दिवस एक करके पाला है उसने इन्हें। एक-एक शाखा, प्रत्येक प्रशाखा और पत्रका इतिहास उसे कण्ठ है। कौन-सी शाखा किस वर्ष, किस समय निकली और उसमें कितने पल्लव हैं, कब कितने पतझड़ हुए, सब स्मरण हैं उसे। इन्हीं वृक्षोंमें उसके प्राण जो बसते हैं। आज वह पुकारती है तो लगता है, तरुशाखाएँ झूमकर उत्तर देती हैं। सदा देवोद्यानके समान स्वच्छ रहनेवाला उसका आमका बगीचा और आज वह फला है। डालियाँ भलीभाँति ढँक गयी हैं। सुरंग सुगन्धित बड़े-बड़े आम।

प्रभु पधार रहे हैं। राशि-राशि आमोंके मध्यमें उन्मत्त-सी खड़ी वह सोचती है कि 'प्रभु पधार रहे हैं।' और सचमुच तभी उसने देखा वे तेजोमय सचमुच अनेक भिक्षुओंके साथ उसके गोबरसे लिये स्वच्छ उद्यानकी सीमामें प्रवेश कर रहे हैं। क्या करे वह ? जैसे किसीने काठकी एक प्रतिमा बनाकर कपड़ेसे ढककर खड़ी कर दी हो। उसके अङ्गोंसे गति छीन ली किसीने।

'आम्रपाली ! बड़े सुरभित हैं तुम्हारे ये फल।' प्रभुने एक राशिके समीप आसन लगा लिया। निवेदनकी अपेक्षा किये बिना उन्होंने फल उठाया, पात्रके जलसे धोया और श्रीमुखसे लगा लिया। 'यह आम्रोद्यान तो संघाराम बनने योग्य है ?' मन्द-मुस्कान आयी उस मुखकमलपर।

'सेविकाका सौभाग्य !' अब कहीं आम्रपालीको कुछ चेतना हुई। श्रीचरणोंपर मस्तक रक्खा उसने और भिक्षुओंने देखा, प्रभु आम्रास्वादन करते हुए ही उससे आवृत्ति कराने लगे 'धर्मं शरणं गच्छामि....।'

'मूर्तिमती शान्ति—आनन्द ! कौशल्य !' प्रभुने पीछे दृष्टि की। 'कर्मोंके फलको त्याग देनेके अनन्तर ही शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है। यही महत्तम स्थिति है और इसका प्रत्यक्ष रूप सम्मुख है तुम्हारे। पूछना है तुम्हें कुछ इस मूर्तिमती शान्तिसे ?' कौशल्यायनकी वाणी असमर्थ थी; किंतु उनके नेत्रबिन्दु अपनी बात कह रहे थे।

लोकसंग्रही

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।।१३।।
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।१४।।

'ओह !' यद्यपि नियमतः हिलना और बोलना नहीं चाहिये था, किंतु आकस्मिक अवसरोंपर गति एवं शब्द करनेमें शरीर मस्तिष्ककी अपेक्षा नहीं किया करता ।

'मारो मत !' पार्श्वचरका उठा हुआ हाथ वहीं रह गया । एक क्षणका विलम्ब होता आदेश देनेमें तो खड्गकी मूठ कचूमर निकाल देती ।

'ऐसोंको भी क्षमादान ?'

'जब एक हीन होकर भी अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता तो दूसरा मानव होकर पशु क्यों बने !' करवालकी कराल धारसे गुल्फका आहत अंश चीरकर नीललोहित रक्तकी चार-पाँच बूँदें निचोड़ दीं उन्होंने ।

'तब हमें इस आखेटसे उपरत हो जाना चाहिये ।' सूचना मिली थी कि नरभक्षी व्याघ्र इसी संकीर्ण पर्वतीय प्रान्तमें है और यदि वह यहाँ है तो ज्येष्ठकी प्रचण्ड दोपहरीमें जलके लिए इसी मार्गसे उसे निर्झरतक जाना होगा । दूसरा मार्ग इन कण्टकाकीर्ण गुल्मजालोंमें सम्भव नहीं । प्रातः दिनका धवल प्रकाश विस्तीर्ण होते ही वे

दोनों पर्वतोंके मध्यके इस संकीर्ण स्थलको अवरोध करके आ जमे थे। बुन्देला छिपकर आघात नहीं करता। आड़की आवश्यकता नहीं थी। धनुषपर बाण चढ़ाये वे वीरासनसे स्थिर बैठे थे। प्रतप्त शिला, तीक्ष्णतम आतप, उरगश्वास-सदृश वायुके झकोरे और शरीरसे धाराप्रवाह चलता स्वेद—आखेटक इनकी ओर दृष्टि डाले तो आखेट कर चुका।

'जब एक अनेकके लिए भयावह हो जाता है, तो उसका शासन अनिवार्य होता है!' आहत भाग बाँध दिया गया था और आसन अब भी स्थिर था। अकस्मात् समाचार मिला था कि व्याघ्रने एक ग्रामीणकी बलि ले ली। बिना किसीको सूचना दिये, अश्वकी पीठपर कूद-कर प्रस्थान हो गया था। पार्श्वचर यदि निरन्तर साथ न रहता होता तो अनुगमन न कर पाता। अश्व दूर छोड़ दिये गये, स्थानका निरीक्षण हुआ और आसन लग गये।

'जब यवन-आक्रमणका समाचार मिलता है, अथवा वे कहीं पास होते हैं......' पार्श्वचर अधिक धृष्ट हो गया था। उसकी दृष्टि अब भी उस बड़े काले बिच्छूपर थी, जो एक बार दंश न करके भी भाग नहीं रहा था। थोड़ी दूर हटकर ठीक सामने एक शिलासे सटकर डंक उठाये बैठा था। ऐसे क्रूर जीवकी यह शान्ति उसे अप्रिय लग रही थी।

'मैं अपने आपको भूल जाता हूँ। मेरे ये उपदेश हवा हो जाते हैं और क्रोध मुझे लाल कर देता है?'

वाक्य पूरा किया गया। 'भगवान्‌ने छत्रसालको शासक बनाया है। उसका कुछ कर्तव्य है। जब किसीके क्रूर कर्म विश्वकी शान्ति एवं सत्त्वके आराधकोंके लिए उत्पीड़क हो जाते हैं, विश्वात्मा उसे क्षमा नहीं करता। अत्याचारी यदि सामान्य क्रियासे न माने, उसे दण्ड देनाभी उसपर उपकार ही है। वह अपने दुष्कृत्योंसे अपना अधःपात करता है।' महाराज छत्रसालके दीर्घ नेत्र घूमे पार्श्वचरकी ओर।

'तब यह बिच्छू?'

'यह क्षुद्र प्राणी! प्रकृति है उसकी और यहाँ अरण्यमें हम उसके निवासके समीप न आते तो हमें क्या भय होना था।' महाराजके स्वरोंमें दया थी। 'व्याघ्र यदि ग्राममें जाकर अपनी प्रकृतिको विकृत न करता, हम उसका पीछा क्यों करते? पता नहीं हमने कितने अपराध किये हैं अपने सहस्र-सहस्र जन्मोंमें! समस्त अपराधोंके दण्डका विधान हो तो क्या गति होगी विश्वात्माके सम्मुख हमारी! प्रभुने हमें एक भार दिया है और हमें सावधान रहना है कि उनके मङ्गलमय विश्वमें उत्पीड़न एवं अशान्ति उन्मुक्त क्रीड़ा न कर पाये।' सम्मुख कुछ गति जान पड़ी। भूमिमें दुबककर तृणोंकी उच्चताका लाभ लेकर कोई पादचारी सरीसृप बननेका स्वाँग कर रहा था। दोनों धनुषोंकी प्रत्यञ्चा खिंची। एक प्रचण्ड गर्जनसे कानन ध्वनित हो गया।

'बेचारा वनपशु।' महाराजने बाण खींचा। दोनों बाण मस्तक फोड़कर घुस गये थे। वनराज एक ही गर्जन करके शान्त हो गया था। बाणोंके स्थानसे दो धाराएँ

निकलीं और महाराजके पादत्राण अरुण हो उठे। 'कितनी सुन्दर, सुपुष्ट आकृति है !' जैसे कोई आत्मीय आहत हो गया हो। बुन्देला केसरी उस केसरीके शरीरपर ममताके हाथ फेरने लगा था।

'महाराज ! सचमुच आप देवता हैं।' पार्श्वचरके नेत्र भर आये। उसने घुटने टेके और बैठ गया। 'मैंने छत्रपतिकी बहुत प्रशंसा सुनी है; किंतु यह अलौकिक करुणा........।' कण्ठ भर आया था उसका।

'मत कहो ऐसी बात !' वाक्य पूरा करनेसे पहले महाराजने उसके मुखपर हथेली रख दी। 'महाराज शिवाजी—मैंने उन्हींके पादतलमें बैठकर जो कुछ पाया है, जीवनमें उसे अवतीर्ण करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। वे मेरे आदर्श हैं, आचार्य हैं, मार्गदर्शक हैं !' महाराजके नेत्रोंमें श्रद्धाश्रु भर आये।

'एक ओर ये देवोत्तर पुरुष हैं और दूसरी ओर दिल्लीका वह मानवताका घृणित उपहास, जिसके कृत्योंपर दानव भी लज्जित होता है।' पार्श्वचर उठ खड़ा हुआ था। उसके नेत्र गगनकी ओर उठ गये थे। जैसे क्षितिजके पार अवस्थित किसीको उलाहना दे रहा हो वह।

'पूर्वजन्मका पुण्य !' महाराजके स्वरोंमें न तो रोष था और न घृणा। वे उसी स्नेहस्निग्ध स्वरमें कह रहे थे। 'दिल्लीपतिका ऐश्वर्य, वैभव, शक्ति और प्रताप उसके पूर्वपुण्योंका परिणाम है। भाग्यशाली है वह। अपने लिए वह अब आगे विपत्तिका मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

मायामोहित जीव सत्कर्मका फल प्राप्त करके प्रमत्त हो गया और अब नहीं देखता कि विपरीत कर्मोंके द्वारा वह अपने लिए विपरीत स्थितियोंका स्वयं सृजन कर रहा है।' जैसे कोई अपने मित्रके अधःपातपर दुखी हो रहा हो।

'महाराज छत्रसालकी जय!' दूरसे तुमुल ध्वनि आयी। राजधानीमें महाराजको न पाकर नीतिज्ञ मन्त्री सावधान हो गये थे। महाराजका क्या ठिकाना। वे अकेले ही उद्धत दस्युओंके विरुद्ध, पूरी यवनसेनाके सम्मुख या किसी रुग्ण दीनकी झोंपड़ीमें कहीं भी पहुँचे हो सकते हैं। समाचार मिलनेपर वे कहीं प्रस्थान करनेमें सूचना देनेका विलम्ब भी सह नहीं पाते। सैनिकोंके समूह इधर-उधर भेजे गये। उनमें-से एक दलने महाराज तथा पार्श्वचरके अश्वको दूरसे पहचान लिया था।

'क्या हुआ!' पर्वतीय भूमिपर ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े पाषाणों, तृणोंपर उछलते अश्व बढ़े आ रहे थे। अतिकाल हो रहा था और महाराजने जलतक ग्रहण नहीं किया था। इस ग्रीष्मकी तीक्ष्णतासे कण्ठ सूख रहे थे। अश्वोंकी गति तीव्र हो गयी थी। सहसा महाराजका दाहिना हाथ उठा और रश्मियाँ खिंच गयीं। अश्वोंके अग्रिम पद ऊपर उठकर वहीं टप्से गिरे। सबने इधर-उधर कारण जाननेको दृष्टि की।

'नन्हा प्राणी!' कूदकर महाराजने पृथ्वीपरसे कुछ उठा लिया। तनिक-सी अस्पष्ट ध्वनि, जैसे कोई क्षुद्र कीट बोलता हो। बार-बार खुलता और बंद होता

चंचुपुट। एक शुक-शावक महाराजके हाथोंपर था। अभी रोम पूर्णतः आये नहीं थे। पता नहीं कैसे गिर गया था। बार-बार वह चंचु खोलता था कुछ पानेके लिए। माताके चंचुसे आहार पानेका अभ्यास हो गया था उसे। छोटे-छोटे नेत्र चञ्चल हो रहे थे।

'जो पतित, दुष्ट हैं, उनकी उपेक्षा। द्वेष किसी प्राणीसे नहीं। पुण्यात्मा जनोंसे मैत्री और पीड़ित, दुखी, दीन प्राणियोंपर दया!' पार्श्वचर आवृत्ति कर रहा था और देख रहा था कि गुरुदेवका उपदेश मूर्तिमान् हो गया है उसके सम्मुख।

(२)

'राजकुमार बहुत अधिक अस्वस्थ हैं! अन्तःपुरमें उत्कट प्रतीक्षा है!'

'महाराज! एक वृद्धा द्वारपर दर्शनोंके लिए अवस्थित है। जराजीर्ण, मलिनवस्त्र, कोई शूद्रा जान पड़ती है!' प्रतिहारीने ध्यान नहीं दिया कि अन्तःपुर-रक्षिका भी कुछ निवेदन कर रही है, यवनिकाके समीपसे।

'उपस्थित करो वृद्धाको!'

'राजकुमार—महारानी अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं!' अन्तःपुरकी वेत्रपाणिकाने पुनः मस्तक झुकाया।

'महारानीको आश्वस्त होना चाहिये। राजकुमारकी शुश्रूषाके लिए महावैद्य पीयूषपाणि भेज दिये गये हैं!' महाराजको जैसे इस घटनासे कोई सम्बन्ध नहीं।

'महाराज ! अन्नदाता !' क्षीणकण्ठ, राजसभामें साधारण जन जहाँ तक जा सकते थे, वहाँसे एक मलिनवसना वृद्धाने पृथ्वीपर मस्तक रखकर कुछ कहा। स्वर स्पष्ट नहीं हो रहा था।

'मातः !' महाराजने सिंहासन छोड़ा और उस वृद्धाके सम्मुख भूमिपर मस्तक रख दिया। 'माँ ! मैं तो तुम्हारा पुत्र हूँ। इतना संकोच, इतना भय क्या बेटेसे किया जाता है ? मुझे आशीर्वाद दो !' घुटने टेके बुन्देलखण्डका वह अधिदेवता एक कंगालिनीके चरणोंके पास अञ्जलि बाँधे बैठा था, जिसकी हुंकार अच्छे-अच्छे शूरोंको घुटनेके बल गिरा देती है, जिसके नामपर 'तोबा' करने दिल्लीका बादशाह भी घुटने टेककर बैठता है।

'महाराज !' वृद्धा तो समझ ही नहीं सकी कि यह हो क्या रहा है। उसने अपने महाराजकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। ग्रामके लोग कहते हैं, महाराज देवता हैं। यवनोंके अत्याचारसे धर्म, गौ तथा दीनोंका परित्राण करनेके लिए अवतार लिया है उन्होंने। आज आठ दिन चलकर बुढ़िया उनके दर्शन करने आयी है। वह तीर्थयात्राकी उमंग लेकर पहुँची है। बड़ी कठिनतासे उसके मुखसे शब्द निकला।

'बेटा कहो, मा ! महाराज तो झूठा है। वह तुम्हारी-जैसी वृद्धाओंकी स्नेहाशीष पा सके, तभी उसका महाराजपन उचित है।' और सचमुच उस वृद्धामें वात्सल्य उमड़ आया। उसने उठाकर महाराजको नहीं— अपने छत्रसालको हृदयसे लगा लिया। महाराजका स्वर्ण-

मुकुट उन मलिन वस्त्रोंमें द्विगुणित प्रकाश पा गया हो जैसे ।

'महाराज छत्रसालकी जय !' सहसा मन्त्रीने गम्भीर कण्ठसे ध्वनिकी और सभासदोंके कण्ठोंकी प्रतिध्वनि राजसदनके द्वारदेशसे शत-शत अश्वारोही शूरोंके कण्ठोंसे दिशाओंमें व्याप्त हो गयी ।

'एक-दो नहीं—पूरे दस दुर्गोंने बुन्देलखण्डकी अभय पताकाकी छाया स्वीकार की है !' अमात्यने हर्षातिरेकमें नहीं देखा कि महाराज उन्हें शान्त रहनेका संकेत कर रहे हैं। उत्तरसीमाका यवन सामन्त पराङ्मुख हुआ था बुन्देली करवालके सम्मुख। वह आगरे पहुँचा होगा। महाराजने जो एक दल तीन दिन पूर्व भेजा था, उसका चर राजसभामें अमात्यके सम्मुख स्थिर खड़ा था और अमात्य रक्तसूत्र पृथक् करके एक पत्र हाथोंमें लेकर आसनसे उत्थित हो गये थे। 'कापुरुष नूरुद्दीन—उसने आक्रमण करके समझा था कि बुन्देलखण्ड काबुली सेव है। झटपट उदरस्थ कर लेंगे। जब बुन्देलोंकी भवानीके दर्शन हुए तो अपने दुर्गोंमें भी शरण न मिली।' पता नहीं और क्या कहते वे आवेशमें।

'मा, अन्तःपुरमें पधारो और मुझे सेवाका सौभाग्य दो !' महाराजने वृद्धासे आग्रह किया। जैसे बालक माताकी अँगुली पकड़कर खींचता है, वे उस बुढ़ियाको ले चले। कल्पना भी नहीं थी कि जो थोड़े-से सैनिक भेजे गये थे, वे इतनी बड़ी सफलताका समाचार लायेंगे। महाराज अप्रभावित थे; परन्तु अन्तःपुरमें जाते-जाते अमात्यको उन्होंने आदेश दे दिया—'सबको समुचित

विश्रामकी व्यवस्था मिले। कल राजसभा शूरोंको सत्कृत करेगी।' अनुभवी कर्णोंने द्वारदेशका जयनाद सुन लिया था और यह बताना आवश्यक नहीं रह गया अमात्यके लिए कि चर एकाकी नहीं लौटा है। विजित दुर्गोंकी व्यवस्था करके सम्भवतः विजयी सैन्य उसके साथ ही आयी है।

'हाय रे, हत्यारेने मेरे लालको मार डाला!' महारानी आर्त क्रन्दन कर रही थीं। रोष एवं शोकसे उनके नेत्र अरुण हो गये थे। वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे और पृथ्वीपर ही पुत्रकी हस्तिदन्तनिर्मित शय्याके समीप वे पछाड़ खा रही थीं।

'भूल मनुष्यसे ही होती है। वह शिक्षा देती है कि हम आगे सावधान रहें।' महाराजने आश्वासन दिया। 'कष्ट एवं मृत्यु—ये प्रारब्धके परिणाम हैं। व्यर्थकी चिन्ता छोड़िये और कर्तव्यका स्थिर चित्तसे निश्चय करके जो सम्भव हो, कीजिये!' अन्तःपुरमें हाहाकार मचा था। महावैद्य पीयूषपाणिने राजकुमारको रजत-भस्म दिया। अत्यन्त प्राचीन बहुमूल्य भस्म अपरीक्षित रह गयी थी। राजकुमारकी बेचैनी पराकाष्ठापर पहुँच गयी। वे उदरको हाथोंसे दबाकर कराहने, तड़पने लगे। मूत्रके साथ रक्त प्रारम्भ हो गया। महावैद्यने अपने मस्तकपर हाथ पटका; ओह, भस्म अपक्व रह गयी थी। उनका समस्त शरीर जैसे श्वेत हो गया। रक्त नाड़ियोंमें हिम होता जा रहा हो जैसे। उनके श्रवण यह सुननेमें असमर्थ थे कि अन्तःपुरके लोग उन्हें कितनी गालियाँ दे रहे हैं। महाराजने पहुँचते ही परिस्थिति देखी और पुत्रकी ओर

दृष्टि डालनेकी अपेक्षा महावैद्यकी दयनीय दशापर उन्हें अधिक करुणा आयी।

'मैं अब अपने पुत्रको इसकी औषधि नहीं लेने दूँगी।' महारानीने महाराजके पैर पकड़े।

'शोकने तुम्हारी बुद्धि भ्रान्त कर दी है।' महाराजने गम्भीरतापूर्वक आदेश दिया। 'ये मेरी माता हैं। इस समय रोको इस अनपेक्षित आवेगको और सत्कार करो इनका। महावैद्यको अपना कर्तव्य करने दो और तुम अपने कर्तव्यको समझो!' महारानीने भरे नेत्रोंसे देखा। माया-ममताहीन यह पाषाण पुरुष तो उनके सम्मुख नहीं। महाराजके नेत्रोंमें कठोर कर्तव्यका आदेश था और उस परम साध्वीके वात्सल्यपर पातिव्रत्यने विजय प्राप्त की।

'राजकुमार! बेटा!' वह वृद्धा भी क्या पाषाणी हो जाती। महाराजको छोड़कर वह चली आयी थी कुमारके समीप और उसने उनके मस्तकको गोदमें रख लिया था। महावैद्यने राजकुमारको शीतल, लसदार पेय एक स्वर्ण-पात्रमें भरकर पिला दिया। राजकुमारने नेत्र खोले और शान्तिसे शरीरको सीधा करके उन्होंने व्यथासे परित्राणका अनुभव किया।

'मा!' महारानी वृद्धासे आग्रह कर रही थीं कि वे चलकर स्नान करें और कपड़े बदल लें। उष्णोदक पुष्पसारकी सुरभि लिये प्रतीक्षा कर रहा था और परिचारिकाओंने अभ्यङ्ग एवं तैल स्नानागारमें सज्जित कर दिया था।

'बच्चा सोने लगा है।' वृद्धाने धीरेसे संकेत किया।

'मा ! बहुत सम्भव है कि तुम्हारा यह पुत्र कल तुम्हारी जीर्ण झोपड़ीमें ही शयन करे।' अन्तःपुर-रक्षिकासे सूचना पाकर महाराज एकान्त कक्षमें पहुँच गये थे। एक चरको साथ लिये अमात्य वहाँ प्रतीक्षा कर रहे थे। उस कक्षसे निकलकर महाराजने पुत्रकी शय्याके समीप पहुँचते हुए महारानीको सुनाकर कहा।

'प्रभु मङ्गल करें।' महारानी चौंकी। वे जानती हैं कि उनके आराध्यदेव कभी परिहासमें भी असत्य नहीं बोलते। कोई भी आपत्ति उन्हें म्लान नहीं करती, अतः उनका मृदु-मन्द हास्य आशङ्काको निवारित नहीं कर सका।

'प्रभु तो सदा मङ्गल ही करते हैं।' महाराजका सस्मित वदन यथापूर्व था। 'कोई विशेष समाचार नहीं। नूरुद्दीनको आगरेकी महती सेनाका साहाय्य प्राप्त हो गया है। मैंने आज्ञा दे दी है अमात्यको और तुम्हें केवल यह सूचित करना है कि यदि मेरे गुप्तचरका सन्देश सत्य निकला और कहीं बुन्देले शूरोंने उस महासैन्य समर-पारावार तीर्थमें स्नान कर लिया तो कुमार को लेकर किसी पर्णकुटीको आवास बना लेना। आवेशमें अनर्थ नहीं होना चाहिये।' अल्पवय कुमारको छोड़कर महारानी पतिका अनुगमन न करें, यदि यह आदेश आवश्यक न होता तो सम्भवतः वह सन्तोषकी मूर्ति अपनी सेनाके सम्मुख अबतक उपस्थित हो चुकी होती।

(३)

'आपका इस समय जाना तो किसी प्रकार समुचित नहीं !' सामन्तोंकी स्वीकृतिने प्रधानामात्यकी प्रार्थनाको सबल कर दिया। 'प्रबल शत्रु मार्गावरोध किये पड़ा है और कौन कह सकता है कि दिल्लीकी अतिरिक्त सहायताकी प्रतीक्षा नहीं कर रहा है।' आगरासे चरने जिस सैन्यके प्रस्थानका समाचार दिया था, वह बुन्देलखण्ड न आकर महाराष्ट्र पहुँच चुकी थी।

'देश सुरक्षित रहेगा। छत्रसालके न रहनेपर भी बुन्देलोंकी भुजाओंमें तलवार पकड़नेकी शक्ति है।' महाराजके निश्चयको प्रभावित करना सदा अशक्य रहा है। 'शूरोंको इस प्रकार परमुखापेक्षी होना शोभा नहीं देता। आत्मविकासके लिए आवश्यक है कि हम आपत्तियोंका आह्वान करें। छत्रसाल कहीं जाता नहीं है। श्रीसमर्थके चरणोंमें मस्तक रखनेके पश्चात् वह आपके मध्यमें उपस्थित मिलेगा।' महाराष्ट्रकी द्वितीय यात्रा निश्चित हो चुकी थी।

'आप एकाकी जायँगे ?' यह तो आशङ्का ही भयावह थी किसीके लिए। झाँसीसे पूना—घोर अरण्यमार्ग, मार्गमें विराट् मुगलवाहिनी और एकाकी बुन्देलखण्डका हृदय उन भूखे भेड़ियोंके मध्यमें निक्षिप्त होगा।

'एक वीतरागके चरणोंमें सैन्य लेकर समुपस्थित नहीं हुआ जा सकता।' महाराजके निश्चयपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। 'दीनबन्धु पाण्डुरङ्गका द्वार इतना विशाल

नहीं कि वहाँ कोई महाराज मुकुट बाँधकर, छत्र-चमरके साथ सदल-बल प्रविष्ट हो सके। वहाँ तो मस्तक झुकाकर किसी प्रकार संकुचित होकर ही उपस्थित हुआ जा सकता है।' महाराजका मानस किसी दूसरे भावलोककी यात्रा कर रहा था।

'वर्षाके मास सन्निकट हैं। यदि कहीं वृष्टि हो गयी तो पर्वतीय पथ अवरुद्ध हो जायगा।' प्रधान अमात्य समझ नहीं पा रहे थे कि वे किस प्रकार निवारित करें।

'वर्षा और ग्रीष्म, आतप एवं हिम—ये समस्त द्वन्द्व जिसके मृदु करोंके सृजन हैं, उसके चारु चरणोंतक पहुँचनेवाले पथिकको रोकना उनकी शक्तिसे परे है।' महाराजने अनेक बाधाओंकी आशङ्का उपस्थित करनेसे सबको विरत कर दिया। 'वनपशु, अरण्यकी अनेक बाधाएँ तथा रोग, व्यर्थ है इनकी विकराल छाया। मुझे पाण्डुरङ्ग पुकार रहे हैं और मैं जाऊँगा।' भला, इस आग्रहका उपाय भी क्या।

'अल्लाहो अकवर!' यवनसैन्यके गुप्तचरोंने सूचना दे दी थी। महाराज छत्रसालने सुना—अश्वोंकी टापें पाषाणोंपर निकट होती जा रही हैं। शत्रु-सैनिकोंका शब्द समीप आता जा रहा है। क्या घेर लिये गये वे?' ध्वनि चारों ओरसे आ रही थी।

'नृमुण्डमालिनीकी जय!' वह एकाकी कण्ठघोष ही पर्वतोंमें प्रतिध्वनित होकर शत-सहस्र हो गया। अश्वने पैर रोक लिए और दक्षिण हस्त नग्न करवाल उठा चुका। जैसे मृगराज शतशः शृगालोंका शब्द सुनकर

एक बार हुँकार कर उठा हो। शत्रुके शब्द सहसा शान्त हो गये। अश्वोंके टाप सुनायी नहीं पड़ रहे थे। सहसा सन् करता एक तीर श्रवणके समीपसे चला गया। शत्रु-सैन्य वृक्ष-लताओंकी सघनताका लाभ उठाना चाहती थी।

‘पाण्डुरङ्ग ! मैं तुम्हारे समीप आ रहा हूँ।’ महाराजने अश्वको एड़ लगायी। ‘तुम्हारी ओर बढ़कर पीछे लौट जाय, यह छत्रसाल नहीं कर सकेगा।’ शत्रुने छिपकर आघात करनेकी आवश्यकता अनुभव की, यह सूचित कर रहा था कि उसका संख्याबल बहुत अधिक नहीं है। उसे ज्ञात है कि छत्रसालको सौ, दो सौ सैनिक घेर नहीं सकते। पीछे हटना निरापद हो सकता था। वह पर्वतीय संकीर्ण मार्ग एक-एकको क्रमशः युद्धके लिए विवश करता। महाराजने इस सुविधाकी उपेक्षा की।

(४)

‘ओह, आज बड़ी अद्भुत छटा है देव ! ईंटपर समव्यवस्थित जगज्जननीके साथ आपके ये सुरासुरार्चित चरण। यह सहस्र-सहस्र पूर्णचन्द्रोंकी ज्योत्स्नाको घनीभूत किये नखमणिपंक्ति ! यह तड़िताभ पीतपट और यह आजानुलम्बिनी वैजयन्ती माला। देव ! जनार्दन !’

उपचारकने मस्तकपर स्वच्छशीतल जलसे आर्द्रवस्त्र रक्खा और द्वारदेशपर स्थिर तरुण संन्यासी संकेत पाकर बाहर चले गये और दो क्षणोंमें ही कौपीनधारी आजानुप्रलम्बबाहु एक तेजोमय पुरुषने प्रवेश किया। उपचारक ससम्भ्रम अवनतमस्तक उत्थित हो गये।

'मैं—धन्य हो गया यह तुच्छ अधम, प्रभु ! नित्य कटिपर रहनेवाले कोमल करपल्लव आज मेरे मस्तकपर पड़े हैं।' रोगी प्रलाप कर रहा था। उसके दोनों नेत्रोंके कोनोंसे दो धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। वहाँ सबने अनुभव किया कि दिव्य सौरभसे वायुमण्डल पूर्ण हो गया है और रोगीके मुखसे एक आलोकराशि स्पष्ट हो रही है।

'वत्स !' महापुरुषने आगे बढ़कर मस्तकपर अपना अभयहस्त स्थापित किया। उनके नेत्र रोगीके नेत्रोंपर स्थिर हो गये थे। श्वासकी गति बढ़ी, पलकें हिलीं और प्रलाप समाप्त हो गया। रोगीके मुखपर विद्यमान प्रकाश जैसे उसके सर्वाङ्गमें व्याप्त हो गया हो।

'देव !' रोगीने गद्‌गद कण्ठसे कहा और नेत्र खोलनेके साथ ही वह आश्चर्यमूक हो गया। एक क्षण वह देख लेना चाहता था कि स्वप्न देख रहा है या सत्य। 'मेरे प्रभु ! मेरे गुरुदेव !' कोई रोके, इसके पूर्व वह शय्यासे वेगपूर्वक उठकर चरणोंमें गिर चुका था।

'मेरे बच्चे !' उन महत्तमके नेत्र भी भर आये और बैठकर मस्तकको गोदमें ले लिया उन्होंने। 'छत्रसाल ! मेरे अदम्य अजेय शूर !' केशोंपर कोमल कर फिर रहे थे और वाणी वात्सल्यविभोर होकर रुद्ध हो गयी थी।

'आपको आवेशमें नहीं आना चाहिये।' उपचारकने आहत स्थलोंपर बँधे उज्ज्वल वस्त्रोंका निरीक्षण कर लिया। सौभाग्यवश इस प्रकार उठनेसे भी कोई घाव रक्त नहीं दे रहा था। 'आपका अश्व आपको लिये हुए जब द्वारपर पहुँचा, श्री समर्थने ही प्रथम पहचाना।

आपकी चेतना लुप्तप्राय थी और शरीरपर अनेक तीक्ष्ण आघात रक्तस्रावी हो रहे थे ।' परिचारकने रोगीको कुछ बोलनेसे पूर्व सूचित किया । वह जानता था कि रोगीकी सर्वप्रथम यही जिज्ञासा होगी । इसी समय कुटीरके बाहर हींसकर अश्वने सूचना दे दी कि वह अपने स्वामीको लेकर पुनः पर्वतीय शिलाओंपर उछलते-कूदते धावित होनेको प्रस्तुत हो चुका है ।

'एक समूह था शत्रुओंका । मुझे लगा, पण्ढरीनाथ सम्मुख खड़े मुझे अपनी ओर बुला रहे हैं । अश्वकी गतिके साथ दोनों करोंमें करवालोंकी गति भी उन्मुक्त हो गयी । फिर नहीं जानता······ किंतु ।' रोगीने अपने बंद दाहिने हाथकी ओर देखा और विकसित पङ्कजकी भाँति अँगुलियाँ अमुद्रित हो गयीं । यह क्या—स्वर्णकमल ! यह तो धराका कुसुम नहीं !

'तुम आश्चर्य करते हो ?' समर्थ रामदास भरितकण्ठ कह रहे थे । 'जिसने अपनी वृत्तियोंको एकरूप करके अपने संयतचित्तको विट्ठलके श्रीचरणोंमें स्थिर कर दिया है; जिसका मन नित्य विट्ठल, पाण्डुरङ्गकी पुकार करता है; जिसकी बुद्धि उन सर्वेशमें व्यवस्थित हो गयी है; विश्वके द्वन्द्वोंसे परे, जो 'मम' एवं 'अहं' के ऊपर उठकर उनके लिए अपने-आपको समर्पित कर चुका है, उस अपने परम प्रियसे दूर रह सकते हैं वे । उनके पादपद्मोंसे यह प्रसादसुमन तुम्हें प्राप्त हुआ है, इसमें संदेहको स्थान कहाँ ।' समर्थका आदेश मिला और यात्राका उद्देश्य सफल हो चुका था । महाराज छत्रसालकी द्वितीय यात्रा वहींतक रही । कौन कहता है कि वे पण्ढरपुर नहीं जा सके ।

प्रशान्त

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।१५।।

'मैं कुछ विषयोंमें अन्ध-विश्वासी हूँ।' उन्होंने बड़ी सरलतासे कहा। 'मैं समझता हूँ कि मनुष्यको अपने व्यक्तिगत आचरणके सम्बन्धमें स्वतन्त्र रहने देना चाहिये। अब मेरे पुनः स्नानका समय हो गया है और इसके पश्चात् लगभग एक घंटा एकान्त चाहिये मुझे।' साहित्य एवं राजनीतिकी चर्चाका उपसंहार हो गया। बात ठीक भी थी। भोजनसे पूर्व जिसे एक घंटा एकान्त चाहिये, उसे अभी समय न देनेपर सबको प्रतीक्षा करनी होगी।

'आपको भगवान्‌की पूजामें क्या-क्या आवश्यक होगा!' जिस छात्रने सदा छूत-छात और पाठ-पूजाका उपहास किया हो, जो देव-मन्दिरोंको अनावश्यक बतानेमें गौरव मानता हो, जो धर्मको मानव-दुर्बलताओंका पुञ्जीभाव एवं ईश्वरको मानवका मानस-पुत्र कहकर खिल्लियाँ उड़ाया करता हो, उसकी यह शालीनता अद्भुत थी। 'पुष्प, बिल्वपत्र, तुलसीदल और प्रसाद। हाँ, प्रसाद क्या लगायेंगे आप? शेष सब तो बगीचेसे अभी संगृहीत हो जायँगे!'

'केवल तुलसीके दो दल और वह मैं स्नानके पश्चात् स्वयं ले लूँगा!' उन्होंने बड़ी सरलतासे हँसते हुए कहा—

'आपके बगीचेके पुष्प शोभाके लिए लगाये गये हैं और मेरे भगवान् तो पुष्पकी अपेक्षा श्रद्धाके अधिक भूखे रहते हैं। नैवेद्यके लिए मेरे पास थोड़ी-सी दाख हैं।' जहाँ पुष्पोंके समीप 'तोड़ना मना है' की सूचनाएँ लगी हों, वहाँके लिए यह उपयुक्त उत्तर था।

'आप सङ्कोच करते हैं। मैंने अभी स्नान नहीं किया है। स्नान करके रेशमी धोती पहन लूँगा और तब आपके लिए पुष्प चयन करूँगा।' नवीन रक्त उत्साही होता है। युवकोंको जो सूझ गयी वह तो करके रहेंगे। 'आपके भगवान् फल खायेंगे या मिष्ठान्न? बस, इतना बता दीजिये।' वहाँ सभी उत्सुक थे इस नवीन कौतुकमें योग देनेको।

'श्यामसुन्दर भी बड़े रसिक हैं। उन्होंने यहाँ भी माल उड़ानेका डौल कर लिया!' खुलकर हँसे वे। 'अच्छी बात, आप सुमन संग्रह कीजिये। पुष्पोंकी माला गूँथिये। तुलसीदल एवं दूर्वाङ्कुर तथा अखण्ड अक्षत भी। बाजारकी मिठाइयोंसे मेरे नन्हे-से भगवान्का पेट बिगड़ेगा! मैं उन्हें फल और मेवा ही निवेदन करना चाहूँगा।' उनकी सूची पूरी होते ही दो-तीन साइकिलें चल पड़ीं फलोंके लिए बाजारकी ओर और नलपर भीड़ करनेके लिए कइयोंने धोती-तौलिये उठाये। आजकी शीघ्रतामें साबुन-तैलके लिए अवकाश नहीं।

'कुएँपर बाल्टी होगी?' उन्होंने पूछा।

'बाल्टी, रस्सी और जल, सब हो जायगा। आप चलिये तो सही।' क्या है इस धोती-कुर्ता पहने, मुण्डित

मस्तकपर बड़ी-सी चुटिया फहरानेवाले ग्रामीणमें ? इस छात्रावासमें तो ग्रामोंसे आये छात्र अपने सहपाठियोंके उपहासके भयसे शीघ्र चोटी-जनेऊ विदा कर देते हैं। किसीके घरसे कोई आ जाय और कहीं सन्ध्या करने बैठ जाय तो उसके मुखपर ही वे उच्छृङ्खल कह देते हैं— 'नाक सड़ गयी होगी, दाबे बैठे हैं।' यहाँ न कोई खड़ाऊँ पहननेका साहस कर सकता और न सिर घुटानेका। यहाँ तो विभिन्न प्रकारके सजे, कटे केश, क्रीम-पाउडरसे चमकते, मूँछोंसे सफाचट मुख, उज्ज्वल वस्त्र और लचकते चलनेवालोंका आदर है। इस नित्य परिहासके जगतमें यह 'जंगली हूस' कैसे जम गया।

'जी, चप्पल उतार दीजिये और जाकर फिरसे स्नान कीजिये।' एकने अपने ही एक सहपाठीपर व्यङ्ग किया। 'इस प्रकार तो आपके चुने पुष्प स्वीकृत हो चुके!' स्नान तो नहीं किया उसने; किंतु सचमुच पैर तो धो आया। कुछ लोगोंमें एक प्रकारका आकर्षण होता है। पण्डित मदनमोहनजीमें भी कुछ ऐसी ही बात है। अपने ग्रामके एक छात्रसे मिलने आये। उनकी बड़ी चुटिया, लंबी मूँछें और पण्डिताऊ धोती तथा तिलकने सबको आकर्षित किया। सबको जैसे विनोदका साधन मिला। उपहास करते एक भीड़ एकत्र हो गयी। एक-दोने व्यङ्ग किया और लज्जित हो गये। उनकी प्रगल्भ वाणी, प्रशस्त भाषा एवं आत्मीयताके साथ व्यवहार करनेकी पद्धतिने सबको मौन कर दिया और कुछ देरमें ही अपनी प्रतिभाके कारण सबकी दृष्टिमें वे श्रद्धास्पद हो गये। 'मैं केवल फल लूँगा।' उन्मुक्त हासमें प्रसाद वितरित हो चुका था

और अब भोजनकी घंटी बज चुकी थी। यह कैसे सम्भव था कि जिस चौकेमें छुआछूतका कोई भेद न हो, जहाँ कोई भी कपड़े पहने बैठ जाया करता हो और भीतर चौकेसे रोटी ले आता हो, वहाँ पण्डितजी भोजन कर लें। उन्होंने अपने लिए मार्ग निकाल लिया।

'आज एकादशी तो है नहीं।' कहनेवालेको पता भी नहीं था कि आज तिथि कौन-सी है। उसने एक दूसरे छात्रकी ओर देखा। समस्याकी जटिलता सब समझ रहे थे। 'मेरे पास बिल्कुल नया स्टोव है। नन्दकिशोरजी अभी पूड़ी-साग बना देते हैं और दही-चीनीमें तो कोई बात है ही नहीं।' अपनी प्रत्युत्पन्न मतिका परिचय दिया उसने। एक साथ कई इधर-उधर आवश्यक सामग्री एकत्र करनेमें चल पड़े। उन्होंने पण्डितजीको भोजन करानेके पश्चात् ही भोजन करनेका निश्चय कर लिया।

'लेकिन इतनी खटपट किसलिए?' उन्होंने प्रयत्न किया कि सब लोग भोजन करने चले जायँ। 'मैं केले और दूधसे भली प्रकार तृप्त हो जाऊँगा।' इस प्रकारकी बातोंको कोई सुना नहीं करता और यदि सुन और स्वीकार कर ले तो समझना चाहिये कि वह भी बला टालना चाहता है। एक कमरेका सामान एक कोनेमें ले गया। जमीन धो दी गयी और स्टोव जल गया। जहाँ काम करनेवाले हाथोंकी संख्या गिननी पड़े, वहाँ कितनी देर लगती थी।

'रसोइया तो आपकी ओरके एक ब्राह्मण हैं।' छात्रोंने अपना निश्चय बताया 'सन्ध्यासे ऐसी व्यवस्था

हो जायगी कि आपको हमारे चौकेमें भोजन करनेमें आपत्ति न हो। हमलोग कुछ सीखेंगे ही। नगरमें जितने दिन रहना हो, आपको यहीं रहना होगा। कोई असुविधा नहीं होगी।' सरल व्यवहार कहाँ आत्मीयता नहीं स्थापित कर लेता। जिनपर कोई उपदेश प्रभाव करनेमें असमर्थ था, जो प्रातःकाल शय्या-त्यागके पूर्व ही चायकी माँग करते हैं और उठते हैं तब, जबकि अच्छी तरह धूप निकल आती है। वे ही सूर्योदयसे पूर्व स्नान करके किसीके लिए सुमनसञ्चय करनेमें प्रतिद्वन्द्विता करेंगे—कौन सोच सकता है।

'आप मुझे क्षमा करें।' अभ्यासवश भोजनके उपरान्त उस छात्रने सिगरेट जला ली और आकर बैठ गया पण्डितजीके समीप। पण्डितजी धीरेसे उठे और कमरेसे बाहर आ गये। वह समझ भी न सकता, यदि सहपाठियोंने सावधान न किया होता। सिगरेट एक ओर बुझा दी गयी और उसने अपनी भूल स्वीकार की।

'इसमें क्षमाकी क्या बात?' उन्होंने स्वभावसिद्ध हँसीके साथ कह दिया, 'तुम सिगरेट पी रहे थे, मुझे उसके धुएँसे अरुचि है तो उठ आया। दोनोंको अपने सम्बन्धमें स्वतन्त्रता चाहिये। वैसे कोई विशेष कार्य होता तो मैं बैठा ही रहता। अन्ततः रेलके डिब्बोंमें बैठा ही तो रहता हूँ। हम यदि अपने सम्बन्धमें किसीका हस्तक्षेप नहीं चाहते तो हमें भी इतना सहनशील होना चाहिये कि दूसरोंके कार्योंको देख सकें तथा एक सीमातक सहन कर सकें।' बड़े स्नेहसे कंधेपर हाथ रक्खा उन्होंने। भला ऐसे पुरुषसे कौन उद्विग्न होगा।

'अरे, किसीने स्मरणतक नहीं किया।' एकने मुखपर अँगुली रखकर सङ्केत किया और वह उन्मुक्त हास्य, अनर्गल प्रलाप, सब सहसा बंद हो गया। कूपकी पश्चिम दिशामें अस्तंगत भगवान् आदित्यकी ओर मुख किये वे ध्यानस्थ बैठे थे। सन्ध्याकी अरुणिमा उनके भव्य भालपर अन्तरका अनुराग लेकर प्रतिबिम्बित हो रही थी। शिक्षकोंका भी उपहास करनेवाले वे उद्धत इस प्रकार शान्त एवं मृदुपदोंसे चले जा रहे थे जैसे अपराधी बालक गुरुजनोंके समीपसे दूर जानेका प्रयत्न करते हैं।

'हमने प्रमादवश बाधा दी आपकी सायं-उपासनामें।' सन्ध्यासे उठते ही मण्डलीने उनको घेर लिया। 'हाकीके उल्लासमें हममें-से किसीको स्मरण नहीं रहा कि आप समीप ही पूजा कर रहे हैं। खेलमें कोलाहल तो होना ही था। अब कलसे पीछेके पार्कमें सब जाया करेंगे।' सब समझ रहे थे कि यदि उनकी आराधनामें बाधा पहुँची तो शीघ्र चले जायँगे। पता नहीं क्यों, एक ऐसा सौहार्द हो गया था कि कोई नहीं चाहता था कि वे जायँ।

'इस प्रकार संकुचित वातावरणमें तो मुझसे नहीं रहा जायगा।' हँसकर उन्होंने आशङ्का दूर कर दी। 'यदि मेरे कारण सबको सदा सशङ्क रहना पड़े तो मुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये। मैं भी तुमलोगोंमें-से ही एक हूँ। मनुष्यको इस कोलाहलपूर्ण विश्वमें ही रहना है। वह कहाँ-कहाँसे उद्वेग प्राप्त करता रहेगा। यदि खेलका कोलाहल मुझे बाधा पहुँचाता तो कमरेमें आसन लगा लेता। अपने मनके भीतर उद्विग्नता न हो तो बाहरसे कोई उद्विग्न नहीं कर सकता। मनमें उद्विग्नता हो तो

वनमें भी भ्रमर, पक्षी, बंदर आदि उद्विग्नताके निमित्त बन जाते हैं।' यह तत्त्वज्ञान छात्रोंके मस्तिष्कमें उतरनेवाला नहीं था। उनके लिए यही बहुत था कि उनके आदरणीय अतिथिको कष्ट नहीं हुआ है और कलसे तो वे अपने खेलका स्थान बदल ही देंगे।

(२)

घरपर वृद्ध पिता हैं और छोटा भाई है। थोड़ेसे खेत हैं। भाई खेतीका प्रबन्ध कर लेता है। एक वर्ष अनावृष्टि और फिर अतिवृष्टि। इस वर्ष आशा थी कि कुछ हो जायगा। विशेषतः ईख अच्छी लगी थी। ऋणसे छुटकारा मिल जायगा। पिछले वर्षका लगान भी देना है। सारी आशाएँ भगवती जाह्नवीकी बाढ़में बह गयीं। इतनी बड़ी बाढ़ अभी कई वर्षोंमें नहीं आयी थी। अब क्या हो? यदि इस वर्ष लगान न दिया जा सका तो पूर्वजोंकी सम्पत्ति जो थोड़ी-सी भूमि है, वह भी चली जायगी। वर्षभर पेटकी ज्वाला भी शान्त करना ही होगा। घरका बीज भी तो गङ्गाजी ले गयीं। सोचा था कि इस वर्ष आचार्यका खण्ड देंगे। परिस्थितिने विवश किया। कहीं कामके अन्वेषणमें नगरमें भ्रमण प्रारम्भ हुआ। वह तो अपने ग्रामका छात्र है एक छात्रावासमें। अध्ययन छोड़नेपर कौन अपने यहाँ रहने देता। छात्रावास ही पण्डित मदनमोहनजीका आश्रयस्थल बन गया है इस समय।

'आपका प्रार्थना-पत्र स्वीकार हो गया है।' कितना उल्लास था सुननेवालेमें। छात्रोंने घेर लिया। उन सबको

अत्यन्त प्रसन्नता थी। अब वे उनके ही विद्यालयमें संस्कृतका अध्यापन करेंगे।

'आपके द्वारा मैं तो अब संस्कृत पढ़ूँगा।' यहाँके छात्र संस्कृतको मृत-भाषा मानते हैं। प्रायः संस्कृत-अध्यापकको दो-चार छात्र ही मिलते हैं और वे भी विद्यालयमें 'खूसट' समझे जाते हैं। शेष सब अर्थशास्त्र, राजनीति और विज्ञानको महत्त्व देते हैं। 'मैं भी' एक साथ कई कण्ठ-स्वरोंने आवृत्ति की। पण्डितजीके कारण संस्कृतका स्नेह उमड़ पड़ा था।

'मैं सन्ध्या करनेके लिए कुछ समय चाहता हूँ।' स्थिर शान्त शब्दोंमें सबसे उन्होंने आग्रह किया। आजतक जिस स्थानपर दो-दो, तीन-तीन विषयोंके आचार्य ही नियुक्त होते रहे हैं, उस स्थानपर एक शास्त्रीकी नियुक्ति और वह भी ऐसे व्यक्तिकी जो इधर दो सप्ताहसे छात्रावासका अतिथि हो रहा है। दस, पंद्रह रुपयेके स्थानोंके लिए दिन-दिनभर नगरमें यहाँ-वहाँ भटकता रहता है। एक बार भी नहीं पूछा गया कि नियुक्तिकी सूचना कैसे मिली। प्रार्थना-पत्र कैसे स्वीकृत हुआ। सन्ध्याके आसनपर पहुँच चुके थे और कुछ क्षण भी व्यर्थ खोने अब सह्य नहीं थे।

'आप हमलोगोंको मिठाई कब खिलायेंगे ?' छात्रोंका उत्साह शिथिल नहीं हुआ था। वे अबतक यही सोच रहे थे कि किस प्रकार अपने नये शिक्षकका सत्कार किया जाय। आयोजनोंकी रूप-रेखा अभी सम्पूर्ण नहीं हुई थी। सन्ध्यासे उठते ही पण्डितजीको उन्होंने पुनः घेर लिया।

'मेरे भगवान् तो मिठाई खाते नहीं।' हँस रहे थे वे। 'प्रसाद सबको नित्य प्राप्त ही होता है और मिठाई ही खानी हो तो प्रतीक्षा करनी चाहिये, जबतक मैं प्रथम पारिश्रमिक कहींसे प्राप्त करूँ।' यह प्रसङ्ग यहीं समाप्त करके उन्होंने पुस्तक उठायी अपने आसनपर पहुँचकर। इस समय गीता पढ़ाया करते हैं वे कई छात्रोंको।

पानी पड़े या पत्थर—उनका कार्य चलता रहेगा अपनी स्वाभाविक गतिसे। दूसरे तो उनके समान नहीं हैं। छात्रोंका मन गीतामें नहीं लग रहा था। अन्तरका उल्लास दबाना उन्होंने सीखा नहीं है। जीवनके जटिल भारके नीचे जबतक हृदयका उन्मद ओज पिस नहीं जाता; दया, करुणा, ममता, त्याग एवं कष्टको सहनेका उत्साह तभीतक रहता है। युवक प्रेरणाशील होता है। वह प्रेरणाको गम्भीरतासे ग्रहण करता है और उसीमें शक्ति होती है आदर्शपर मिट जानेकी। उसे भ्रान्त आदर्शसे प्रेरित करना समाजको विनाशके हाथोंमें सौंप देना है। एक बार जब युवक उल्लसित हो जाता है, उसका वेग अदम्य होता है। उसकी श्रद्धा उमड़ती है और जहाँ भी उमड़ती है, सम्पूर्ण वेग होता है, उसमें।

जिसके हर्षका समय था, वह तो आज एकाकी हो गया था। पता नहीं अपने तख्तेपर बैठा किस अज्ञातका ध्यान कर रहा था। हर्ष जैसे उसके लिए अस्पृश्य है। जब वह प्रातः उठा तो समझते देर न लगी कि छात्रोंके उल्लासने बहुत रात्रितक उन्हें जाग्रत् रक्खा है और इसीलिए उनमें-से प्रत्येक अभी गम्भीर निद्रामें निमग्न है।

'आदेशको सञ्चालकने पुनः निरीक्षणके लिए माँगा

है।' सबसे प्रथम छात्र पहुँचे विद्यालयके अध्यक्षके समीप। वे नियुक्ति-पत्रको पढ़ लेना चाहते थे। उन्हें कुछ खिन्नता हुई इस उत्तरसे। 'मैं स्वयं चाहता हूँ पण्डित मदनमोहनजीकी नियुक्ति। अपनी सम्मतिके साथ शीघ्रता करनेको भी लिखा है मैंने।' छात्रोंको आश्वस्त करना चाहा उन्होंने। उनको विश्वास था कि कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा। एक बार जो बात निश्चित हो चुकी है, उसे पुनः देखनेकी सञ्चालककी इच्छा कुछ अस्वाभाविक अवश्य प्रतीत होती थी; किंतु आशंकाका कोई कारण नहीं जान पड़ता था। छात्रोंको सन्तोषप्रद उत्तर मिले वहाँसे।

'आपके साथ अन्याय हुआ है!' सायंकाल छात्रोंमें प्रबल असन्तोष था। ज्ञात हुआ था कि सञ्चलाकने नियुक्ति परिवर्तित कर दी है। 'अच्छी मोटी रकम दी गयी होगी या किसी 'बड़े' का दबाव पहुँचा होगा!' अनुमानने निश्चयका रूप लिया और कुछ लोगोंने तो यहाँतक बता दिया कि किस प्रलोभनने सञ्चालकसे यह दुष्कृत्य करा लिया है।

'भाई दिनेशचन्द्र मुझसे अधिक योग्य हैं।' पण्डितजीको न दुःख था और न रोष। 'वे मेरे सहाध्यायी रहे हैं। उनके किसी सद्‌गुणके कारण ही उन्हें सञ्चालकजीने उपयुक्त समझा है। हमें स्वार्थ एवं पक्षपातके कारण दूसरोंपर आक्षेप नहीं करना चाहिये।' जान-बूझकर भी उन्होंने नहीं बताया कि दिनेशचन्द्र द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए हैं और कक्षामें भी सबसे पीछे ही बैठना अपने लिए उपयुक्त समझा करते थे वे।

'उनका सबसे बड़ा सद्गुण यह है कि वे सञ्चालकजीके सम्बन्धीके पुत्र हैं!' एक छात्र रोषसे उबल पड़ा। 'लेकिन विद्यालय तथा हमारे हितका यह दमन हमलोग सहन नहीं करेंगे।' प्रदर्शन तथा हड़तालके निश्चयके साथ विद्यालय-समितिके सदस्योंके समीप आवेदन करना भी स्थिर हो गया।

'मैं इस परिस्थितिमें अपनेको उलझाना नहीं चाहता और यदि मुझे सन्तुष्ट करके तुमलोगोंको मेरा सहयोग अभीष्ट है तो शान्त रहना चाहिये। यदि असन्तोष व्यक्त किया गया तो मुझे छात्रावास छोड़ना होगा और तब तुम्हारे प्रयत्नोंका कोई अर्थ ही नहीं होगा।' उन्होंने एकदम शान्त कर दिया सबको। 'मेरे एक सहपाठीको यह पद प्राप्त करनेका अवसर मिला है, मैं इससे प्रसन्न हूँ। मेरे कष्ट, मेरी कठिनाइयाँ और यही सब उनके सम्मुख भी तो होंगी। वे अपनी विकट परिस्थितियोंसे किसी प्रकार छूटें तो सही।' कौन जानता था छात्रोंमें कि दिनेशचन्द्र सर्वदा उन्हें अपमानित किया करते थे। उनसे द्वेष रखते तथा शिक्षकसे उनकी निन्दा करते रहते थे। इस ईर्ष्याका कारण था उनकी प्रतिभा। कक्षामें दिनेश कभी उनके समकक्ष न हो सके। आवश्यकता न होनेपर भी अध्यापनका स्थान उन्होंने प्राप्त किया था, केवल मदनमोहनजीकी ईर्ष्याके कारण। सञ्चालक उनके सम्बन्धी थे और यह सह्य नहीं हुआ कि अपने प्रतिस्पर्धीको वे इस पदपर प्रतिष्ठित देखें।

'आप क्या करेंगे?' हतोत्साह छात्रोंने प्रश्न किया।

'मैं प्रयत्न कर रहा हूँ और यही प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है।' स्वर शान्त था। 'प्रत्येक जल-सीकर तथा प्रत्येक अन्न-कणपर—विश्वके प्रत्येक पदार्थपर नामाङ्कन कर रक्खा है स्रष्टाने। जो जिसके प्रारब्धका है, केवल वही उसे प्राप्त कर सकता है। मनुष्यका लोभ, अमर्ष व्यर्थ है।' मदनमोहनजीके सन्ध्याका समय हो गया था और वे आसन उठा चुके थे।

'अपने पुस्तकालयमें एक स्थान रिक्त है!' एक छात्रने सूचना दी।

'तुम चाहते हो कि पण्डितजी अपने सहपाठीके निरीक्षणमें काम करें?' दूसरेने डाँटा। पुस्तकालयके निरीक्षणका भार संस्कृत-अध्यापकके ऊपर होता है और वही उस विभागके कर्मचारियोंको नियन्त्रित करता है।

'मैंने उसके लिए प्रार्थना कर दी है!' उन्होंने पीछे मुख किये बिना ही सूचित किया। 'ग्रन्थावलोकन तथा अध्ययनका अवकाश है उसमें। सब कार्य करना है तो किसीके भी नियन्त्रणमें कार्य करना अपमानका कारण नहीं हो सकता।' छात्रोंको आश्चर्य हुआ। इस प्रकारके निर्लिप्त पुरुषके परिचयमें वे प्रथम बार आये थे।

'आप ग्रन्थोंकी पुरानी सूची देख लें! मिला लें और नवीन सूची बना लें।' नवीन संस्कृत-अध्यापकने प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया था। कक्षामें जिससे सदा वे पीछे रहे, उसीपर शासन करनेकी भावनाने उदार बना दिया उन्हें। पहले ही दिन उन्होंने आदेश दिया—'जिन ग्रन्थोंके आवरण-पृष्ठ नष्ट या अस्त-व्यस्त हुए हैं, उन्हें

सुधर जाना चाहिये। एक व्यवस्थित सूचीपत्र चाहिये कि किन आवश्यक ग्रन्थोंका अभाव है।' आज ग्रन्थोंके प्रति उनमें अनुराग जाग्रत हो गया था। अध्ययन-कालमें की गयी उपेक्षाका जैसे पूरा प्रायश्चित्त कर लेना चाहते हों। मदनमोहनजीने शान्तिपूर्वक सावधानीसे समस्त आदेश स्वीकार कर लिये।

(३)

'आपको रहना चाहिये। कम-से-कम एक व्यक्ति तो रहे विद्यालयके निरीक्षणार्थ !' दिनेशचन्द्रने आज स्वरको नम्र बना लिया था। 'ग्रामशिविरमें पुस्तकालय ले जाना अनावश्यक है और ऐसे समय यह बहुत निश्चित है कि मरे हुए चूहोंकी दुर्गन्धिसे वह भर जायगा। आपके रहनेसे उसकी सँभाल रहेगी और साथ ही सँभाल रहेगी विद्यालयकी भी।' नगरमें प्लेग फैल चुका था। नागरिकोंमें-से अधिकांश बाहर जा चुके थे और जो रह गये थे, भागनेकी चिन्तामें थे। विद्यालयके तंबू-खेमे आदि नगरसे दूर भेजे जा चुके थे। दूसरे ही दिन विद्यालय वहाँ चला जायगा।

'क्लेश और मृत्यु—दोनों प्रारब्ध के भोग हैं। यदि उन्हें आना है तो वन रोक नहीं सकता और नहीं आना है तो नगर उन्हें बुलानेमें समर्थ नहीं !' पण्डित मदनमोहनजीने शान्तिपूर्वक स्वीकृति दी। 'मैं अपने दायित्वका अनुभव करता हूँ। आप निश्चिन्त होकर जा सकते हैं !' घरसे बार-बार आग्रहभरे पिताके पत्र आ रहे

थे कि इस समय वे घर चले आवें; किंतु ऐसे कठिन समयमें विद्यालयको छोड़ना उपयुक्त नहीं जान पड़ा उनको।

'गणेशजीके एक वाहन इधर पड़े हैं!' मध्याह्नमें सेवकने सूचित किया। वह पुस्तकोंको स्वच्छ करनेमें लगा था।

'रुको!' पण्डितजी जानते थे कि अशिक्षित जन आशङ्कासे अधिक आक्रान्त हुआ करते हैं। 'अब यहाँ काम करना बंद कर दो!' उन्होंने स्वयं एक कागजपर चूहेको उठाया और दूर ले जाकर अग्नि-संस्कार कर दिया। स्नान तो करना ही था इसके पश्चात्।

'तड़-तड़ तड़-तड़!' कोई मुख्य द्वारपर आघात कर रहा था। पण्डितजीको साधारण ज्वर हो आया था। वे उठे। दीपककी बत्ती ऊँची हुई। 'कौन है?' ज्ञात हो रहा था कि एक पूरी भीड़ खड़ी है बाहर। खिड़कीके छेदोंसे उन्होंने देखा। अन्धकारमें पता नहीं भालोंके नोक चमक रहे थे या नंगी तलवारें। लाठियोंकी खटपट सुनायी पड़ती थी। द्वारका प्रकाश आततायियोंने नष्ट कर दिया था।

'द्वार खोलो!' बाहरसे किसी भारी कण्ठने क्रुद्ध स्वरमें आदेश दिया। जनहीन नगरमें कई स्थानोंपर गत रात्रि ताले टूटनेकी बात सुनी जा चुकी है। 'तुम लोगोंने बड़ा ऊधम मचा रक्खा है! तुम्हारे संग्रहालयमें सुनते हैं, दूसरोंके धर्मग्रन्थोंकी खोज हो रही है और इस तरह तुम हमारी खिल्ली उड़ाया करते हो! हमें महज

अपनी चीजोंसे मतलब है और तुम सीधे उन्हें दे दो, यह तुम्हारे भलेके लिए है।' विद्यालयके प्रति एक वर्ग रुष्ट रहा करता है और विशेषतः उसके साहित्यिक अन्वेषण-विभागसे। आज अवसर पाकर आततायी बन गया है वह समूह।

'आपलोग लौट जायँ! जबतक मैं यहाँ हूँ, आप भीतर आनेका व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं!' एक ज्वरार्तके कण्ठस्वर-जैसा नहीं था वह स्वर। यह समझ लिया गया था कि यदि द्वार खोला गया तो पुस्तकालय अग्निकी लपटोंमें होगा। आततायियोंके हाथोंके जलते उल्मुक उन्हें रात्रिमें पिशाच बनाये हुए थे।

'अच्छा, देखेंगे हम!' द्वारपर आघात और प्रबल हो गया। 'काफिरोंको कुत्तेकी मौत न मारा तो आना ही बेकार हुआ।' गालियोंकी बीभत्सताका वर्णन व्यर्थ है।

'मैं अन्तिम बार कहता हूँ, आपलोग हट जायँ!' भय जब मनुष्यके मानसको अव्यवस्थित नहीं करता, स्थिर बुद्धि स्वतः आपत्तिमें-से मार्ग निकाल लेती है। द्वारके ऊपरसे पण्डितजीका निश्चयात्मक स्वर सुनायी पड़ा। 'अब मैं यहाँसे ईंटें डाल रहा हूँ नीचे और उससे आहतोंका उत्तरदायित्व स्वयं उनपर होगा!' एक क्षण—एक धमाका और एक कोई आह करके बैठ गया। मुख्य द्वारके ऊपरके कमरेसे सचमुच पण्डितजीने एक ईंटा छोड़ दिया था।

'अच्छा, देख लेंगे!' क्रुद्ध आततायी पीछे हटनेको विवश हो गये। एक ब्राह्मणने उन्हें इस प्रकार नीचा

दिखाया, इसका बदला लेंगे वे। पण्डितजी परिस्थिति न समझते हों, ऐसी बात नहीं। वे जानते थे कि ये लोग विद्यालयके समीपके घरोंसे ही आये हैं। छिपकर उनका आघात कभी भी सम्भव है। कोई कबतक अपनेको विद्यालयके घेरेमें बन्दी रक्खेगा। यह ठीक होकर भी ठीक नहीं था। पण्डितजी जानते हैं कि विश्वनियन्ताकी इच्छाके विरुद्ध कोई कुछ कर नहीं सकता। ऐसा विश्वासी हृदय भयके लिए कभी उन्मुक्त नहीं होता।

"पण्डितजी ! आप विद्यालयके आदर्शको जानते हैं !' दिनेशचन्द्रजीने नगरमें पहुँचते ही व्यङ्गवर्षा प्रारम्भ कर दी। आभार मानना तो किसीका उन्होंने सीखा ही नहीं है। 'आपसे आशा थी कि अपनेको उसके अनुकूल बना लेंगे। हमें इन ट्रेडमार्कोंकी अब आवश्यकता नहीं है।' यह आक्षेप था तिलकपर। उनकी पूजा-पाठका तो प्रायः परिहास किया जाता रहा है।

'मेरे व्यक्तिगत आचरणोंका कोई अनिष्ट प्रभाव मेरे कार्यपर नहीं पड़ता।' पण्डितजीका एक नियमित उत्तर रहा है।

'आपके द्वारा छात्रोंके सम्मुख एक भ्रान्त आदर्श उपस्थित होता है।' जो आक्षेप करनेपर ही उतारू हो, उसके लिए निमित्तोंका क्या अभाव। 'इसी छूत-छातके खटरागके कारण देशका सर्वनाश हुआ और आप यहाँ भी वही रोग संक्रामक बना रहे हैं। आपका यह नाक दबाना और घंटी हिलाना, यहाँके सुसंस्कृत वातावरणके उपयुक्त नहीं है।' इधर कई छात्र पूजाके अवसरपर ही उन्हें

स्पर्श कर दिया करते हैं। कई बार स्नान करना पड़ता है। भोजनालयमें भी उच्छृङ्खलता होने लगी है। फलतः कई समय फलोंपर रहना पड़ता है। इस सबमें जिसका गुप्त संकेत है, वह अज्ञात नहीं।

'मैं समीपमें कोई स्थान देख रहा हूँ।' पण्डितजीने शान्तिसे सूचित कर दिया। 'शीघ्र ही छात्रावाससे वहाँ अपना आसन बदल लूँगा और तब आपको कोई अवसर नहीं प्राप्त होगा।' एक मकान उन्होंने देख भी लिया है। पड़ोस अच्छा नहीं। आसपासके लोग द्वेष करते हैं उनसे। उनके कारण ही उस रात्रिमें विफल जो लौटना पड़ा था। जो भी हो, स्थान तो बदलना ही होगा।

अब भी गिल्टियोंमें पीड़ा है मन्द-मन्द। ज्वरने छोड़ दिया; किंतु शरीरमें शक्ति नहीं लौटी। नवीन स्थान अनुकूल तो क्या पड़ेगा, जो छात्रों और विद्यालयके सेवकोंकी सहायता मिल जाती थी, उससे भी वञ्चित हो गये। अब अपने ही हाथों सब कार्य करना है। ठीक समयसे तनिक भी विलम्ब हुआ पुस्तकालय पहुँचनेमें तो बहुत कठोर शब्द मिलेंगे स्वागतमें। इधर एक और आपत्ति आ गयी। कभी आँगनमें अस्थिखण्ड मिलता है और कभी मांसके टुकड़े। पड़ोसियोंका रोष इस रूपमें प्रकट हुआ है। पूरा स्थान प्रक्षालित करना और फिर स्नान करना। दिनमें दो बार यह करनेमें भोजन बनानेको समय कहाँ रह जाता है।

'दिनेशचन्द्रजीको तो गिल्टियाँ आ गयी हैं।' पहुँचते ही किसीने सूचित किया। दो दिनसे संस्कृतके अध्यापक

ज्वरमें पड़े थे। पण्डितजी उनकी दिनमें दो बार पूछताछ कर आते थे। शीघ्रतासे उनके निवासपर पहुँचे। वहाँ उनके पिता आ गये थे और पुत्रको घर ले जानेकी व्यवस्था हो रही थी।

'भाई मदनमोहनजी!' बहुत दिनोंपर दिनेशजीके मुखसे ये शब्द निकले थे। 'मैंने जो नीच व्यवहार किया है, उसके लिए क्षमा करना।' जो कोई नहीं समझा सकता था, रोग एवं मृत्यु-भयने उसे समझा दिया।

'भाई! लज्जित न करो मुझे।' पण्डितजी बैठ गये उनके सिरहाने। 'तुम स्वस्थ हो जाओ! मैं हृदयसे चाहता हूँ, तुम अच्छे हो और यदि मेरे कोई सत्कर्म तुम्हारी सहायता कर सकें, तो तुम्हारे लिए मैं उन्हें अर्पित करता हूँ।' तबतक वे वहीं रहे, जबतक दिनेशकी मोटर चली नहीं गयी वहाँसे।

'मालिक आपका भला करे!' दिनेशजीके यहाँसे लौटकर वे इस बुढ़ियाके घर जानेको विवश हुए। क्या हुआ जो इसी मकानसे हड्डी और मांसके टुकड़े गिरते रहे हैं उनके यहाँ। क्या हुआ जो स्थान सर्वथा दूषित, दुर्गन्धित एवं अशुद्ध है। वे कुछ थोड़ा-सा उपचार जानते हैं और एक वृद्धाका एकमात्र पुत्र रोग-शय्यापर पड़ा था। रात्रिभर रोगीके सिरहाने जागते हुए व्यतीत करके लौटे हैं वे। 'आपकी दुआसे बच्चेने आँखें खोल दी हैं और बुखार कम हो गया है।' बेचारी बुढ़िया कृतज्ञताके आवेशमें पैरोंपर पड़ते समय भूल ही गयी कि पण्डितजी स्नान करके पूजापर बैठने जा रहे हैं।

'उहूँ, तुम्हारी यह छोटी-सी माला हमारे गलेमें नहीं आवेगी। डाल दो इसे चरणोंपर !' दुबारा स्नान करके पण्डितजी आसनपर बैठे। यह क्या हो रहा है आज। उनके श्रीविग्रह तो इतने बड़े नहीं हैं। अहा ! ये ज्योतिर्मय अरुण चरण ! यह स्निग्ध धवल प्रकाश और यह मन्द-मुसकानसे वह नटखट कह क्या रहा है। हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेगपर विजय पाकर जो कर्तव्य एवं आर्तोंकी सेवामें अपनेको समर्पित कर चुका है, सर्वस्वरूप आज उसके सम्मुख नवजलधर श्यामके रूपमें घनीभूत हो गया था।

तपस्वी

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

वह एक वानप्रस्थ-आश्रम है, चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियोंसे घिरा हुआ। एक गुफा है स्वच्छ लिपी-पुती। उसके द्वारपर सदा नवीन तोरण सजा रहता है। दोनों ओर केलेके वृक्ष लगे हैं, खूब पुष्ट और उनमें बड़ी-बड़ी धारें लटक रही हैं। गुफाके बीचमें हवनकुण्ड है और उसमें-से रात-दिन सुगन्धित धुआँ उठता रहता है। कुण्डके आसपास घृतका पात्र, स्रुवा, ब्रह्मदण्ड, उपवीती आदि हवनके उपकरण हैं और कोनेमें सूखी समिधाओंकी ढेरियाँ हैं। कुश रक्खे हैं और बैठनेका आसन है। सब वस्तुएँ स्वच्छ हैं तथा सजाकर रक्खी गयी हैं। कहीं भी न तो एक कण बिखरा है और न कोई वस्तु अस्त-व्यस्त है।

पासमें ही झरना है। उसका कलकल शब्द सुनायी पड़ा करता है। मृगोंके झुंड शङ्काहीन होकर घूमते या बैठकर जुगाली करते हैं। गिलहरी, शशक, मयूर, पक्षी सब इस प्रकार घूमते हैं, जैसे पालतू हों। जैसे यहाँ रहनेवाला व्यक्ति उनका आत्मीय हो। दूध-सा उजला चञ्चल बछड़ा है और गौ है खूब पुष्ट, जैसे गोलोकसे कामधेनु अपने बछड़ेके साथ उतर आयी हो। उस गायके गलेमें बाँधनेका चिह्न नहीं है। वह कभी बाँधी नहीं जाती;

किंतु अपने पालकसे उसे इतना प्रेम है कि आश्रम छोड़कर उसके भाग जानेकी कल्पना भी सम्भव नहीं ।

यह सब किया किसने है ? तपस्वी हैं। उनके सिरकी जटाओं एवं दाढ़ी-मूँछोंके केश आधे पक गये हैं। शरीर दुर्बल है। हड्डी-हड्डी गिनी जा सकती है। नसें उभड़ आयी हैं। नख बड़े-बड़े हैं। कमरमें मूँजकी मोटी मेखलामें पतली-सी केलेकी छालकी कौपीन ही उनका वस्त्र है। ऊँचे शालवृक्षकी जड़के पासकी वेदीपर वे रात्रिके दूसरे प्रहरमें बैठे मिल सकते हैं। वर्षाऋतुमें जब खूब आँधी चलती है और वृष्टि होती है, वे खुले आकाशके नीचे बैठते हैं। उस समय वृक्षके नीचे भी नहीं रहते। शीतकालमें झरनेके हिमशीतल जलमें गलेतक डूबे रातभर खड़े रहते हैं। गर्मियोंमें दिनभर चारों ओर अग्नि जलाकर बीचमें बैठकर भगवान् भास्करको देखते हुए पञ्चाग्नि तापते हैं।

शीतमें जब हिमपात होता है, धुनी रुई-सी बरफ उनकी जटाओंमें भर जाती है। उसे झाड़नेकी ओर उनका ध्यान जाता ही नहीं। ग्रीष्ममें प्रचण्ड लू चलती है, सिरपरसे स्वेदधार चलती है और छाती-उदरसे होती चरणोंपर टपकती रहती है। उन्हें जैसे कुछ पता ही नहीं लगता। वर्षामें बादल घिर आते हैं, मूसलाधार वृष्टि होती है, बिजली कड़कती है, वृक्ष टूट-टूटकर गिरते हैं, कभी ओले पड़ते हैं; परंतु उनकी पलकेंतक नहीं हिलतीं। वे तीनों सन्ध्याओंके समय तीनों देवताओंकी शक्तिरूपा, तीन व्याहृतिवाली गायत्रीका ध्यान करते हैं शान्त, स्थिर मनसे। उनका जप अखण्ड चलता है।

वे कभी सोचतेतक नहीं कि कौन-सी ऋतु अनुकूल है और कौन-सी प्रतिकूल। वायु चाहे शीतल-मन्द-सुगन्ध चले या आँधी-तूफान बने, उन्हें कुछ चिन्ता नहीं। बिना जोती भूमिमें वे नीवारों (मुन्यन्नों) के बीज डाल देते हैं बिना यह सोचे-समझे कि वे उगेंगे भी या नहीं। नीवार उगते हैं तो हरिन, गवय (नीलगाय), शशक, वाराह जो चाहें—जितने चाहें चरें। जब अन्नकी बालें पकती हैं, पक्षी भरपेट उससे तृप्त होते हैं। इससे जो बचता है, उसे वे काटकर एकत्र करते हैं। गुफामें रख देनेपर भी चींटियाँ, चूहे, गिलहरियाँ उनमें-से बराबर ढोती रहती हैं। उनकी दृष्टिमें सबका उसमें भाग है और सब अपना भाग ही लेते हैं। कभी वे नहीं सोचते कि उनके लिए भी कुछ बचेगा या नहीं। जब नवीन अन्न हो जाता है तो बिना यह सोचे कि वह कामभरको है भी या नहीं, पुराने संग्रहको नदीके किनारे छोट दिया जाता है। तब नयेका संग्रह करके उसका छठा भाग किसी जलाशयके किनारे इसलिए रख दिया जाता है कि राज्यके कर्मचारी यह 'कर' उठा ले जावें।

अन्नकी वैसे भी बहुत कम आवश्यकता है उनके लिए। कभी एकादशी, कभी प्रदोष, कभी शिवरात्रि, कभी कोई पर्व—इस प्रकार व्रत पड़े ही रहते हैं। इनके अतिरिक्त चान्द्रायण, तप्तकृच्छ्रादि भी बार-बार किये जाते हैं। वर्षके दो-तिहाई दिन तो व्रतोंमें चले जाते हैं। जिस दिन भोजन भी करना हो तो एक ही समय किया जाता है। वायु ठीक हो, वर्षादि न हो तो वृक्षके नीचे मिट्टीके

पात्रमें श्यामाक राँध लेंगे। वर्षा हुई या वायुने अग्नि जलानेमें बाधा दी तो देवधान्यको पत्थरपर पीसकर जल मिलाकर सत्तू बना लेंगे। यदि वृष्टि तीव्र हुई और पीसनेमें भी बाधा पड़ी तो दाँत तो सुदृढ़ हैं ही, दो मुट्ठी 'टाँगुन' चबा लेंगे—छुट्टी हुई। पेटकी ज्वाला ही तो बुझानी है। गुफा तो अग्निदेवके लिए है। वह आराध्य-मन्दिर है। हवन-अग्नि-आराधनाको छोड़कर वहाँ न रहा जा सकता और न अपने निमित्त वहाँ कुछ किया जा सकता है।

उनका संतोष सामान्य समझसे बाहर है। अति वृष्टिसे नीवार बह जायँ तो वे फलोंपर संतोष कर लेंगे। फल न भी हों तो पत्ते तो हैं ही। अकाल पड़ता है—वृक्षोंके पत्तेतक सूख जाते हैं, पर वे वैसे ही निश्चिन्त रहते हैं। उनका मन मान लेता है कि सूखेके समय कसैले कन्द स्वादिष्ट हो जाते हैं। उनके ऊपर पक्षी बींट कर दें, यह कदाचित् ही होता है और प्रमादवश अपवित्र स्थानोंपर उनके चरण पड़ें यह और भी कठिन है; किंतु पक्षियोंके भी तो अबोध बच्चे होते हैं, वे भूल भी कर जाते हैं। उन्हें रोष या झिझक होती ही नहीं। जो जाड़ोंमें रातभर गलेपर्यन्त जलमें डूबा रहता है, वह तीन बारके बदले चार बार स्नान कर लेगा।

'अग्निशालामें जानेसे पूर्व स्नान करना ही चाहिये।' यह नियम है। आपका यह तर्क व्यर्थ है कि वहाँ जब द्वार नहीं है तो बनबिलाव, चूहे, शशक भी तो जाते हैं। वे इस सम्बन्धमें भ्रमहीन हैं कि पवित्रता एक तपस्या है

हड्डी, मज्जा, रक्त, मांस, मलके पुतले शरीरमें शुद्ध क्या होगा? शौचाचारका उद्देश्य है पदार्थमें आये विकारको दूर करना और दूसरोंके संसर्गको हटाना। शौचाचार मानसिक शुद्धिका साधन है। वे समिधा, कुश, बिल्वपत्र, पुष्प आदि कोई वस्तु जलसे शुद्ध किये बिना काममें नहीं लेते। पात्र एवं वल्कल एक बार काम आनेपर फिर धोये ही जायँगे।

'जो बराबर व्रत करेगा, वह दुर्बल होगा। बराबर कोई कहाँतक कष्ट सह सकता है। ऐसा व्यक्ति विधि-पालनमें भूल न करे, यह असम्भव है।' ऐसी बात साधारण व्यक्तिके लिए ही ठीक है। जिसमें निष्ठा है, वह इससे परे है। वे नित्य पञ्चयज्ञ करते हैं, पर्वोंपर पितृ-तर्पण तथा देवार्चन नियमित रूपसे होता है। दूषित, कटा-फटा, कीड़ेका खाया एक पुष्प, पुष्पका एक दल, कुशका एक पत्र भी आराधनामें आ जाय, यह सम्भव नहीं है। बिना आवश्यकताके एक पत्तातक तोड़ा नहीं जाता। यन्त्रकी भाँति सभी कार्योंके लिए समय निश्चित है। तनिक भी व्यतिक्रम हो नहीं सकता।

न तो मन्त्रोंका उच्चारण अस्पष्ट होगा और न क्रममें भूल होगी। हवि बनानेमें एक कण नहीं बिखरेगा। आश्रमकी स्वच्छता बता देती है कि वे कितने सावधान हैं। होमधेनु समयपर प्रदीप एवं पूजा प्राप्त करती है और गोबर इतनी शीघ्रतासे हटा लिया जाता है कि चञ्चल बछड़ा उसे बिखेरनेका अवकाश ही नहीं पाता।

उनका प्रकृतिका ज्ञान अगाध है। 'चीलें ऊपर उड़ रही हैं, अतः वर्षा होनेवाली है।' वे समिधाएँ एकत्र

कर लेंगे। किस नक्षत्रमें बोनेपर नीवार ठीक उगेंगे, यह बिना पञ्चाङ्गके भी वे वहाँ जान लेते हैं। सृष्टिकर्ताने जैसे प्रमाद, आलस्य उनके हिस्सेमें दिया ही नहीं।

लगन ही कलाकी जननी है। शीत ऋतुमें मल्लिका कुसुम और ग्रीष्ममें कुवलय (नीलकमल) की माला वे अग्निदेवको अर्पित करते हैं। कब क्या प्रिय होता है, यह तो लगन बतलाती है और वह माला—वह उनके करोंकी कलाकी सूचक है।

दिनचर्या—ब्राह्ममूहूर्तमें स्नान करके ध्यानस्थ हुए और भगवान् भास्करको अर्घ्य देने उठे। हवनके पश्चात् आश्रमके समस्त कार्य दिनके प्रथम प्रहरमें ही समाप्त हो जाते हैं। मध्याह्न-सन्ध्या समाप्त होती है तो सायं-सन्ध्यामें दो घड़ीका ही अवकाश रहता है। इसमें आश्रम-सेवा और सायंकाल-हवन, गोपूजन और फिर जो आसन लगा तो ब्राह्ममूहूर्त।

कभी-कभी अतिथि पधारते हैं। शालवृक्षके नीचेकी वेदी उनके चरणोंसे पवित्र हो जाती है। बनानेवालेमें कुशलता हो तो नीमका पत्र भी स्वादिष्ट शाक बन जाता है। कन्द, मूल, फल और दूधमें पकाये मधुमिश्रित नीवार—अतिथिको अनुभव ही नहीं होता कि वह एक तपस्वीके यहाँ है। वेदिकापर कोमल पल्लव एवं पुष्पोंका आसन बन जाता है। तपस्वीके आश्रममें दूध, मधु, पुष्प, पल्लव या तो भगवान् अग्निदेवके लिए हैं या उनके साक्षात् स्वरूप अतिथिके लिए ही।

× × ×

उस दिन आश्रममें एक अतिथि आ गये। किशोर, ऋषिकुमार, तेजस्वी। गौरवर्ण, दुर्बल शरीर, मूँजकी मेखला, यज्ञोपवीत, वल्कल पहने जैसे कोई तेजोमय देवता ही ब्रह्मचारी-वेषमें आ गया हो। तपस्वीने आते ही भूमिमें लेटकर प्रणाम किया। अर्घ्यं देकर चरण धोये और आसन दिया। किशोर अतिथिने निःसङ्कोच पूजा स्वीकार कर ली। तपस्वी उसके चरणोंके समीप नम्र भावसे बैठ गये।

'आपके आश्रमके मृग बहुत सुन्दर हैं!' अतिथि किशोरावस्थाके अनुरूप ही चपल था!

'परम सुन्दर प्रभुकी सृष्टिमें कुछ असुन्दर भी है, यह तो दुर्बल मन कल्पित करता है!' तपस्वीने गम्भीरता एवं नम्रतासे कहा।

'मैं आपको एक मृगचर्म दूँगा—कस्तूरीक मृगका चर्म। खूब सघन-सुकोमल रोमावली है!'

'आपका अनुग्रह!' तपस्वीने अतिथिको मृगचर्म निकालने नहीं दिया बगलसे। 'मैं केवल यज्ञके समय मृगचर्मको आसन बनाता हूँ और मेरे समीप पवित्र कृष्णमृगचर्म है! वेदिकापर तो कुश बिछाना ही पर्याप्त है!'

'ये सुन्दर पुष्प!' अतिथिमें अद्भुत चपलता थी। 'जान पड़ता है आप इनकी सुगन्धमें अनुराग नहीं रखते। आपकी जटाओंमें एक भी पुष्प नहीं। आप आज्ञा दें तो मैं वह खिला हुआ पाटल (गुलाब) आपकी जटामें लगा दूँ!'

'वायुदेव सभी प्राणियोंको सुगन्ध पहुँचाते हैं, मुझे उतने ही भागसे सन्तोष है!' तपस्वीने शान्तिसे कहा—'भगवान् अग्निदेवकी अर्चना हो चुकी है। मिट्टीके पुतलेके लिए पुष्पसज्जा व्यर्थ है। प्रभुको वह रुचिकर है तो उसे उन चरणोंपर ही चढ़ना चाहिये।' तपस्वीने पाटलपुष्प चरणोंपर चढ़ा दिया।

'अग्निदेवके पूजनमें सदा यहाँ पुष्प मिल जाते हैं?'

'सदा ही मिलें—यह अनिवार्य नहीं; हृदयके भावोंके पुष्प इनसे सुन्दर होते हैं। देवताको भाव ही तो चाहिये। पदार्थ तो भावको उदीप्त करनेके लिए हैं!'

'आपके इस निर्झरके उस पार बड़ा सुन्दर वन है। वहाँ फूलोंके गुच्छोंसे लताएँ सभी ऋतुओंमें लदी रहती हैं। मधुर फलोंके वृक्ष हैं। दूधके समान उज्ज्वल मर्मर पत्थरोंका पर्वत है। आप वहाँ आश्रम बना लें। यहाँकी अपेक्षा वहाँ बहुत सुख-सुविधा रहेगी। मैं आपकी सहायता करूँगा।'

'यहाँ भी नीवार पर्याप्त मिल जाते हैं।' तपस्वीमें उत्सुकता नहीं थी। 'पूजनके लिए पुष्प भी हैं ही। भगवान्की सृष्टिमें ऐश्वर्यकी कोई सीमा नहीं; किंतु एक वानप्रस्थाश्रमीको जितना चाहिये, उतना मुझे प्राप्त है। अपेक्षाकृत उत्तम ढूँढ़ने जानेपर तो एक-से-एक उत्तम मिलते रहेंगे।'

'आपने मुझे पहचाना नहीं!' अतिथि खुलकर हँस पड़ा।

'देव ! आप मेरे अतिथि हैं और अतिथि साक्षात् नारायणस्वरूप होते हैं।' तपस्वीके स्वर श्रद्धापूर्ण थे। 'इससे अधिक जाननेकी मुझे आवश्यकता ही क्या है !'

'मैं आपके संयम तथा तपसे प्रसन्न हूँ ! स्वर्ग आपकी प्रतीक्षामें है।' अतिथि – नहीं, वहाँ तो रत्नाभरणभूषित, नीलमेघोंका मुकुट बनाये, सात रंगोंका धनुष तथा वज्र लिये स्वयं देवराज इन्द्र विराजमान थे। वायुमण्डलमें दिव्य सुगन्ध व्याप्त हो गयी। आकाशसे अद्भुत स्वरोंमें स्तुति हो रही थी। पास ही विद्युत्के चक्के तथा ज्योतिकी रश्मिसे युक्त, हरे रंगके सौ घोड़ोंसे जुता मेघरथ लिये मातलि प्रतीक्षा कर रहे थे। देवराजने संकेत किया था रथपर चलकर बैठनेका।

'देवराजके पदार्पणसे मैं कृतार्थ हुआ। मैंने अपने कठोर व्रतोंका फल प्राप्त कर लिया।' तपस्वीने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। 'मैं केवल सर्वेश्वरकी प्रसन्नताके लिए आराधना करता हूँ। अमरावतीको मैं अपने मनुष्य-शरीरके स्पर्शसे अपवित्र नहीं करूँगा। वहाँ तपोवन बनाया नहीं जा सकता और जबतक प्रारब्धने मुझे सुविधा दी है, भगवान् यज्ञपतिकी सेवाका सुख छोड़ना मुझे रुचिकर नहीं। आप मुझे क्षमा करें !' देवराजको आश्चर्य नहीं हुआ। इस भारतभूमिके मनुष्य अनेकों बार सशरीर स्वर्ग पधारनेकी उनकी प्रार्थना को ठुकरा चुके हैं।

'आप किसकी अवहेलना कर रहे हैं ?' देवराजके स्वर कुछ तीव्र हो गये थे। तपस्वीने देखा कि विकराल

कृष्णवर्ण, हाथोंमें दण्ड एवं पाश लिये भैंसेपर बैठे यमराज देवेन्द्रके पास आ गये हैं।

'मैं सुरपतिका अपमान करनेकी बात भी नहीं सोच सकता।' तपस्वीके स्वरमें नम्रता थी, श्रद्धा थी; किंतु भयका लेश भी नहीं था। 'स्वेच्छासे अपना व्रत छोड़ना मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं जानता हूँ कि अमरलोकका ऐश्वर्य महान् है; किंतु वह सब अन्तरके आनन्दको प्रकट करनेका उपकरण ही है। वह हृदयका आनन्द मैं यहाँ भी प्राप्त कर लेता हूँ और नरकमें भी प्राप्त कर लूँगा; क्योंकि प्रणवस्वरूप व्यापक प्रभु और भगवती वेदमाता गायत्री तो वहाँ भी हैं ही। स्वर्गकी अपेक्षा यमराजका लोक ही तपस्याके उपयुक्त है। वहाँ तपस्याके प्रचुर साधन हैं। धर्मराजकी इच्छा हो तो मैं बाधा नहीं दूँगा।' बात ठीक थी। तपस्वीकी इच्छाके विरुद्ध उनका स्पर्श करनेकी शक्ति यमराजमें थी ही नहीं।

'मैं तो केवल आपके पवित्र चरणोंमें प्रणाम करने आया हूँ!' धर्मराजने मस्तक झुकाया हाथ जोड़कर और वे अदृश्य हो गये। उनके नरकोंकी यन्त्रणामें एक तपस्वी तपकी भावना करने लगे तो चल चुका उनका विधान। उसका तप:तेज नरकको तपोलोक बना डालेगा। नारकीय जीवोंके अपकर्म उसके पास आते ही भस्म हो जायँगे।

'जिन अग्निकी तुम आराधना करते हो, वही तुम्हें दण्ड देंगे!' असफलताने देवराजको असन्तुष्ट कर दिया था। झल्लाकर उन्होंने कहा और अदृश्य हो गये। तापसने सुना—पक्षी आर्तक्रन्दन करते दूर नभमें उड़े जा रहे हैं।

पशु चिल्लाते हुए चौंकने लगे हैं। दूर-दूर नभमें धुएँकी कुण्डलियाँ घनी होती जा रही हैं।

'हम्मा !' आश्रमकी गौ पुकार उठी। उसने दोनों कान खड़े कर लिये थे और स्नेहपूर्वक तपस्वीको देख रही थी।

'मातः ! आप पधारें।' तपस्वीने गौको प्रणाम किया। गौने अपने बछड़ेकी ओर देखा। पूँछ उठाकर वह भागी। बछड़ा अपनी माताके साथ जा रहा था। वायुमें उष्णता आ गयी थी। धुआँ बादलोंकी भाँति छा रहा था। दूर आकाशमें लालिमाकी रेखा दिखायी देने लगी थी।

'मैंने सदा आपको विधिपूर्वक हवि, घृत एवं समिधाओंकी आहुति दी है!' तपस्वीने सम्मुख गुफामें हवन-कुण्डकी ओर देखा और फिर वेदीपर आसनसे स्थिर बैठ गया। 'देव ! पधारो। आज इस शरीरकी आहुतिसे जीवन यज्ञपूर्ण हो!' नेत्र बंद हो गये।

तपस्वीको पता नहीं - लपटें बढ़ीं, चटचट-पटपटके भयङ्कर शब्द हुए, वृक्ष भस्म हो गये, वह शालतरु—टूट-टूटकर उसकी शाखाएँ गिरती रहीं, पर तपस्वी ध्यानस्थ था। वह पञ्चाग्नि तापनेका अभ्यासी—उसे उष्णताका बोध तक नहीं हुआ। अग्निदेवने अपने उपासकके एक रोमतक का स्पर्श नहीं किया। अभ्यासवश जब सायंकालीन सन्ध्याके लिए नेत्र खुले—चारों ओर धुआँ भरा था। अङ्गार, छोटी लपटें, भस्म, जहाँतक दृष्टि जाय, सब झुलस चुका था। किसी प्रकार झरने तक मार्ग बनाकर उसने सन्ध्या की। अन्धकार होनेसे

पूर्व ऐसी समिधाएँ एकत्र करनेमें लगा जो अग्निसे अछूती रही हों; क्योंकि अधजले काष्ठ तो अग्निदेवके जूठे हो चुके और अग्नि-रक्षा तथा नित्य-कृत्यके लिए पवित्र समिधाएँ आवश्यक हैं।

'यहाँसे एक योजन दूरका वन अग्निसे बच गया है। वहाँ आपको कोई कष्ट न होगा। यहाँ तो आपकी सब सामग्री भस्म हो गयी और गौ भी कहीं भाग गयी!' समीपके भीलोंके ग्रामके लोग सबेरे ही तपस्वीकी खोज करने आ गये थे, उन्होंने उसे समझाना चाहा।

'मैं आजसे एक तप्तकृच्छ्र व्रत करूँगा। भगवान्‌ने कृपा करके व्रतका अवसर दिया है।' तपस्वीने उन्हें प्रेमपूर्वक बताया। 'झरनेके किनारे आकमें सूखी समिधाएँ सायंकाल देख आया हूँ। भगवान् अग्निदेवने कृपापूर्वक कन्दोंको स्वयं भून दिया है। मेरा व्रत समाप्त होनेतक वन शीतल हो जायगा, तब अपने आराध्यका प्रसाद लूँगा। दावाग्निके पश्चात् नियमतः वर्षा होगी ही और तब यहाँ पहलेसे अधिक हरियाली हो जायगी।' तपस्वीको न तो कोई अभाव ज्ञात रहा था, न असुविधा, फिर वह नये स्थानमें आश्रम बनानेका झमेला क्यों पाले।

'हम सब आपके लिए दूध, फल, कुश, पुष्प पहुँचा दिया करेंगे!' जंगलके सरल मनुष्य भड़कीले शब्द भले न कह पावें, पर उनके हृदयमें अपार श्रद्धा होती है।

'पूजाके लिए कुशादि मैं ले आऊँगा, यह मुझे स्वयं लाना चाहिये। अभी तो व्रत करना है, अतएव दूध-फल आवश्यक नहीं हैं। कोई अतिथि पधारें तो उनकी सेवाके

लिए तुमलोगोंकी सामग्री लेनेमें संकोच नहीं करूँगा।' मध्याह्न-सन्ध्याका समय हो चुका था। ग्रामीणजन अपने आग्रहको इतना बढ़ाना नहीं जानते जो साधुके नियमोंमें बाधक बने।

× × ×

'आपको ज्वर आता है, तीनों समय तो क्या एक समय भी आपको स्नान नहीं करना चाहिये।'

'भगवान् यज्ञपुरुष मेरी प्रतीक्षा करते हैं, मैं उनकी उपेक्षा कैसे कर सकता हूँ!'

'शरीर पोंछकर अथवा मानसिक स्नानसे भी तो हवन करना सम्भव है?'

'सम्भव तो सब है; किंतु भगवान्‌को साक्षात् मानकर टालटूल की कैसे जाय!'

'शरीर यह सब कबतक सहेगा?'

'शरीर तो नश्वर है, वह तो नष्ट होगा ही। जो लोग सदा सावधान रहते हैं, उन्हें भी तो प्रारब्धके भोग भोगने ही पड़ते हैं। स्नान, वायुहीन स्थान, औषध-सेवन तो निमित्तमात्र हैं।'

'शरीरके प्रति भी तो कुछ कर्तव्य है?'

'जी—आप कहना चाहते हैं कि परमात्माके प्रति जो कर्तव्य है, उससे वह बड़ा है?'

'आप स्नानके बिना काम चला लें और औषध लेना प्रारम्भ कर दें……!' बेचारा वैद्य और कहे भी क्या।

नगरमें जड़ी-बूटी बेचनेवालोंने उसे समाचार दिया था और श्रद्धाके कारण वह इस वनमें आया था। यद्यपि नगरमें रोगीको ले जाकर चिकित्सा करनेमें अधिक सुविधा होती; परंतु वह देखते ही समझ गया था कि ऐसी बात कहना व्यर्थ होगा।

'आप निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि औषधसे रोग चला ही जायगा?'

'मैं केवल आशा कर सकता हूँ—प्रबल आशा।' वैद्यमें साहस नहीं था यहाँ मिथ्या आश्वासन देनेका।

'आपसे अधिक आशा तो यह करनी चाहिये कि प्रारब्ध जबतक है, कोई औषध रोगको दूर न कर सकेगी और जैसे ही प्रारब्धका भोग पूर्ण हो जायगा, रोग बिना क्षणभरका विलम्ब किये स्वयं चला जायगा, जैसे दावाग्नि काष्ठके भस्म हो जानेपर शान्त हो गयी थी।' तपस्वीके मुखपर मन्द हास्य था। उनका शरीर तवे-सा तप रहा था; किंतु क्लेश या थकावटके चिह्नतक नहीं थे मुखपर।

'वानप्रस्थाश्रमकी अवस्थाको आप पार कर चुके, आत्मतत्त्वका ज्ञान भी आपकी बुद्धिमें स्थित है, अब आपको अग्निका न्यास करना चाहिये। मैं ब्राह्मण हूँ, संन्यासके संस्कार सम्पन्न करा दूँगा!' वैद्यजीने नीतिका आश्रय लिया था। यदि तपस्वी संन्यासी हो जाय तो फिर उन्हें चिकित्सामें विरोध नहीं रहेगा।

'यज्ञस्वरूप साक्षात् भगवान् नारायणको छोड़कर मनको किसी कल्पनामें कैसे लगाया जा सकता है?'

तपस्वीके दृगोंमें भाव भरा था। 'बुद्धिमें जो परमतत्त्व प्रस्फुरित होता है, जबतक मन उसमें डूब न जाय न्यास कैसे हो सकता है? मन जब उसमें निमग्न हो जाता है, यह बाहरी जगत् दिखायी नहीं पड़ता, यही सच्चा संन्यास है। यह संन्यास स्वयं होता है, किया नहीं जाता।'

'प्रबल वैराग्यके अनन्तर जब आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा हो जाय तब पञ्चाग्निको पञ्च-प्राणोंमें न्यास करके संन्यास लेना चाहिये, शास्त्र तो यही कहते हैं।' वैद्यजी शास्त्रज्ञ होनेके कारण शङ्का कर रहे थे।

'शास्त्रोंकी व्यवस्था उचित है, पर यह रुचि तथा अधिकार-भेदकी बात है। रसानुभूतिके लिए पृथकता आवश्यक होती है। उस आनन्दघनकी सेवाकी मधुरिमाके लिए जिनके प्राण प्यासे हैं, वे कर्मोंका न्यास कैसे कर सकते हैं। उनका न्यास तो सम्पन्न होता है, किया नहीं जाता।'

'कब सम्पन्न होगा वह?' स्वरमें निराशा थी।

'कौन कह सकता है।' तपस्वी भावविभोर हो उठे थे। 'पता नहीं कब प्रभुके चरणोंमें वह प्रगाढ़ प्रेम होगा जो अपनी सुधा-धारामें तन-मन-प्राणको डुबा देगा। उसकी आनन्द-मन्दाकिनीमें सब निमग्न हो जाते हैं। वहाँ न क्रिया रहती, न कर्ता। वे करुणासागर कृपा करें तो उनका वह दिव्य प्रेम प्राप्त हो। जीवकी अल्पशक्तिके बसकी बात नहीं। उन दयामयकी दयाकी प्रतीक्षा ही की जा सकती है।' नेत्रोंसे अश्रुधार प्रवाहित हो रही थी

और आज प्रथम बार तपस्वी भूल रहे थे कि उनके नित्यकर्मका समय हो गया है। वैद्यको निराश लौटना पड़ा।

× × ×

ज्वरने पिण्ड नहीं छोड़ा। शरीर दुर्बल होता जा रहा था। नित्यकर्मोंमें बाधा नहीं पड़नी चाहिये। अग्निदेवकी आराधनामें विघ्न पड़े, यह सहन नहीं हो सकता। उन्होंने अनशन प्रारम्भ किया। जैसे योगी योगक्रियासे ही अपने रोगी शरीरको ठीक करता है, वैसे ही तपस्वीकी चिकित्सा तपस्या ही हो सकती थी।

'आज भगवान् यज्ञपुरुषको उपवास करना पड़ा।' एक तो वृद्ध शरीर, दूसरे पूरे पच्चीस दिन उपवास करते हो गये। पिछले पाँच दिनोंसे जलतक नहीं लिया है। झरनेके जलमें स्नान करने आये थे, एक वृक्षके जड़की ठोकर लगी, लड़खड़ाकर गिरे और मूर्च्छित हो गये। मस्तकमें चोट लगी थी। कबतक मूर्च्छित रहे, उन्हें पता नहीं। नेत्र खुले, देखा तो सायंकाल समीप है। वे प्रातः स्नान करने आये थे। उन्हें लगा, दिनभर यहाँ वे पड़े रहे हैं। आज आहुति न दे सकनेके कारण चित्त खिन्न हो रहा था। उन्हें पता नहीं था कि आहुति तो यज्ञकुण्डमें चार दिनसे नहीं पड़ी है।

कोमल शरीरके शशक उनके शरीरसे सटे बैठे थे। वे भोले प्राणी अपने शरीरकी उष्णतासे उन्हें शीतसे

बचानेके प्रयत्नमें थे। मृगोंका समूह कातर नेत्रोंसे उनकी ओर देख रहा था। बंदरोंने पता नहीं कहाँ-कहाँसे लाकर सुन्दर पके फलोंकी ढेरी एकत्र कर दी थी और उनके मुखके समीप फल ला-लाकर कुछ अपनी भाषामें कह रहे थे। मस्तकके ऊपरकी डालपर मयूर पंख फैलाये बैठा था। उसने तपस्वीकी धूपसे रक्षाका प्रयत्न पूरा कर लिया था। नेवला अपनी अमृतमयी जिह्वासे मस्तकके घावको चाट-चाटकर स्वच्छ कर चुका था। जिसके हृदयमें विश्वरूप प्रभु विराजते हैं, विश्वके सभी प्राणी उसके स्वजन हो जाते हैं। आज तपस्वी अकेले नहीं थे। वनके समस्त प्राणी उन्हें अपने समझ चुके थे और सुख पहुँचानेके प्रयत्नमें थे। तपस्वीका ध्यान इधर गया ही नहीं। उन्हें सायंकालीन उपासनामें विलम्ब हो रहा था। वे उठे, शरीर साथ नहीं दे रहा था, पैर लड़खड़ा रहे थे, किसी प्रकार गुफातक जाना ही था। प्राणियोंने उसी प्रकार उनका अनुगमन किया, जैसे नरेशके पीछे उसके सेवक चलते हैं—शान्त, मूक, संयत।

'पुष्प इतने म्लान क्यों हो गये?' तपस्वी स्नान करने जानेसे पूर्व केलेके पत्तेपर पुष्प-चयन करके सजा गये थे। अब तो वह पत्ता भी काला पड़ गया था। स्मरण हुआ कि गुफाके द्वारपर तोरणके पत्ते भी मुरझाये हुए हैं। 'मैं सम्भवतः कलसे मूर्च्छित था।' अभी वे समझ नहीं पाये थे कि उनका अनुमान मूर्च्छाके वास्तविक समयका आधा ही है।

'भगवान् अग्निदेवने कुण्डका परित्याग कर दिया।' धड़कते हृदयसे वे यज्ञकुण्डकी भस्मको उलट-पलट रहे थे यज्ञोपवीतके पश्चात् आजतक आचार्यसे जो अग्नि प्राप्त हुए थे, वे अखण्ड जाग्रत् प्रज्वलित रक्खे गये थे। न तो प्राणोंमें आरोपित करके उनका न्यास हो सका और न शरीरकी आहुति ही उनमें दी जा सकी। अत्यन्त खेदसे तपस्वीके हाथ काँप रहे थे और लगता था—वे फिर मूर्च्छित होनेवाले हैं।

'दयामय, रक्षा की आपने!' जैसे कंगालको कुबेरका कोष मिल गया हो। भस्ममें एक नन्ही चिनगारी मिली और उन्हें कितना आह्लाद हुआ, कहा नहीं जा सकता। बड़े प्रयत्न से उन्होंने उसे प्रज्वलित किया। हवन करते समय अशक्त होनेसे मन्त्र-ध्वनि पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो सकी।

'मेरा नित्यकर्म भंग हो चुका, पता नहीं भगवान यज्ञनारायण कितने समयतक उपवासकी दशामें रहे हैं। यदि मैं अनशन करके प्राणत्याग करूँ तो बार-बार मूर्च्छित होऊँगा। बार-बार यह अपराध बनेगा।' तपस्वीको अपनी चिन्ता नहीं थी। 'मैंने एक, चार या आठ वर्षके स्थानमें पूरे बारह वर्षके वानप्रस्थ-धर्मके पालनका सङ्कल्प किया था। आज ही बारह वर्ष पूर्ण हुए हैं।' उन्हें लग रहा था कि यज्ञकुण्डमें उस चिनगारीके रूपमें अग्निदेव अबतक उनकी प्रतीक्षामें ही रुके थे। धीरे-धीरे वे उठे। गुफामें जितनी भी समिधाएँ थीं, क्रमशः हवनकुण्डके ऊपर सजा दीं। एक बड़ी-सी काष्ठराशि बन

गयी। नीचे हवनकुण्डकी ज्वालासे वह प्रज्वलित हो उठी। तपस्वीने आचमन किया। अग्निका परिसमूहन किया और प्रोक्षण भी। तीन बार परिक्रमा करके भूमिमें लेटकर प्रणाम किया।

'भगवान् यज्ञपुरुष मेरे शरीरकी इस अन्तिम आहुतिसे सन्तुष्ट हों।' उस अग्निमें प्रवेश करनेका सङ्कल्प करते हुए उन्होंने भूमिसे मस्तक उठाया।

'यह क्या?' वे मुग्ध-से देखते रह गये। उस ज्वालाके मध्यसे तप्तकाञ्चनवर्ण, चतुर्भुज, विद्युत्के समान वस्त्रधारी, रत्नमुकुटी, शङ्ख-चक्रधारी साक्षात् भगवान् नारायण यज्ञपुरुष शेष दोनों हाथ फैलाये उन्हें अपने अङ्कमें लेने उतर रहे हैं। 'प्रभो! करुणाधाम!' उनका मस्तक फिर झुके, इससे पूर्व तो उन विशाल बाहुओंने उन्हें उठा लिया था और वे उन सर्वेशके श्रीवत्सलाञ्छित वक्षःस्थलसे लगा लिये गये थे!

———

त्यागी

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

'आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?' महामन्त्रीने अतिथिशालामें पहुँचकर स्वयं प्रश्न किया ।

'आपका आतिथ्य आपके महान् यशके अनुरूप है ।' उनके शब्दोंमें नम्रता थी । 'एक अकालसे पीड़ित प्राणी अपने परिवारको लेकर जब एक घूँट जल एवं दो मुट्ठी अन्नके लिए भटक रहा था, आपने उसे आश्रय दिया है । यहाँकी सुविधाओंको सोचना भी कठिन है मेरे लिए ।' कृतज्ञताभरी वाणीके साथ अञ्जलि बँधी थी ।

'हमारा सौभाग्य ।' नीतिकुशल मन्त्रीके तीक्ष्ण नेत्रोंने देख लिया कि सुगन्धित तैल एवं सुन्दर अङ्गराग स्पर्शतक नहीं किया गया है । चन्दनपादुका सम्भवतः अर्चनके समय ही उपयोगमें आयी है । हाथीदाँतके पलंगपर दूधके समान उज्ज्वल कुसुम-सा कोमल बिछौना श्रान्त अतिथिको ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेसे रोक नहीं सका है । संगमर्मरका फर्श भीगा है । मलयमण्डपका आसन उठाया नहीं जा सका है और पूजाके उत्तरीयको अभी उन्होंने उतारा नहीं है । स्नानादिसे निवृत्त होकर आराध्यका अर्चन समाप्त हो चुका है । सम्भवतः अभी ही अग्निदेवको आहुति देकर उठे होंगे । 'हम आपके उज्ज्वल यशसे

परिचित थे ; परन्तु आज आपकी चरणरजसे पाञ्चाल पवित्र हुआ ।'

'शालीनता आपकी ।' अतिथि नम्र थे । 'पंचनदकी पावन-भूमि सदासे अपने पवित्र पुरुषोंके लिए प्रख्यात रही है ।' कृत्रिमता नहीं थी उस वाणीमें और उसे चाटुकारी कहना किसी प्रकार सम्भव नहीं ।

'हम आपकी समीपताका लोभ रोक नहीं सकते ।' महामन्त्री ने रात्रिमें ही नरेशसे मन्त्रणा कर ली थी और आजकी राजपरिषद्में अपने विचारकी घोषणा करनेका उन्होंने निश्चय कर लिया था । पाञ्चालपतिने प्रार्थना की है कि आप कोषाध्यक्षका कार्य स्वीकार करें तो कृपा होगी । वस्त्रोंमें-से एक रेशमी वस्त्रमें ढका पीला भोजपत्र दाहिने हाथसे आगे बढ़ा दिया गया ।

'ब्राह्मण निरपेक्ष हुआ करता है और हिसाबकी कलासे अनभिज्ञ भी ।' नम्रतापूर्वक मस्तक झुकाकर उस आज्ञापत्रका सत्कार कर दिया गया । 'योग्य अधिकारीको ही अधिकार शोभा देता है । राजकार्यसे दूर एकान्त अरण्यका सेवक कैसे साहस कर सकता है इसका ।' जैसे कोई बहुत अधिक संकोचका अवसर उपस्थित हो गया हो ।

'भगवती सरस्वतीकी क्रीडाभूमि काश्मीरमें भी जो अर्थशास्त्रके एकमात्र आचार्य हैं, हम उनके चरणोंमें अनुरोध ही कर सकते हैं ।' शताब्दियोंके पश्चात् भीषण हिमपातने काश्मीरको श्वेत बना दिया था । सत्त्वगुण ही रहे, तो भी तो सृष्टि न रहेगी । पुष्पित लताओं एवं हरे-भरे

वृक्षोंको उस श्वेत हिमने छिपा लिया । आचार्य अभिरुचि अपने आश्रमका त्याग करनेको विवश हुए थे और उनके साथ उनकी कोमलाङ्गी पत्नी था आठ वर्षका शिशु था । इस आपत्तिमें भी उनका महान् व्यक्तित्व महामन्त्रीको अभिभूत कर रहा था । उनके सम्मुख धृष्टता असम्भव थी । 'पाञ्चालाधिपति दुस्साहस नहीं कर सकेंगे ; किंतु बड़ी आशासे उन्होंने भेजा है मुझे ।' मन्त्रीको ज्ञात था कि उनके अतिथि कहीं प्रस्थान करनेका निश्चय कर लेंगे तो उनको रोका नहीं जा सकेगा । प्रातः आनेमें यही उद्देश्य था ।

'सिद्धान्त यदि अनुभवके द्वारा अभ्यस्त न कर लिये गये हों तो उपयोगी नहीं हुआ करते ।' आपत्तिकालमें यह वृत्ति ब्राह्मणके लिए निषिद्ध तो नहीं है शास्त्रोंमें । पत्नी और पुत्रको लेकर इस विषम परिस्थितिमें कहाँ जाया जा सकता है । अधिकांश उत्तरदेशवासी उत्पीड़ित पाञ्चाल आये हैं और समाचार मिला है कि ब्रह्मावर्तका दक्षिणी भाग दस्युओंके द्वारा आक्रान्त है । आचार्यने मस्तक झुकाकर कुछ सोचा । 'यदि महाराज इतनेपर भी आग्रह करेंगे तो राजसभामें मैं इस पत्रको स्वीकार कर लूँगा । ब्राह्मण तभीतक आजीविकाके लिए उपार्जन कर सकता है, जबतक प्रकृतिके निर्मल अङ्कमें उसका आश्रम निरुपद्रव नहीं हो जाता ।' विचार करनेके लिए अवकाश आचार्यने इतनेपर भी रख लिया ।

'राजोद्यानका एकान्त भवन श्रीचरणोंकी प्रतीक्षा करेगा ।' मन्त्रीने निवासकी व्यवस्था सूचित की ।

'सामग्रियोंकी अधिकता मनको व्यवस्थाहीन करती है और अनन्तरुचि अभी कच्ची बुद्धिका शिशु है।' बालक ऐश्वर्यका उपभोगी बन जाय, यह एक विप्रको कैसे स्वीकार होगा। ब्राह्मणका शरीर तुच्छ भोगोंके लिए प्राप्त नहीं हुआ करता। वह तो मानवयोनिके इस महत्वको प्राप्त करता है मायापाशसे मुक्त होनेके लिए।

'नगरसीमाके बाहरी उपवनमें एक कुटिया, एक गौ और हवनकी सामग्री—बस। अधिक वस्तुएँ तथा बहुत-से सेवक उद्विग्न ही करेंगे मुझे। उनके उपयोगका इस विप्रको अभ्यास नहीं है।' प्रबन्धके सम्बन्धमें पूर्ण आदेश थे इसमें।

'आज्ञाका पालन होगा।' मन्त्री प्रसन्न थे अपनी सफलतापर।

'यह दरिद्र कंकाल और पाञ्चालका कोषाध्यक्ष।' राजसभामें अपने समीप बैठे हुए एक पुरुषके प्रति किसी ईर्ष्यालुके अन्तरकी अग्नि वाणी बनकर धीरेसे प्रकट हो गयी। आचार्य अभिरुचिने सौम्य शान्तभावसे नियुक्ति-पत्र स्वीकार कर लिया था। उनमें न तो चञ्चलता आयी और न उल्लास दिखायी पड़ा। राजपरिषद्के सभ्योंने देखा कि दूसरे दिन कोषाध्यक्षका आसन एक ऐसे ब्राह्मणसे भूषित है जिसके वस्त्र, पादुका एवं भाव उस आसनके उपयुक्त अबतक नहीं समझे जाते रहे हैं। उसे तो किसी तपोवनमें बैठना चाहिये था।

'नवासी निष्क मासिक मेरी ओरसे दीनोंकी सेवामें और बाँटा जाया करेगा।' दानाध्यक्ष तो आश्चर्यसे मुख

देखने लगे। 'यह किसीको ज्ञात नहीं होना चाहिये कि यह महाराजसे पृथक् दान है। व्यवस्थाके भारसे मुक्त रहना चाहता हूँ मैं।' कुल नब्बे निष्क (स्वर्णसिक्के) मिलने हैं और सुरक्षित रक्खा गया अपने लिए एक।

'इस प्रकार तो महाराजके यशमें ही यह दान लुप्त होगा।' दानाध्यक्षने नवीन कोषाध्यक्षको सावधान करनेका प्रयत्न किया। 'यदि आप दशांश दान नहीं करते तो नियमको उलट लें। अपने लिये दशांश रक्खा करें, आठ निष्क मासिक पैतृक सम्पत्ति मिलनी चाहिये कुमार अनन्तरुचिको।' सन्तानके लिए संग्रह करना—यह तो आवश्यक है।

'निष्क महाराजके हैं, अतः यश उन्हींका होना चाहिये।' बिना सोचे आदेश आजतक आचार्यने कभी नहीं दिया। 'ब्राह्मणपुत्र को पैतृक सम्पत्तिके रूपमें प्राप्त होना चाहिये विद्या, तप एवं धर्म। अपने कर्तव्यसे मैं विमुख नहीं रहूँगा। अनन्तरुचिको यह पैतृक दाय मिलेगा। सम्पत्तिको ब्राह्मण क्या करेगा।'

(२)

'आखेटमें आप साथ रहें, ऐसा अनुरोध है।'

'ब्राह्मण शिकारी नहीं होता। क्षत्रियके धर्मको बिना विपत्तिकालके उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये।'

'नियमतः विजयाके पुण्यपर्वमें सभी राजपरिषद्के सभ्य सीमोल्लङ्घनमें सहयोग करते हैं।'

'सैनिक आलस्य न अपना लें इसीलिए सीमोल्लङ्घन-का विधान शास्त्रोंने किया है। कल्पित नियम शास्त्रीय व्यवस्थाओंका अतिक्रमण करनेमें असमर्थ हैं। सभी सीमोल्लङ्घनमें सहयोग करें, यह कल्पित रूढि है।'

'विप्र जब आपत्तिमें राजसेवक हो सकता है तो उसे राजाके दूसरे आदेश भी स्वीकार करने चाहिये।' अत्यन्त समीपता अनादरका कारण होती है। आज पाञ्चालपति अविनीत हो रहे थे। उनके अन्तरङ्ग सुहृदोंने उन्हें समझाया था कि राजपरिषद्में राजोचित वेष-भूषा और व्यवहार ही राजसम्मानकी रक्षा करता है। नरेशके हृदयमें यह विचार दृढ़ कर दिया गया था कि अपने ब्राह्मणत्वकी श्रेष्ठताको सूचित करते हुए राजाके अपमानके लिए ही आचार्य अभिरुचि राजवस्त्र धारण नहीं करते। आज नरेशका वह हृदयमें छिपा भाव कुछ उद्धत होकर प्रकट हो रहा था।

'आपत्ति केवल विवश करती है, आवश्यकताकी पूर्तिमात्रको अपवादस्वरूप स्वीकार करनेके लिए।' आचार्यने क्षोभका कोई लक्षण प्रकट नहीं किया। 'अनिवार्य आवश्यकताके अतिरिक्त कुछ भी स्वीकार करना वहाँ भी अधर्म ही होता है।' वे तटस्थभावसे धर्ममीमांसा कर रहे थे।

'राजसम्मानकी रक्षा आपके लिए आवश्यक नहीं है?' राजाका रोष बढ़ता जा रहा था। 'राजपरम्पराका समादर आप अनिवार्य नहीं मानते?' प्रश्नोंके स्वरने विनयका नाटक समाप्त कर दिया।

'राजसम्मान एवं राजपरम्परा दोनों सम्मान्य हैं।' आचार्यकी वाणी जैसे किसी शिष्यको उपदेश देनेके लिए प्रकट हो रही हो। 'मैं राजपुरुष नहीं हूँ। आपद्धर्मके रूपमें मैंने स्वीकार किया है यह कर्म। अतः एक राजपुरुषकी भाँति ही यहाँके धर्म मेरे स्थायी धर्म नहीं और जब मुख्य तथा गौण धर्मोंमें विरोध हो तो प्रधानता मुख्य धर्मको मिलनी चाहिये।' जिसका निश्चय दृढ़ हो, उसे विचलित तो नहीं ही किया जा सकता।

'आप ब्राह्मण हैं। शरीरदण्ड आपको दिया नहीं जा सकता।' होठ काट लिया नरेशने। 'आप अपने मुख्य धर्मका पालन करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। महामन्त्री! आपकी कुटीकी सम्पूर्ण सामग्री लेकर बाँट दो ब्राह्मणोंको। राजपुरुषोचित सम्पत्तिसे आपको छुटकारा दो और राजस देश पाञ्चालकी सीमासे भी कल सूर्योदयके पूर्व।' आवेश में भी विप्रकी सम्पत्ति राजकोषमें लेनेका साहस नहीं हुआ। मन्त्री इस निर्वासन-दण्डके विपरीत कुछ कहें, इससे पूर्व महाराजका अश्व आखेटके लिए बढ़ गया। उन्हें उभाड़नेवाले अधम अन्तरङ्ग पुरुष दूरसे प्रसन्न हो रहे थे।

'मैं जानता हूँ, अन्याय हुआ है आपके साथ।' महामन्त्रीने भरे नेत्रोंसे कहा। 'आप भी मानते हैं कि पाञ्चालपतिको किन पुरुषोंने उत्तेजित किया है। आप अपनी कुटीमें शान्तिपूर्वक विश्राम करें। महाराजका आवेश शीघ्र शान्त हो जायगा और प्रातःकालकी राज-सभामें अपराधी दण्डाधारके सम्मुख दण्ड पानेके लिए

खड़े किये जायँगे ।' अमात्यने अपने प्रभावपर उचित विश्वास किया था ।

'प्रभुने मुझे सावधान किया है। अब समय आ गया कि मैं आपद्धर्मका परित्याग कर दूँ ।' आचार्यके स्वरोंमें दृढ़ता थी । 'मैं आपसे विनय करूँगा कि आप उन पुरुषोंको क्षमा कर दें, जो मेरे इस उद्बोधनमें निमित्त हुए हैं। वे मेरे उपकारकर्ता हैं। ब्राह्मण होकर मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप उनके अभ्युदयका मार्ग बंद न करें।' सच्चे हृदयका अनुरोध टाला नहीं जा सकता। जिनके कारण इस प्रकार अपमानित होना पड़ा, उनका आभार मानना यह अपूर्व दृष्टान्त था। महामन्त्री अवाक् देख रहे थे राग-द्वेषकी द्वन्द्व-परिधिसे पार उस महापुरुषकी ओर, जो अपनी कुटीको प्रस्थान कर चुका था।

'देवि सुरभि ! क्षमा करो ।' ब्राह्मणीने होमधेनुके पैरोंके पास मस्तक रक्खा। उनके नेत्रोंके जलने अन्तिम पूजन किया। 'पता नहीं ये अभागे प्राणी कहाँ भटकेंगे।' अपनी अपेक्षा माताको अपने भोले बालककी अधिक चिन्ता थी। आश्रमसे एक वस्त्र भी ले जानेका आदेश आचार्यने नहीं दिया।

'कल्याणी ! तुम यहाँ क्या लेकर आयी थीं ? तुम्हारे प्रारब्धमें जो है, वह तुम्हारा स्वागत करनेको सब कहीं प्रस्तुत मिलेगा। दूसरोंके भागको अपनानेकी इच्छा क्यों ?' पत्नीको वे इस प्रकार समझा रहे थे, जैसे अपने कोषाध्यक्षके आसनपर बैठने राजसभामें जा रहे हों और सन्ध्यातक लौट आवेंगे ।

'अनन्त आज तीन दिनसे ज्वरपीडित है।' पत्नीने शोकका वास्तविक कारण स्पष्ट किया और हिचकियाँ लेने लगीं। उनमें वस्तुओं अथवा कुटीका मोह नहीं था। 'कोमल बालक, पता नहीं शीत, वायु और वर्षा क्या-क्या पड़े।' अपने पुत्रके समीप जाकर अङ्कमें छिपा लिया उसे उन्होंने।

'और इसीलिए तुम शोक कर रही हो।' स्वर कह रहा था कि यह तो बुद्धिमानी नहीं है। 'पगली! तेरा अनन्त अपने साथ अपना प्रारब्ध ले आया है। ज्वर, कष्ट जो उसे होना है, वह होकर रहेगा। यहाँ रहनेसे वह कम नहीं होगा और प्रचण्ड झंझा या खुली वर्षामें बढ़ेगा नहीं। सर्वात्मा श्रीहरिने जो व्यवस्था की है, उसमें कोई उलट-फेर नहीं होगा।' पुत्रको पत्नीके अङ्कसे लेकर उन्होंने कंधेपर बैठाया और कुटीरका परित्याग कर दिया।

'पिताजी! अपनी वह अरुणनील पुष्पित भूमि, वे केशरकी क्यारियाँ और वह उत्पल, इन्दीवर, कह्लार-सरोजसे सजा सरोवर। हम अब अपने उसी आश्रममें चलेंगे।' बालकको पूर्व स्मृतिने उल्लसित कर दिया था। 'मैं खञ्जन-शावकोंके पीछे धीरे-धीरे चलूँगा। हंसोंको धान चुगाऊँगा और अंगूरके गुच्छोंसे आपकी अग्निशाला-को सजाऊँगा।' उसने दोनों हाथ उठा लिये और खिल उठा।

'निष्पत्रा कण्टकाकीर्ण बल्लरियाँ, अनाच्छादित वीतराग कल्पविशाल तरु, शतशः विदीर्णवक्षा जलहीना

भूमि, उग्र परुषकण्ठ उलूक तथा सम्यक् असित काक।' आचार्यकी वाणीमें काश्मीरका कवित्व जाग्रत् हुआ, उन्होंने पुत्रको स्नेहसे पुचकारा। 'वत्स, विश्वात्माका अपार सौन्दर्य सभी कहीं उन्मुक्त है। ब्राह्मण किसकी कामना करे। सर्वेशका कौन-सा उपहार असुन्दर एवं अग्राह्य है। अपनी अल्पबुद्धि कभी अग्निकी अरुणिमापर मुग्ध होकर उसे चयन करनेको प्रेरित करती है और कभी सर्पको आभूषण बनानेकी भ्रान्ति उत्पन्न करती है। तुम कुछ मत चाहो। उस मङ्गलमयको निर्बाध चयन करने दो कि वह तुम्हारे जीवनको उच्चतमकी ओर सञ्चालित कर सके। अपने परम कल्याणके लिए अपनेको उसपर छोड़ दो और अपनी इच्छाको बाधक मत बनने दो।' भोला बालक—वह क्या समझे इस तत्त्वज्ञानको। उसे इतना जान पड़ा कि पिता किसी अधिक अच्छे आश्रमका वर्णन कर रहे हैं। वह सोचने लगा कि क्या होगा उस आश्रममें।

(३)

'नारायण हरिः!' एक उच्च ध्वनि आयी। मध्याह्न-सन्ध्या समाप्त करके परिवारके लोगोंके अतिरिक्त सेवकोंने भी भोजन कर लिया था और कुत्ता अपना भाग पाकर गीली भूमिको पंजोंसे कुरेद रहा था। ग्रीष्मकी ज्वालासे बचनेके लिए वह यहाँ शयन करेगा। अब तो ग्राममें किसीभी घरसे धुआँ दिखायी देना सम्भव

नहीं। गृहपतिने देखा घरमें। रोटीका केवल एक टुकड़ा। भला संन्यासीको यह कैसे दिया जावे। दूधमें जाँवन डाल दिया गया था और दधि समाप्त हो चुका था। विवश होकर वे उसीको लेकर शीघ्रतापूर्वक द्वारपर आये।

'देव !' बुलाना व्यर्थ था। भ्रम हुआ था गृहपतिको। समीपके भवनद्वारपर संन्यासीने पुकारा था। अपने पैरोंसे एक हाथ आगे पृथ्वीकी ओर देखते वे कौपीनधारी केवल नारिकेल-पात्र करमें लिये आगे चले गये। पात्र खाली था। बहुत सम्भव है, दूसरे घरमें एक टुकड़ा भी शेष न रहा हो। जब एक द्वारपर भिक्षायाचना हो चुकी तो उससे लगे भवनसे भिक्षा स्वीकृत नहीं हो सकती। वे दो-तीन भवन आगे गये और तब वही ध्वनि।

गृहपतिने देखा, यह तेजोमूर्ति। श्रद्धाविवश वे पीछे हो लिये। कई भवनोंका अन्तर देकर पाँच बार वह ध्वनि और हुई और वे सरिताकी ओर गये। कुछ रोटीके टुकड़े, चावलके दाने तनिक-सा शाक, दाल, कुछ पायस और भी कई पदार्थ दूरसे दृष्टि पड़े उस पात्रमें। एक छोटा-सा गैरिक वस्त्रखण्ड कंधेसे उन्होंने उठाकर पात्रको ढक करके सरितामें डुबाया। भली प्रकार मिश्रित अन्न धो दिया गया। दो आवृत्तियाँ और हुई इस क्रियाकी। कठिनतासे दो छटाँक अन्न होगा पात्रमें। उसमें-से भी थोड़ा-सा निकालकर एक स्वच्छ पाषाणपर रख दिया गया। शेषको ग्रहण करके पूरे पात्रभर जल पिया उन्होंने

'देव !' अश्वत्थके नीचे बैठ जानेपर गृहपतिने प्रणाम किया। 'यह अभागा है। एक दाना अन्न भी आतिथ्यमें अर्पित नहीं कर सका। कल प्रभु दासके गृहको पावन करें।' आग्रह मूर्तिमान् हो गया था।

'भद्र ! धर्ममें तुम्हारी रुचि हो।' संन्यासीका कोई अङ्ग हिला नहीं। 'सबको अपनी मर्यादामें रहना चाहिये और दूसरोंको रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। श्रद्धाके आवेगमें मर्यादा विस्मृत हो गयी है तुम्हें। आजकी भिक्षा हो चुकी और एक रात्रिसे अधिक एक ग्राममें संन्यासीको नहीं रहना चाहिये। संन्यासी आमन्त्रित भिक्षा ग्रहण नहीं किया करता।' सत्यसे पवित्र वाणी आग्रहको अवकाश ही नहीं रहने देती।

'प्रभो ! मैं एक अनुष्ठान करना चाहता हूँ।' गृहपति बहुत समयसे किसी योग्य महात्माके अन्वेषणमें थे। 'भय तो मुझे लगता नहीं। विधिनिर्देशकी कृपा हो तो मैं चामुण्डाको संतुष्ट करनेका इच्छुक हूँ।' कामनाने जिसके विवेकको ढक दिया है, वह उचित-अनुचितका विचार नहीं करता।

'राजस और तामस उपासना जीवके बन्धनको और सुदृढ़ करती है।' महात्माने सावधान किया। 'इस प्रकारके अनुष्ठानोंको सत्‌शास्त्र श्रेष्ठ नहीं बताया करते। मेरा इस प्रकारका कोई अध्ययन नहीं।' अपनी असमर्थता प्रकट करनेमें योग्य पुरुष संकोच नहीं करते।

'पितामहके समयसे ग्रन्थोंका विस्तृत संग्रह चला

आता है।' गृहपतिने आग्रह किया। 'आपके आदेशसे अन्य भी उपस्थित हो सकते हैं।' स्वार्थ अन्धा होता है। पुस्तकीय ज्ञान ही किसीको शील सम्पन्न नहीं बनाता। वे यह भी नहीं सोचते थे कि एक साधु उन ग्रन्थोंका अध्ययन करके अनुष्ठान बतानेमें लगे तो वे स्वयं क्यों न ग्रन्थ पढ़ लें।

'मेरे लिए तो भगवान्‌के ये दिव्यादेश ही बहुत हैं।' एक छोटी-सी श्रीमद्भगवद्‌गीताकी पुस्तक गैरिक वस्त्रमें आवेष्टित थी। साधुने संकेत किया उधर।

'लोककल्याणके लिए ही आपने त्याग किया है।' स्वार्थने पाण्डित्य-प्रदर्शनपर बाध्य किया। 'मेरे कल्याणके लिए आपको कष्ट करना चाहिये। प्राणियोंका मंगल होगा इसमें।' शास्त्रार्थकी चुनौतीकी भूमिका बन गयी।

'लोककल्याण - लोक जिसने बनाये हैं, वह उनके कल्याणके लिए नित्य सावधान है। क्षुद्र अहङ्कार, सीमित शक्ति लोकका क्या कल्याण करेगी।' संत गम्भीर बने रहे। 'आप मुझे क्षमा करें। शास्त्रार्थ करनेमें मैं असमर्थ हूँ। आपकी जो धारणा है, उचित हो सकती है। मैं अपनी शक्ति जानता हूँ।' वे मानो प्रार्थना कर रहे हों।

'भगवद्‌गीताको आप जीवके कल्याणका पथ तो मानते ही हैं।' माया और मानव-मनका स्वभाव है कि जहाँसे वह रोका जाता है, वहीं पहुँचनेका प्रयत्न करता है। 'मैं गीताका अध्ययन करना चाहता हूँ। आप उसकी

व्याख्या लिखानेका अनुग्रह करें।' पाण्डित्यको विफल होते देख नीतिका आश्रय लिया गया।

'संन्यासीका क्या ठिकाना कि वह कहाँ रहेगा। अध्यापन होता है एक स्थानपर रहनेसे।' सरल सन्त छलछद्मका क्या विचार करें। 'व्याख्या करनेमें न तो मेरी प्रवृत्ति है और न अधिकार।' उन्होंने सीधी बात कह दी।

'ग्राम से दूर ब्राह्मणबालकोंका एक ऋषिकुल है। एकान्त शान्त उपवनमें सुरम्य कुटी आत्मचिन्तनके अत्यन्त उपयुक्त होगी।' गृहपतिने प्रलोभन दिया 'केवल थोड़े समय गीताका अध्ययन आप बालकोंको करा दिया करें। मैं भी अध्ययन कर लूँगा। भिक्षाके लिए भी कष्ट नहीं होगा। उन ब्रह्मचारियोंकी पवित्र भिक्षा शास्त्रसम्मत है और संन्यासी परिव्राजकके साथ कुटीचक भी हो ही सकता है। इस प्रकार एक शुभ कार्य सम्पन्न होगा।' आशा थी कि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा।

'किसी भी प्रकारकी निश्चित आजीविका शास्त्र-विहित नहीं। कुटीचक होनेका विधान है जराजीर्ण, रुग्ण एवं असमर्थ शरीरोंके लिए। अध्ययन, अध्यापनका या कोई भी प्रारम्भ अब अनावश्यक हो गया है और बुद्धिकी उसमें प्रेरणा नहीं। शुभ या अशुभ लोकत्रयका न्यास करनेके पश्चात् किसका आचरण किया जाय और किसलिए?' उन्होंने समझानेका प्रयत्न किया। 'भिक्षा जहाँतक सम्भव होता है वानप्रस्थाश्रमियोंके नीवारसे सम्पन्न होती है। आजकी भाँति कभी-कभी ग्राममें आनेको विवश होता हूँ। एक योजनसे अधिक

पर्यटन थकावटका कारण होता है और श्रान्ति प्रमादकी जननी है । आज एक योजनके अन्तर्गत कोई वानप्रस्थाश्रमी मार्गमें प्राप्त न हुआ ।' भला पत्थरपर पिसे श्यामाककी भिक्षापर निर्वाह करनेवालेको सुस्वादु पदार्थोंका क्या प्रलोभन ।

'जब शुभाशुभका ध्यान नहीं तो भिक्षाकी आवश्यकता भी क्या ।' रोष आ गया वाणीमें । 'क्यों अनशन करके शरीर त्याग नहीं कर देते । जीवनसे भी क्या प्रयोजन । आपने तो दण्ड भी कहीं प्रवाहित कर दिया है ।' व्यंग किया जा रहा था ।

'प्रारब्धप्रेरित शरीर चल रहा है । प्रकृतिप्रेरित आहारादि कर्म सम्पन्न होते हैं ।' वहाँ उत्तेजनाका नाम नहीं था । 'जीवन रहे, यह आवश्यक नहीं ; किन्तु मृत्युका आग्रह भी किसलिए ? शरीर हानि नहीं करता अपनी कुछ । वाक्संयम , वासनाका निरोध और प्राणायाम-ये वाणी, चित्त एवं शरीरके त्रिदण्ड धारण कर लेनेपर बाहरी बाँसका दण्ड अनिवार्य नहीं होता । भद्र ! क्षुभित होनेका कोई कारण नहीं । प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही इच्छासे प्रेरित व्यवहार करता है । दूसरेकी प्रेरणा सदा सफल नहीं होती ।'

'मैं केवल एक अनुरोध करूँगा ।' गृहपतिने मस्तक झुकाया । 'ग्राममें एक शास्त्रार्थ है । आज सायं आप उसकी मध्यस्थताकी स्वीकृति दें ।' अपनी विजयकी उन्हें पूरी आशा थी और मध्यस्थ निष्पक्ष हो, यह उद्देश्य था ।

'ओह ! आप पण्डित हैं ।' मन्द मुसकान आयी मुखमण्डलपर । 'शास्त्राभ्यास छोड़े मुझे बहुत समय हो गया और तर्कमें कोई रुचि नहीं । मन एकाग्र करके शुष्कवाद-श्रवणमें अमूल्य समय नष्ट करना संन्यासीके उपयुक्त कार्य नहीं ।'

'मैं परिचय जान सकूँगा ?'

'विद्वान् होकर भी आप संन्यासीसे पूर्वाश्रमका परिचय पूछते हैं । शास्त्र आदेश नहीं देता ।' अब उन्होंने आसन लगाया और सीधे बैठ गये ।

'देव ! इस दासकी प्रतीक्षा सार्थक हुई । अब तो इसे अपने चरणोंमें ही स्वीकार कर लें ।' पासकी कुटीसे एक जटाधारी वृद्ध निकले और महात्माके चरणोंपर गिर पड़े ।

'महामन्त्री !' संन्यासी चौंके । उन्होंने वृद्धको उठाया । पण्डितजी वृद्धको जानते थे । अब वे संकुचित हो गये । 'क्या पता था कि सरिता-तीरपर आपने वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया है ।' जैसे अनेक स्मृतियाँ आयीं और चली गयीं । दो क्षणमें ही वे शान्त हो गये पहलेसे ।

'कुटियामें मध्याह्न-कृत्यके पश्चात् आवश्यक जपमें लगनेसे यह भूल हुई ।' वृद्धने क्षमा-याचना की । 'इस वृद्धावस्थामें एक वर्षका ही तृतीयाश्रम सम्भव था । आज वह अवधि पूर्ण हुई और प्रभुके दर्शन हुए । अब आज्ञा दें कि मैं आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करूँ ।' हर्ष, उल्लास, श्रद्धा, सबने उन्हें चंचल कर दिया था ।

'उत्कट इच्छा सफल होती है। यदि दीक्षाकी आवश्यकता होगी तो उसे देनेवाला भी प्राप्त होगा।' संत स्वस्थचित्त समझा रहे थे। 'शिष्य न करनेका मैंने नियम किया है और आप मेरे नियममें बाधा उपस्थित करेंगे, ऐसी तो आशा नहीं।'

'कैसा है यह भिक्षु!' पण्डितजी सोच रहे थे। 'पाञ्चालके महामन्त्रीको भी शिष्य बनाना उसे स्वीकार नहीं!' अभिवादन करके उठ गये वे वहाँसे।

(४)

'महाराजको पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने तीसरे ही दिन अन्वेषणका आदेश दिया!' वयोवृद्ध महामन्त्री पूर्व स्मृतिको दुहरा रहे थे। मेरा समस्त प्रयत्न व्यर्थ रहा। पिछले वर्ष मैंने चिरंजीव अनन्तरुचिको प्राप्त किया और उन्होंने ही अनुग्रहपूर्वक इस वृद्धको कार्यभार से मुक्त करके प्रभुके चरणोंमें लगनेका अवकाश दिया। असमर्थ ही रहे वे भी श्रीचरणोंका कोई समाचार देनेमें। चतुर्वर्षीय वानप्रस्थके पश्चात् श्रीपादका कोई समाचार उन्हें प्राप्त नहीं हुआ।' उस युगमें जब पैदल पर्यटन ही सम्भव था, एक अकिञ्चन विप्रपरिवार अनन्त विराट्के किस कोनेमें है, किस प्रकार उसका पता लगता।

'आप अग्निन्यास करनेको उत्सुक हैं और अभी पूर्वस्मृतियोंका परित्याग कर नहीं सके?' स्वरमें स्नेहपूर्ण उलाहना था। 'एक ही सौन्दर्यराशि जो प्रत्येक रूपमें भासमान है, उसीमें अन्तरके सम्पूर्ण अनुरागको एकत्र

करके विश्वके सम्पूर्ण मोहसे परित्राण प्राप्त कर लेना संन्यासका उद्देश्य है। विधि एवं निषेधसे परे, अहं-त्वंकी सीमाको समाप्तकर जो आनन्दघन विराजित है, उसमें चित्तको व्यवस्थित कीजिये।' पुत्र पाञ्चालका महामन्त्री हो गया, इस समाचारका जैसे उस हृदयसे कोई सम्बन्ध ही नहीं था।

'सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् अपना ही स्वरूप है। 'अहम्'को व्यापक करके उसमें 'त्वम्'को लीन करके जो आत्मोपलब्धि होती है, उससे 'ममत्व' दूर हो जाता है या मम भी अपना स्वरूप हो जाता है?' विद्वान् वृद्धने विवाद नहीं उपस्थित किया था। वे सचमुच उलझनको सुलझाना चाहते थे। सच्चे जिज्ञासुका तिरस्कार किसीके द्वारा सम्भव नहीं। वे जानना चाहते थे कि जब सब अपने ही स्वरूप हैं तो क्यों संन्यासीको पूर्वाश्रमकी स्मृतिसे भी दूर रहना चाहिये।

'यह तो अधिकार-भेदकी बात है साधुके नेत्र अर्धोन्मीलित हो रहे थे और वाणी मन्द होती जा रही थी। 'मम' जब 'अहम्' में लीन होता है तो 'त्वम्' और 'तव' उससे भिन्न नहीं हुआ करते। यदि ऐसा न हो तो जड़ताकी ही उपलब्धि होगी। 'अहम्' में 'त्वम्' का पर्यवसान बुद्धिकी विशुद्ध व्यवस्थितिपर निर्भर करता है; किंतु 'त्वम्' में 'अहम्' का उत्सर्ग—अणु-अणुकी सत्ताको समाप्त करके जो कृपावारिधर उद्भासित हो रहा है, उसकी मधुरिमामें मन स्वतः लय हो जायगा।' नेत्रोंने अनवरत धाराएँ प्रवाहित करना प्रारम्भ किया। रोम-

रोम सतर्क मस्तक उठाकर जैसे उनकी रक्षा करने लगा। प्रत्येक रोमकूपसे अन्तःकी रसधारा बाह्यद्रव बनकर प्रकट हो गयी।

वयोवृद्ध मन्त्री—उन्होंने अनुभव किया कि एक दिव्य सुगन्धि व्याप्त हो गयी है। संन्यासीके मुखमण्डलसे एक अपूर्व ज्योति प्रकट हो रही है और तब उनकी चेतना डूबने लगी किसी अज्ञात आकर्षणमें आबद्ध होकर। बाह्यका सम्पूर्ण स्नेह जिसके अन्तरमें एकत्र हो गया है और अनुरागकी उस रज्जुसे जिसने उस चपल आनन्दघनके चरणाम्बुज पकड़ लिये हैं, जब वह अपने-आपको एकाग्र करता है उन श्रीपदोंमें, समीपकी चेतना विवश होकर आकर्षित होती डूबती जाती है। महामन्त्रीने जब अपनेको सम्हाला, हृदयमें आनन्द-सिन्धु उल्लसित हो रहा था और शरीर संन्यासीके पद-प्रान्तमें पड़ा था। आप इसे शिष्यके आत्मनिवेदनके पश्चात् गुरुकी शक्तिमयी दीक्षा कहें तो कह सकते हैं।

अवधूत

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

'वह एक पागल आ गया है आजकल ! देखा होगा आपने ।'

'पूरा बना हुआ है, स्वार्थके लिए स्वाँग बनाया है उसने ।'

'समाज तो अन्धा है, ऐसोंका भी सत्कार करनेवाले निकल ही आते हैं ।'

'भैंसे-जैसा मोटा है और बिना परिश्रमके माल उड़ाता है ।'

'इसी अन्धश्रद्धासे तो हमारा सर्वनाश हुआ है । ये लाखों आलसी कुछ करने लगें तो····।'

'करनेकी एक रही । कहीं चोरी या डकैतीकी टोहमें न हों तो कुशल समझो । वैसे घरोंकी नारियोंपर तो दृष्टि रहती ही है इन मुसटंडोंकी ।'

'जब बराबर सुस्वादु भोजन मिलेगा तो संयम कैसे सम्भव है ?'

'चाहे जैसे हो, इस जंगलीको तो यहाँसे निकालकर ही रहूँगा ।'

‘आपलोग एक महापुरुषकी निन्दा कर रहे हैं।’ अन्ततः तीसरा श्रोता मौन नहीं रह सका।

‘ऐसे ही महापुरुषोंने तो समाजका सर्वनाश कर डाला।’

‘आप-जैसे लोग ही इनको पालकर समाजमें अनाचार फैलाते हैं।’

‘मेरी शक्ति कितनी।’ श्रद्धालुका कण्ठ भर आया था। ‘इस प्रकार नित्यप्रसन्न, अपने आपमें निमग्न आनन्दमूर्तिके दर्शन मैंने तो कभी किये नहीं। मैं तो अपना सौभाग्य मानता हूँ कि मेरा रूखा-सूखा अन्न उन्होंने स्वीकार कर लिया।’

‘आपकी खीर-पूड़ी स्वीकार न होगी तो क्या चनेके टिक्कर ढूँढ़ेंगे।’

‘घरपर होते तो हल जोतते-जोतते नानी याद आ जाती। निठल्ले तो नित्य प्रसन्न रहेंगे ही।’

‘साधुकी निन्दासे पाप ही होता है। उनकी हानि तो क्या होनी है।’ वह उठकर जाने लगा। जहाँ धर्म, ईश्वर और संतोंकी निन्दा होती हो, वहाँ बैठकर उसे सुनना भी अपराध है।

‘अरे चले कहाँ आप? वे आपके महापुरुष आ रहे हैं।’ हँसकर एक ओर संकेत किया गया।

दीर्घ भव्य आकृति, सुगठित स्थूल शरीर, गौर वर्ण, धूलिधूसरित, मस्तकपर धूलि सनी अलकें, आजानुबाहु, विशाल नेत्र, उच्च विस्तृत भाल—जैसे कोई महामूल्यवान्

माणिक कीचड़से ढका हो। उन दिगम्बरको बालकोंने घेर रक्खा था और सब चिल्ला रहे थे। कीचड़-गोबरसे बालकोंने उनके पूरे शरीरको रँग दिया था। कोई कंकड़ियाँ मारता था और कोई जल या कीचड़ डालता। वे रह-रहकर खिलखिला पड़ते। जिधर मनमें आता, चलने लगते और चाहे जहाँ खड़े हो जाते।

'आ तुझे पकड़ लूँ!' एक पुष्पपर तितली बैठी थी। बच्चोंकी भाँति दबे पैर बढ़े। मानवका कलुषित हृदय भले हृदयके प्रभावको ग्रहण न करे, पशु-पक्षी-कीट तो भावसे अभिभूत हो जाते हैं। तितली उड़कर उनकी लाल कीचड़ लगी हथेलीपर बैठ गयी। 'अरे, अरे, कीड़ा नहीं छूता मैं। भाग जा! भाग जा! जैसे कोई भय आ गया हो। हाथोंको हिलाकर पीछे हटे। तितली पुष्पको भूलकर उनके ही चारों ओर परिक्रमा कर रही थी। बच्चे ताली बजा रहे थे।

'अबे, ओ पागलके बच्चे!' क्रोधसे उन्होंने एक चपत जड़ दी। 'बैलके समान मोटा हुआ है और काम करनेसे जान जाती है। सीधे इस गाँवसे चला जा, नहीं तो मैं तेरा सारा पागलपन उतार दूँगा।' चिल्लाकर जैसे आकाश फाड़ देना चाहते हों।

'अरे, अरे, यह क्या करते हैं आप!' श्रद्धालुने बीचमें पड़कर रोका।

'अं, अं, मक्खी मर जायगी तो!' रोनेका नाट्य कर रहे थे वे अवधूत! 'ला, तेरा हाथ दुखता होगा।'

जैसे चोट लगनेपर बच्चोंको लोग फूँक मारते हैं, वैसे ही मुँह बनाया उन्होंने हाथपर फूँक मारनेको।

'मैं कहता हूँ, यह नाटक छोड़कर सीधे चंपत बन!' चिल्लाते हुए उन्होंने तड़-तड़ दो-तीन हाथ और चला दिये। बीच-बचाव करनेमें एक चपत श्रद्धालुपर भी पड़ गयी।

'मैं भाग जाऊँगा, तुम दोनों लड़ते हो!' बड़े जोरसे खिलखिलाकर हँसे और सचमुच भाग चले।

'प्रभो! मेरे गृहको श्रीचरणोंसे पवित्र करें! बड़ा कष्ट दिया इन दुष्टोंने।' श्रद्धालु वहाँसे दौड़कर भागे आये। उन्होंने नम्रतापूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। डाँट पाकर बालक दूर हट गये थे।

'घर जा तू, मैं क्यों जाऊँ? तेरी अम्मा कान पकड़ेगी तेरे। मेरे कान कौआ ले जायगा—हाँ!' दोनों कानोंपर हाथ रक्खा उन्होंने। जैसे सचमुच कानोंको ले जाने कोई कौआ आ गया हो। भागे पूरे वेगसे। श्रद्धालु चकित देखता रह गया।

(२)

'ले भाई! तुझे सर्दी लगती है!' कहीं कूड़ेपर-से एक मोटा चिथड़ा उठा लिया था। हाथोंपर उसे लिये आ रहे थे। राखके ढेरको कुरेदकर एक पिल्ला बैठा था। मरियल-सा कुत्तेका बच्चा और उसके सब केश खाजसे झड़ चुके थे, लाल-लाल चमड़ा देखकर घृणा होती थी।

शिशिर ऋतु, नन्हीं फुहार और पश्चिमी तीव्र पवन। बेचारा कुत्ता मुखको पिछली टाँगोंके बीच दबाकर गोल हो गया था। उन्होंने चिथड़ा उसके ऊपर डाल दिया और थपथपाया। कुत्ता तनिक हिला, एक बार दबी पूँछमें गति आयी और फिर सोनेके लिए उसने निश्चिन्त होकर नेत्र बंद कर लिये।

'बाबा! देखो न इस पागलको क्या ठंड नहीं लगती?' अग्निके चारों ओर पुआलके बने गोल आसनोंपर एक वृद्ध हाथमें तंबाकू लेकर चूनेकी डिबियासे चूना निकाल रहे थे। पासमें उन्हींके समान एक पोपले मुखकी दृष्टि उनके हाथोंपर लगी थी। एक बच्चा एक तिनकेका अगला भाग जलाकर धूम्रपानका प्रयास कर रहा था और दूसरा एक पतली लकड़ी घुमाकर अङ्गारचक्र देखनेमें लगा था। एकने कम्बलको सम्हालते हुए पूछा। सबने कम्बल या चद्दरें मस्तकपर डालकर पीठका भाग ढँक रक्खा था। किसी-किसीने दोनों पैर आगे बढ़ा दिये थे और तलवे सेंक रहे थे। एक बार-बार हाथोंको गरम करके मुखपर फेर रहा था।

'देखो न बाबा! वह तो बूँदोंमें भीगता जा रहा है!' दूसरे बच्चेने हाथ पकड़ा।

'वह तो पागल है! उसे न सर्दीका पता लगता और न गर्मीका!' वृद्धको इस मीमांसाका अवकाश नहीं था कि पागलको शीत-उष्णका कष्ट होता है या नहीं। उन्होंने तो चूना निकाल लिया था। चूनेदानी सम्हालकर बंद की और उसे बटुएमें रखकर बटुएके दोनों ओरकी रस्सी

खींचकर उसका मुख संकुचित करके बंद किया। बटुआ जेबमें रखकर तंबाकूपर चिटकी चलानेमें लग गये।

'हाँ बाबा ! उसे तो गर्मी भी नहीं लगती। मैं, जब आम थे न, दोपहरीमें कच्चे आम लेने गया था। वहीं जब लू लग गयी थी मुझे।' एक लड़केने समर्थन किया। 'वह आमके नीचे भी नहीं बैठा था। उस मधुआके कुएँकी जगतपर अंटाचित्त पड़ा था। मुन्ना देखने गया उसे, तो पक्की जगतपर पैर रखते ही चिल्लाकर भागा।'

'बाबा ! मेरे पैर जल गये तो भागता नहीं !' मुन्नाने पैरोंकी ओर देखा जैसे अब भी वहाँ जलनेका कोई चिह्न मिल जायगा।

'तुमने देखा कहाँ, वह तो वर्षामें खेतकी मेंड़पर सोया करता था !' बड़े होनेके कारण दामोदरको भी योग्यता तो बतानी चाहिये।

'भैया ! दौड़ो ! देखो वह गिर गया !' चर्चा बीचमें ही बंद हो गयी। लड़कीने सबका ध्यान एक ओर आकर्षित किया। बूँदोंने मार्गको चिकना कर दिया था। पैर फिसला और स्थूल शरीर गिर पड़ा। वृद्धने कम्बल सम्हाला और उठ खड़े हुए। लड़के पहले ही दौड़ गये थे। हाथ पकड़कर वे पागलको उठाकर ले आये और अग्निके समीप बैठा दिया।

'लाल, लाल, मेरा पैर लाल, लाल !' घुटना कंकड़ोंपर पड़ा था। रक्त आ गया था वहाँसे। पागलने हाथमें रक्त लगाया और बच्चोंको दिखाने लगा। बड़ा

प्रसन्न था वह। अग्निकी उष्णताके कारण रोएँ सीधे होने लगे थे, इधर उसका ध्यान नहीं था।

'हल्दी-चूना!' वृद्धने लड़कीको आदेश दिया। गरम करके लेप किया उन्होंने और ऊपरसे एक वस्त्र-खण्ड भली प्रकार बाँध दिया।

'मेरे पैरने कपड़ा पहन लिया!' पागलको नवीन कौतूहल हुआ।

'तुम भी थोड़ा खा लो!' हरी मटरके दाने तेलमें तले गये थे और उनमें नमक-मिर्च पड़ी थी। एक-एक कटोरेमें सबके लिए आया। वृद्धने तंबाकू अपने दुपट्टेके छोरपर बाँध दी और एक कटोरा पागलको देकर एक स्वयं लिया।

'बाबा! यह कैसे खाता है!' बच्चोंको कुतूहल हो रहा था। कटोरेमें मुख लगाकर वह इस प्रकार भोजन कर रहा था, जैसे उनका बछड़ा करता है। वह भोजनमें तल्लीन था। उसे किसीकी चिन्ता नहीं थी।

'पानी चाहिये!' उसने कटोरेमें ही दूध मिला शर्बत पी लिया था। हाथ धोने और आचमन करनेकी वहाँ आवश्यकता नहीं थी।

'तंबाकू लोगे!' वृद्धने तीन बार ताली बजाकर ठोंका। दो लड़कोंको छींकें आयीं। दूसरोंने मुख फिरा लिया। एक चिटकी दूसरे वृद्धको देकर दूसरी चिटकी उन्होंने पागलके फैले हाथपर रख दी। उसने अपने हाथको नासिकाके समीप ले जाकर सूँघा और इस

प्रकार नाक सिकोड़ ली जैसे यह पदार्थ पसन्द नहीं आया। तंबाकू भूमिपर डाल दी उसने और उठ खड़ा हुआ।

'बैठो, सर्दीमें कहाँ ठिठुरते फिरोगे। भोजन करके तब जाना। तबतक बूँदें बंद हो जायँगी और सम्भव है कि धूप भी निकल आवे!' वृद्धने आग्रह किया। पागल क्या, जो सबकी बातें समझ ले और व्यवस्थित व्यवहार करे। वह तो इस प्रकार चला गया, जैसे कुछ सुनता ही न हो।

'बाबा! उसे फटा कम्बल दे आऊँ?' एक लड़केको बड़ी दया आयी थी उसपर।

'दे आओ! वैसे तो किसी कुत्तेके पिल्ले या बकरीपर ही डाल देगा वह; किंतु जबतक रक्खेगा, ठंड तो न लगेगी।' भोले ग्रामीणोंमें श्रद्धा अधिक होती है। उनके अपने अभाव हैं, कष्टके अनुभव उन्हें सिखलाते हैं। लड़का दौड़ा और उसने कम्बल उस पागलके शरीरपर लपेट दिया। कौन कह सकता है कि कबतक वह उसके शरीरपर रहेगा।

'दोपहरको उसके लिए भी रोटी बना लूँ!' लड़कीने पूछा! उसने सुना था कि वृद्ध उसे दोपहरको भोजनको कह चुके हैं और जब किसीको भोजनको कहा जा चुका तो भोजन तो उसे पहुँचाना ही चाहिये।

'पगली है तू भी! उसे कहाँ ढूँढ़ेंगे हम।' सच तो है, पागलका कहीं घर तो होता नहीं। उसका कोई निश्चित गन्तव्य भी नहीं। कहाँ कब वह रहेगा, कैसे जाना जाय।

'भाई ! वह पागल तो नहीं लगता।' दूसरे वृद्धने कहा 'न तो कभी किसीको गाली देता है और न मारता है। मल-मूत्र भी मार्गमें या किसीके द्वारपर नहीं करता।' जान-बूझकर उन्होंने यह नहीं कहा कि शौचके लिए उसे जलकी आवश्यकता नहीं होती और स्नान तो वर्षाके बादल ही कभी कराते होंगे।

'शान्त पागल भी तो होते हैं!' उत्तर और कोई हो नहीं सकता था। 'रामपुरके शास्त्रीजीने महात्मा समझा था। नित्य ढूँढ़कर भोजन कराते, पकड़कर स्नान कराते और रात्रिमें अपनी शय्यापर शयन कराते; किंतु एक दिन वहाँसे पता नहीं कहाँ चला गया यह और आज यहाँ देखा है मैंने। जिसकी कहीं माया-ममता नहीं, शरीरके सुख-दुःखका पता नहीं, किसीके भले-बुरेका ज्ञान नहीं, वह पागल नहीं तो और क्या है।' कोई भी पागल ही कहेगा उसे देखकर। वृद्धका निर्णय अनुचित तो नहीं ही था।

(३)

'आप यहाँ इस प्रकार पड़े हैं?' प्रणाम करके हाथ जोड़कर वे चरणोंके समीप बैठ गये। इंगुदीके वृक्षके नीचे महापुरुष एक सँकरे स्थानमें दाहिनी हथेलीपर मस्तक रक्खे आधे लेटे थे। यद्यपि उनका शरीर मैलसे ढँका था, पर उससे एक मधुर सुगन्ध निकल रही थी। ललाटपर घुँघराली अलकें जटा बनने लगी थीं। वर्षा

ऋतुमें नालेने यहाँ चौड़ी भूमि काट दी है। यदि प्राकृतिक सौन्दर्य देखनेकी इच्छासे इस ऊबड़-खाबड़ स्थलकी ओर न आये होते तो इन महापुरुषके दर्शन न होते। शास्त्रीजी शिष्योंके साथ यमुना-किनारे करीर-कुञ्जोंमें घूमने निकले थे। एक तेजस्वी महापुरुषको देखकर वे उनके पास आ गये। प्रणामके पश्चात् उन्होंने पूछा—'बिना पौष्टिक पदार्थोंके सेवन किये शरीर स्थूल होता नहीं। पौष्टिक पदार्थ, सुख-भोग परिश्रमसे प्राप्त होते हैं। आप कोई उद्यम करते जान नहीं पड़ते। आपके श्रीमुखपर जो विलक्षण प्रसन्नता झलक रही है, संसारकी उलझनोंमें लगे पुरुषोंको ऐसी निश्चिन्तता एवं प्रसन्नता प्राप्त हो ही नहीं सकती। बिना चाहे हुए शरीरकी यह पुष्टता और यह आनन्द आपको कैसे प्राप्त हुआ ?'

'तुम जिज्ञासु हो और जो जाननेका अधिकारी हो, उससे छिपाना उचित नहीं है।' वे महापुरुष न हिले, न उठनेका उन्होंने प्रयत्न किया। वैसे ही लेटे-लेटे वे बोले—'उद्यम करनेवालेको ही भोग प्राप्त होते हैं—तुम्हारे इस निश्चयमें ही दोष है। शास्त्रज्ञको ऐसा कुतर्क नहीं करना चाहिये। तुमको पता है कि शरीरमें चेष्टा या तो वासनासे होती है या प्रकृतिकी प्रेरणासे। चेष्टामें कर्तापनका अहंकार होनेसे उस कर्मका चित्तमें संस्कार बनता है। यही संस्कार अगले जन्मोंमें प्रारब्ध बनते हैं। चेष्टासे जो प्रत्यक्ष फल मिलता प्रतीत होता है, वह तो प्रारब्धसे प्राप्त होता है। चेष्टाका फल नहीं है वह।'

कर्म, संस्कार, फल और अहंकार—ये सब पृथक्-पृथक् हैं, यह बात शास्त्रीजीने मीमांसाशास्त्रमें पढ़ी अवश्य है, परंतु वह शास्त्रीय सिद्धान्त मूर्ति बनकर आज ही उनके सामने आया है।

'वासनाद्वारा जो चेष्टा होती है, वह शरीरमें आसक्ति होनेसे होती है। जबतक शरीरमें आसक्ति है, सन्तोष हो नहीं सकता। जिसे सन्तोष नहीं, उसे सुख कैसा।' महापुरुष कहते जा रहे थे—'मेरा प्रारब्ध कभी सुख देता है मुझे, कभी दुःख। आज यहाँ भूमिपर पड़ा हूँ, कल कोई उत्तम शय्यापर शयन करायेगा। कभी बच्चे गोबर-कीचड़ लगाते हैं, कभी श्रद्धालु चन्दन लगाते हैं। कोई कंकड़ मारते हैं, कोई पुष्पाञ्जलि देते हैं। कभी उपवास होता है, कभी कुछ दाने मिल जाते हैं, कभी-कभी षट्रस व्यञ्जनोंसे सत्कार होता है मेरा। प्रारब्धके दिये कड़वे उपहारोंसे असन्तोष और सुन्दर भोगोंसे मोह व्यर्थ है। वासनासे असन्तोष होता है। प्रारब्धसे जो अच्छा या बुरा प्राप्त होना है, प्रयत्न उसमें कुछ घटा-बढ़ा नहीं सकता। जो भी आता है, मैं उसीमें सन्तुष्ट रहता हूँ। प्रकृतिकी प्रेरणासे ही मेरे शरीरमें चेष्टा होती है। चेष्टामें अहङ्कार करके मैं शोकातुर क्यों बनूँ।'

'मैं भूलता नहीं हूँ—कल आपको ही उस गाँवमें कुछ दुष्ट गालियाँ दे रहे थे।' शास्त्रीजीने मस्तश झुकाया। 'मैं वहाँ पहुँचा तो आप चले गये थे। ऐसे महापुरुषका अपमान……।'

'नारायण ! वे मेरे सम्बन्धमें कुछ शब्द कह रहे थे और अब तुम कुछ शब्द कह रहे हो !' वे धीरेसे हँसे। 'इस मिट्टीके पुतलेको लक्ष्य करके कुछ शब्द कहे गये। शब्द आकाशका गुण है। उसमें निन्दा-स्तुति, मान-अपमान कल्पना है। सब शब्द हैं। तुम्हें विश्वास न हो तो किसी ऐसे व्यक्तिके सम्मुख बोलकर देखो जो तुम्हारी भाषा न जानता हो। शब्दमें अर्थकी तो कल्पना की गयी है। मैं दूसरेकी कल्पनाको क्यों स्वीकार करूँ। शब्दको केवल शब्द मानकर मैं मौन रहता हूँ।'

'यहाँसे समीप ही इस सेवकका निवास है।' शास्त्रीजीने आग्रह किया, 'आप जहाँ आज्ञा देंगे, वहीं कुटिया बना दी जायगी और जो अनुकूल पड़ेगा, वैसा प्रसाद उपस्थित करनेका प्रयत्न करूँगा। कलसे चातुर्मास्यका प्रारम्भ हो रहा है। मेरे-जैसे सेवकपर कुछ समयतक कृपा होनी चाहिये।' शास्त्रीजी जानते थे कि संन्यासी कहीं एक स्थानपर नहीं रहते। शास्त्रके आज्ञानुसार चातुर्मास्य एक स्थानपर करना स्वीकार हो जाय तो सत्संगका लाभ मिल सकता है।

'बच्चे हो तुम ! खिलखिलाकर हँसे वे। 'अनुकूल और प्रतिकूल क्या ? प्रारब्ध जो स्वतः उपस्थित करे, वही अनुकूल होना चाहिये। बिना प्रयास जो भी प्राप्त हो अथवा न प्राप्त हो। सर्प कभी घर नहीं बनाया करता। वह तो दूसरोंके बनाये, अस्त-व्यस्त सूने घरको बसेरा बना लेता है। घर न मिलनेपर कहीं भी कुंडली मारकर बैठ जाता है। चातुर्मास्यका विधान संन्यासीके

लिए है और आतिथ्यका तुम्हारे लिए। प्रकृतिसे प्रेरित पशुके लिए कोई विधान नहीं।'

शास्त्रीजी विद्वान् थे। उन्होंने समझ लिया कि ऐसे अवधूत या तो खंडहरोंमें पड़े रहना उपयुक्त मानते हैं या कहीं भी तरुतले, झाड़ियोंमें, भूमिपर। शरीरके सुख-दुःखसे निश्चिन्त, प्रत्येक प्रकारके संग्रहसे दूर, शारीरिक सुखके लिए चिन्तन न करनेवालेका शरीर केवल प्रकृतिद्वारा पशु-शरीरोंकी भाँति संचालित होता है। ऐसे गुणातीत पुरुष विधि-निषेधसे परे होते हैं।

'वर्षाके कारण यह स्थान ठहरनेके अयोग्य हो जायगा।' शास्त्रीजीकी श्रद्धा बाध्य कर रही थी कुछ सेवाका सौभाग्य प्राप्त होना ही चाहिये। 'मेरी कुटियाको भी चरणरजसे पवित्र होना चाहिये। इस प्रकार तो यहाँके उजड्ड लोग अत्यन्त क्लेश देते हैं।'

'वर्षा आवेगी, यहाँ नाकमें जल आवेगा तो पृथ्वीमें क्या ऊँचा स्थान नहीं?' महात्मा अपनी मस्तीमें थे। 'कष्ट या सुख कौन देता है किसको? मैं स्वयं अपनेको कष्ट क्यों दूँगा। कष्ट पाऊँगा भी कहाँ देनेके लिए। ये मिट्टीके पुतले—मिट्टी मिट्टीको मिट्टी ही देती है। तुम तो पण्डित हो। ये ग्रहोंके योगसे शरीर होते हैं न? टकराने दो ग्रहोंसे ग्रहोंको। अपना क्या बिगड़ता है।'

शास्त्रीजीने फिर प्रार्थना की। वे उठकर खड़े हो गये। जिधर ले जाया गया, चले गये। बड़ी सावधानीसे शास्त्रीजीने स्नान कराया उन्हें। रीठेके फेनिल जलसे

उनकी घुँघुराली धूलिभरी जटाएँ स्वच्छ की गयीं। शरीरमें सुगन्धित अंगराग लगा और मस्तकमें पाटलसार (इत्र) तैल। सुस्वादु भोजनसे सत्कार करके शयन कराया उन्हें चन्दनकी शय्यापर। सावधानी रखनी पड़ती थी कि वे कहीं चले न जायँ। स्नान, भोजन, शयन, आच्छादन—सब कराना पड़ता था। वे स्वयं कुछ करते नहीं थे।

एक दिन प्रातः शिष्योंने सूचना दी, 'शय्या खाली पड़ी है। कौशेय वस्त्र (रेशमी कपड़े) 'वहीं रह गये हैं। वे दिगम्बर कहीं चले गये।' अवधूत जब रमते राम हुए तो कौन पा सकता है उन्हें। ढूँढ़नेका प्रयत्न असफल रहा। शास्त्रीजीने चन्दन-पादुकाओंको सिंहासनपर स्थापित किया। वे नित्य उनपर पुष्पोंकी अञ्जलि अर्पित करके प्रणाम कर लेते हैं।

(४)

'आजकल वह पागल फिर आया है। मैंने कल देखा है उसे।'

'बड़े काइयाँ होते हैं ये। उस बार तो बच्चूको केवाँच लगायी थी, इस बार एक दर्जन बिच्छू ऊपर न फेंक दूँ तो मेरा नाम।'

'कुछ भी हो, किसीको इस प्रकार पीड़ा देना उचित नहीं।'

'ये बदमाश, इनका सिर बिना डंडेके रास्तेपर आता नहीं। पता नहीं किस घातमें यह फिर आया है। उस बार दाव नहीं लगा था कोई।'

'बच्चे ही बहुत हैं इन उपद्रवोंके लिए।'

'वह गधा, बालकोंके हाथके पत्थरोंसे प्रभावित कहाँ होता है। आओ चलो, तुम केवल खड़े-खड़े देखते रहना।' साथीको एक ओर खींचकर ले चला वह।

'तब क्या तुमने बिच्छू एकत्र कर रक्खे हैं?'

'मुझे तो पालना पसंद हैं। मेरे पिंजरेमें बड़े-बड़े पंद्रह तो अवश्य होंगे!' घर जाकर उन्होंने एक आलेमें-से पिंजरा निकाला। अलमोनियमका डिब्बा, छोटे-छोटे छिद्रोंसे भरा था। ढक्कन हटाते ही काले डंक उठ गये और सब सतर्क हो गये। उसमें कुछ मिट्टी पड़ी थी और उसपर किसीका एक पैर और डंक पड़ा था। किसीने मल्लयुद्धमें प्रतिद्वन्द्वीको पेटमें पहुँचा दिया था, यह अवशेष उसीका था। एक चौड़े मुखकी शीशीमें चमचेसे पकड़कर भर दिये गये सब और ऊपरसे काक लग गया।

'बड़ी भयंकर जाति है!'

'अब चलो खोज करने!' शीशी कोटकी जेबमें रख ली गयी।

श्यामसुन्दर मदनमोहन श्रीवृन्दावनचन्द्र।
जय जय राधे कृष्ण राधे कृष्ण राधे गोविन्द॥

दूरसे एक मधुर ध्वनि सुनायी पड़ रही थी। दोनों हाथ उठाये कोई उछलता-कूदता गा रहा था तन्मय होकर। कुछ लोग घेरे हुए थे उसे। 'आज तो नया स्वाँग बनाया है !' एकने दूसरेके कानमें कहा। वे जिसे ढूँढ़ रहे थे, उसे पहचान लिया था उन्होंने।

'गुरुदेव !' दोनोंको आश्चर्य हुआ, 'रामपुरके ये शास्त्रीजी तो प्रख्यात विद्वान् हैं। वे इस प्रकार इस पागलके सम्मुख प्रणाम क्यों कर रहे हैं ?

'मैंने कहा नहीं था कि पूरा गुरुघंटाल है। देखा, कितने बड़े-बड़ोंके सिरपर उल्लूकी लकड़ी घुमा चुका है। ये शास्त्रीजी इसीकी खोजमें आये होंगे और आश्चर्य नहीं कि यहाँसे खिसककर यह इतने दिन रामपुर ही रहा हो !' विष भरा था वाणीमें।

'इस भले आदमीको हो क्या गया है ? लज्जा भी नहीं आती !' आश्चर्य उचित ही था। इतना बड़ा विद्वान् इतने लोगोंके सामने इस प्रकार हाथ उठाकर बंदरनाच नाचने लगे तो क्या कहा जाय। पागल तो भला पागल ही था, किंतु उसका पैर छूते ही शास्त्रीजीपर भी पागलपन सवार हो गया। कहीं दुपट्टा गिरा और कहीं साफा। उस नंगे पागलके साथ हाथ उठाकर वे भी नाचने लगे।

'अरे, यह तो वही पागल है, जिसे तूने कम्बल दिया था।' समीप खड़े एक वृद्धने अपना हाथ पकड़कर

खड़े बालकको दोनों सामनेके आदमियोंके बीचसे आगे बढ़ा दिया और दिखाया।

'बाबा! मैं बुलाता हूँ इसे!' चंचल बालक आगे बढ़ा। यह क्या हो रहा है? पागलको स्पर्श करते ही वह बालक भी हाथ उठाकर नाचने लगा। वृद्ध घबड़ाया। उसने लपककर अपने बच्चेका हाथ पकड़ लिया और तब दोनों हाथ उठाकर पागलके साथ वह भी नृत्य करने लगा।

'यह क्या कोई जादू जानता है?' वहाँ नेत्रोंसे अविराम अश्रुप्रवाह चल रहा था। पुतलियाँ ऊपर उठ गयी थीं और मानो सुदूर नीलक्षितिजके उस पार किसीको देखकर वह पुकार रहा है उसे।

'कुछ भी हो, मैं इस नाटकको अभी समाप्त कर देता हूँ। छठीका दूध याद आ जायगा।' भीड़में तनिक आगे खिसककर वह पागलके समीप हो गया। शीशी हाथमें आ गयी और हाथ ऊपर उठाकर कार्क खोलकर उसने शीशी मस्तकपर उलटी। 'हाय रे, मरा रे!' गिर पड़ा चिल्लाकर स्वयं ही। बिच्छू कोई कंकड़ तो नहीं कि शीशी उलटते ही गिर पड़ेंगे। एकने रेंगकर हाथपर डंक मारा और तब हाथने अपने ही मस्तकपर शीशी पटक दी। दनादन डंक लगने लगे। चौंककर लोगोंने देखा और सब भयसे पीछे हट गये। वस्त्रोंपर बड़े भयंकर काले बिच्छू टहल रहे थे और उन्हें हटानेके प्रयत्नमें दूसरा हाथ भी डंकसे घायल हो चुका था। वह पड़ा तड़प रहा था भूमिपर।

'महापुरुषोंकी निन्दा और उनको कष्ट देना एक दिन फल देता ही है!' एक ओर एक व्यक्ति कह रहा था और पीड़ितके साथीने देखा कि वह इस पागलका पुराना श्रद्धालु है! सहसा पागलके पैर बढ़े, नेत्र खुले और सम्भवतः चीत्कार कानोंमें पड़ी। दोनों हाथ झुके और पीड़ित उन हाथोंके सहारे उठ खड़ा हुआ। कहाँ गयी पीड़ा? बिच्छुओंने डंक सीधे कर लिये और भूमिमें टपककर इधर-उधर भागने लगे। घायलने दोनों हाथ ऊपर उठा लिये थे और अब तो सब-के-सब आत्मविस्मृत होकर हाथ उठाये पुकार-पुकारकर गा रहे थे—

श्यामसुन्दर मदनमोहन श्रीवृन्दावनचन्द्र।
जय जय राधे कृष्ण राधे कृष्ण राधे गोविन्द॥

प्रभुपर विश्वास

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

उस उज्ज्वल भूमिमें हिमराशिके होनेका भ्रम भले हो जाय किंतु वायुका क्षारगन्ध सूचित कर देगा कि आपके सम्मुख पृथ्वीपर नमक फैला हुआ है। सम्मुख क्षितिजसे एकाकार अपार नीलोदधि जब पूर्णिमाको नभमें अपने हृदयरत्न पूर्णचन्द्रको देखकर उल्लसित हो उठता है और उत्तुङ्ग कल्लोल कर अङ्कमाल देनेका अफल प्रयास करता है, धराका यह अञ्चल अन्तर्हित हो जाता है। आवेशका अन्त है श्रान्ति। विफल वारिधि जब अपने-आपमें संकुचित होने लगता है, पुलिन श्वेत हो जाता है। निरुत्साहने जैसे उसे थकित कर दिया हो। सम्मुख सुदूर वह न तो पर्वतमाला है और न वृक्षपंक्ति। वे जलधिकी हिलोरें हैं जो विशाल सर्पकी भाँति अपना मस्तक बार-बार पटक रही हैं। उनका श्रेष्ठतम शिरोरत्न कौस्तुभ कबका हरण हो चुका है।

पीछे सघन वनावली। पीलू तथा दूसरे कंटकीय तरु एवं लताएँ। मध्य-मध्यमें नागफनी एवं थूहरोंकी सघन हरीतिमाकी परिधिसे घिरे हुए खेतोंकी पंक्ति। हरियालीने अपनी सघनतामें भूमिकी धूसरताको आच्छादित कर लिया है जैसे सागरको अंकमाल देनेके

समय पृथ्वीने अपनेको तद्रूप नीलवर्णका बना लिया है। क्षारकी उज्ज्वलता उनके मिलनकी सात्त्विकता ही तो है। उच्च ताड़तरु एवं खजूर आकाशकी ओर कुछ अज्ञात संकेत-से करते जान पड़ते हैं।

तटके पोतावासमें विभिन्न रंगकी पताकाएँ सागरके इन प्रफुल्ल सुमनोंके समान जलयानोंपर तितलियोंकी भाँति उड़ा ही करती हैं। नगरकोट एवं पोतावासके मध्यका मार्ग कोलाहलपूर्ण तो रहता ही है। स्तम्बतीर्थ अपने यातायातके लिए प्रख्यात है और उसके कुशल कलाकार भारतकी कीर्ति-पताका सुदूर विडालाक्ष देश (इंग्लैंड) तक विस्तारित कर चुके हैं। नगरका यह विशाल वैभव पता नहीं कब आक्रान्त हो उठे। जहाँ चीनी होती है, चींटीके चरण भी तो वहीं पहुँचते हैं। समुद्रीय दस्युओंकी क्रूर दृष्टि यहाँ आकर ही टिकती है। सुदृढ़ नगरकोट इसका संकेत करता है।

कब पश्चात् मरुप्रदेशको पार करके वनके भीतरसे ऊँटोंकी पंक्ति कहीं सागरतटपर पहुँचेगी, कौन कह सकता है। कौन कह सकता है कि उसके आरोही कब नौकाओंपर बैठ करके पोतावास एवं नगरपर आक्रमण कर देंगे। उनसे भी भयंकर हैं वे दस्यु जो सीधे सागरसे आते हैं। दूर मरुप्रदेशमें पारसीक देश (फारस) से पश्चिम कहीं निवास है उनका। समुद्रीय प्रवाल द्वीप (मूँगेके टापू) उनके शिविर हैं। मध्यमें अगाध जल, चारों ओर उदधिकी उत्ताल तरङ्गें और वहाँ सघन लता, तृणोंसे आच्छादित नारिकेल, खजूरके वृक्षोंसे मस्तक

उठाये एक दुरूह कुण्डलाकार भूभाग। ये प्रवाल द्वीप पोतोंके लिए अगम्य हैं। उनके समीपकी जलमग्न शिलाएँ मुखफाड़े अपरिचित यात्रीके भक्षणार्थ उद्यत रहती हैं। दुर्दम दस्यु अपनी लघु नौकाओंसे वहाँ केन्द्रित होकर सुरक्षित बनते हैं।

स्तम्बतीर्थ (खम्भात) के मन्दिरोंमें शिखर नहीं। म्लेच्छ दस्युओंका आक्रमण प्रथम इन देवपीठोंपर ही होता है और……भावुकोंके हृदयको भग्न करनेमें पता नहीं क्या मिलता है उन पिशाचोंको। विवश होकर यहाँ मन्दिरोंको सामान्य गृहोंका रूप देनेकी परम्परा प्रचलित हुई। कलश, पताका, गरुड़स्तम्भ और द्वारदेशपर नन्दीको रखना छूट गया। दस्युओंके भयसे यह परम पावन कुमारिका क्षेत्र तपस्वियोंके लिए वर्जित हो गया।

नगर-परिखासे रक्षित होनेके भावकी उपेक्षा करके, पोतावासके जनाकीर्ण राजपथसे दूर सागर एवं वनकी सीमा निश्चित करनेवाली यह कौन-सी कुटिया है। यहाँ यह गैरिक ध्वजा और यज्ञ-धूम, भय नहीं है क्या वहाँ दस्युओंका? महाश्मशानके समीप समाधियोंके उज्ज्वल इधर-उधर बिखरे छोटे-बड़े समूहसे तनिक हटकर कोई महाभैरवका आराधक दक्षिणाग्निकी उग्रज्वालामें आहुति देने तो नहीं बैठा है? वीराचारी कापालिकके लिए उपयुक्त है यह साहस! उसका सिद्ध शव जब अपनी आँखोंसे अंगार उगलता, अपने करकंकालोंको बढ़ाकर दुर्गन्धिसे वायुको भर देगा, दुर्दम दस्युदल केवल मिट्टीकी मूर्तियोंकी भाँति पंक्तिबद्ध खड़ा होगा बलिपशु

बनकर। हिलनेकी शक्तितक वह बैताल उससे छीन लेगा।

तुलसीके ये हरे-भरे सुपूजित पौधे, यह कुन्द, कुरबक एवं मल्लिका। यज्ञधूमकी यह उन्मद सुरभि और यह गोबरसे लिपी पवित्र भूमि। वीराचारी तो सात्त्विक उपासक नहीं होता? गैरिक ध्वजासे तो उसे कोई सम्बन्ध नहीं। यदि यह उसकी पुष्पवाटिका ही हो तो जपा एवं अपराजिताके पुष्प कहाँ हैं? धूम्र तो नहीं सूचित करता कि भगवान् अग्निदेवको कारणद्रव्य (सुरा) की दूषित आहुति मिली है। कौन जाने, वह तब भी साहस नहीं कर रहा था आश्रममें प्रवेश करनेका। कहीं 'अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः' की बात हुई तो लेनेके देने पड़ जायँगे। बिना बुलाये यमराज आये धरे हैं। इच्छाकी प्रबलता भयके द्वारा मध्यमें अटक गयी। वहीं खड़े होकर वह ध्यानसे देखने लगा।

'उम्मा!' एक उजला बछड़ा पूँछ उठाये कूद रहा था। उसे चिन्ता नहीं थी कि मस्तकके कुंकुमतिलकसे वह सुन्दर हुआ है या नहीं। गलेमें सुमनोंकी मोटी माला उसे अस्वाभाविक लग रही थी। 'यह क्या उलझन।' वह बार-बार मस्तक हिलाकर फेंक देना चाहता था उसे। शृङ्गारकी भावनासे दूर था वह।

'हम्मा!' बच्चेके शब्दका उससे उच्च स्वरने उत्तर दिया भीतरसे। वह आश्रमकी हरी सुमन-शोभित वीरुध परिखासे बाहर आ गया था। माताने उसे न देखकर पुकारा था।

'धर्म !' एक वृद्ध पुरुष द्वारपर पहुँचे। करोंमें स्वच्छ पात्र था और अब भी उसमें कुछ पुष्प-पंखुड़ियाँ पड़ी थीं तथा प्रदीप जल रहा था। पञ्चपात्र एवं आचमनी सूचित कर रहे थे कि वे गोपूजन करके इधर मुड़ पड़े हैं। 'तुम्हारी माता नन्दिनी आकुल हो रही हैं। आओ भाई !' चञ्चल बछड़ा अभी अपरिचितको सूँघकर उछलने लगा था। सम्भवतः जान लेना चाहता था कि यह कौन है ? उस चपलने आह्वानका आदर किया और उनको सूँघता परिखाके भीतर उछल गया।

'आओ भाई ! इस अकिञ्चनका आतिथ्य स्वीकार कर लो !' केश एवं श्मश्रुका श्वेतवर्ण स्नेहभरे स्वरोंमें सात्त्विक बनकर प्रत्यक्ष हो गया। उज्ज्वल वस्त्रोंमें वह तेजोमूर्ति अपनी भव्यतामें स्वयं प्रतिष्ठित थी। स्नेह एवं सौम्यता उससे प्रत्यक्ष हो रही थी। भयके भावोंको कहीं स्थान ही नहीं था। युवकने आगे बढ़कर प्रणाम किया।

'आर्य ! दस्युओंके उपद्रव अभी शान्त नहीं हुए हैं।' युवकने आसनको बड़े संकोचसे स्वीकार किया। अर्घ्यको रोकनेका प्रयास भी असफल हुआ और पाद्य उठ चुका था वृद्धके करोंमें। वह चाहता था कि किसी प्रकार उनके ध्यानको दूसरी ओर लगाया जाय। आज नगर परिखासे बाहरी प्रदेशमें यह पुण्यपताका एवं उससे भी उच्च यज्ञकी धूम्र पताका……।' कैसे कहे वह कि दस्युओंको आकर्षित करनेके कारण ये वाञ्छनीय

नहीं हैं। एक आस्तिक अपनेंसे महत्तमके सम्मुख कैसे इन शब्दोंका उच्चारण करे।

‘बड़े छली हैं आप !’ वृद्ध हँसे। ‘भयभीत करके एक निर्बल वृद्धकी परीक्षा ले रहे हैं। कौन जाने—कौन-सी करुणाधारा इसमें छिपी है। इस दीनको अपनी अल्प अर्चा श्रीचरणोंमें अर्पित कर लेने दीजिये मेरे प्रभु ! मैं जानता हूँ कि चक्रधरकी भुजाएँ प्रमाद नहीं करतीं और उनके चक्रकी प्रचण्ड ज्वाला महाकालके लिए भी असह्य है।’ जो अतिथिको आराध्यका स्वरूप ही समझता हो, उसका ध्यान पूजनसे अन्यत्र कर देना सहज नहीं होता।

‘मैं बालक हूँ !’ संकोचसे युवकने पैर समेट लिये। वृद्धने पात्रमें स्वच्छ जल लाकर सम्मुख रख दिया था और पाद-प्रक्षालन करना चाहते थे।

‘बालक और वृद्ध—क्या नहीं हैं आप !’ वृद्ध हँसे। ‘मैं संकोचमें डालना नहीं चाहूँगा।’ उन्होंने हाथ हटा लिया और युवकने स्वयं पैर धो लिये अपने।

‘यदि दस्यु आये....।’

‘द्वारिका दूर नहीं है और गरुड़के पक्षोंका वेग मनसे तीव्र ही है !’ युवकका प्रश्न पूर्ण होनेसे पहले ही उत्तर दे दिया गया।

‘स्तम्बतीर्थंसे कच्छ—इस दृष्टिसे वह निकट तो है, किंतु अब द्वापर तो नहीं है देव ?’

'द्वापर तो एक काल था, आया और चला गया।' वृद्धके नेत्र अर्धोन्मीलित हो गये। 'द्वारिकेश कालकी सीमामें आबद्ध नहीं हुआ करते। वे और उनकी द्वारिका नित्य हैं।'

(२)

'दस्युओंकी नौकाएँ पारसीक तटसे प्रवाल द्वीपपुञ्जके जपा-द्वीपकी ओर आ रही हैं!' निरीक्षक पोतने तटपर अवरोहणिका (सीढ़ी) व्यवस्थित की और उसमें-से एक तरुण शीघ्रतापूर्वक आवास-संरक्षकके कक्षमें प्रविष्ट हुआ। 'वे नीलवर्णा तरणियाँ और उनके आरोहियोंने भी उसी प्रकारके वस्त्र धारण कर रक्खे हैं। उनके पोत भी उदधिकी उत्तुङ्ग लहरोंमें वर्णकी एकताके कारण लक्षित नहीं होते। एक शस्त्रकी चमक हुई; प्रथम तो भ्रम हुआ कि कोई मत्स्य उछला होगा; किंतु स्थिरताने संदेह किया। अपनी रक्षिका तरणिसे निकटतक जाकर निरीक्षण किया है हमने, नौकाओंकी एक सुदीर्घ पंक्ति द्वीपपर पहुँच रही है।' आसनपर बैठनेका ध्यान नहीं आया उसे। कार्यकी गम्भीरताने किसीको शिष्टाचारका अवकाश नहीं दिया।

'आज पाँच वर्षके पश्चात् ये मरुदेशीय म्लेच्छ दस्यु पुनः आक्रमणका साहस कर रहे हैं।' संरक्षक गम्भीर हो गये थे। श्वेत भूर्जपत्रोंका एक स्तर उन्होंने सम्मुख कर लिया था और उनकी लेखनी मसिपात्रकी मसिसे तीव्रतापूर्वक काली रेखाएँ बनानेमें व्यस्त थी।

एक क्षणके लिए उन्होंने मस्तक उठाया और चिन्ताजन्य स्वेद-कण भालसे बायें हाथसे पोंछ लिया गया। 'गुर्जरेश सिद्धराज जयसिंह और सौराष्ट्राधिप 'रा' खेंगारका प्रचण्ड प्रताप अस्त हो गया। 'रा' मांडलीककी उच्छृङ्खलताने योगमायासदृश चारणीसे शप्त कराया। उन्हें सौराष्ट्र एवं स्तम्बतीर्थ दोनोंके लिए भय है।'

'अपने ध्वंसक पोतोंपर शतघ्नियाँ सज्जित हो जायँगी और तटपर भी वे महाकाली अग्निवर्षा करेंगी।' सम्मुख खड़े तरुणने तेजस्विता प्रदर्शित की। 'एक-एक तरुण मातृभूमिकी रक्षा करेगा।'

'मातृभूमिकी रक्षा तो करेंगे वे भगवान् सोमनाथ अथवा गुरुदत्त।' लेखनी छोड़कर अञ्जलि बाँध ली गयी और मस्तक झुक गया। समाचार मिला है कि दस्युओंने गुरुण्ड देश (यूरोप) से अधिक परिष्कृत भुशुण्डियाँ प्राप्त कर ली हैं। उनकी शतघ्नियाँ भी दूरतक अग्निवर्षा कर सकती हैं। जो भी हो, हम सामना करेंगे। तुम अपना 'महाकाल' सज्जित करो और 'भूतेश' एवं 'वरुण' को आज्ञा दो कि वे प्रवाल द्वीप-पुञ्जोंपर निकटसे सतर्क दृष्टि रक्खें।' संरक्षकने तीन युद्ध-पोतोंके लिए एक साथ निर्देश-पत्र लिख लिया था। आज्ञापत्रपर समीपके पात्रसे रेणुका फैलाकर मसिशोषण सम्पन्न किया गया और तब वह पत्र तरुणकी ओर बढ़ाया गया।

'जय सोमनाथ !' तरुणने दोनों भुजाओंको पूर्णतः आगे करके अञ्जलिपर पत्र लिया। मस्तकने झुककर आज्ञापत्रको अभिवादन दिया।

'भवानी तुम्हें यश दें।' संरक्षकने तरुणको अभिवादनके उत्तरमें दक्षिण हस्त उठाकर आशीर्वाद दिया। वे आसनपर सीधे हो गये थे।

'धूँ-घूँ, धम्-धम् !' पोतावासके उच्च निरीक्षण शिखरसे शङ्खनाद हुआ और एक साथ शृंग बजने लगे। विशाल भेरी अपनी ध्वनिसे दिशाओंको ध्वनित करने लगी। सम्पूर्ण पोतावास कोलाहलपूर्ण हो गया। प्रत्येक कर्मचारी व्यस्त हो गया। भयसूचक रक्तिम ध्वज वरुणमन्दिरके शिखरपर चढ़ चुका था और तटकी शतघ्नियोंने अनन्त नील-सिन्धुकी ओर अपने मुख सीधे कर लिये थे। उनके समीप लौह-शलाकाएँ, अग्निचूर्ण (बारूद), लौहगोलक, स्फोट अयस् एकत्र हो रहे थे और उनके चालकोंने उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गका इस प्रकार निरीक्षण प्रारम्भ कर दिया था, जैसे चिकित्सक किसी रोगीके शरीरका निरीक्षण करे।

संरक्षकने अश्वारोहण किया एवं स्वयं सम्पूर्ण पोतावासका निरीक्षण। युद्धपोत अपनेको प्रस्तुत कर रहे थे और संरक्षकका प्रकाण्ड पोत 'महाकाल' उनकी प्रतीक्षा कर रहा था तटपर अवरोहणिका आरोपित करके। पोतारोहण करते समय संरक्षकने सुन लिया नगरसे आता भेरी-निनाद। उन्होंने सन्तोषकी मुद्रा व्यक्त की। सन्देश भेजनेमें प्रमाद नहीं हुआ था। नगरद्वार बंद हो

जायँगे और परिखाके कोटोंसे शूरोंकी भुशुण्डियाँ अग्निवृष्टि करेंगी। दस्युदल चाहे जितना प्रचण्ड हो, अकस्मात् आक्रमण करके अब हानि पहुँचानेका भय नहीं रहा। सावधान रणपोतोंसे तीव्रगामिनी दस्युतरणियाँ केवल पलायन कर सकती हैं और नगरकोटकी सुदृढ़ परिखापर म्लेच्छवाहिनी मस्तक पटके तो छिन्न ही होना होगा उसे।

'आचार्य पद्मधर' सहसा संरक्षकको कुछ स्मरण हुआ। अवरोहणिकाके मध्यसे ही वे उतर गये। 'वृद्ध तपस्वी! भारतीय जंगली दस्युओंने तो श्रद्धासे मस्तक ही झुकाया है उन्हें; किंतु ये म्लेच्छ दस्यु—भगवा ध्वज देखते ही उबल पड़ेंगे और उनका आक्रमण तब अत्यन्त उन्मादपूर्ण होगा, जब नगरदुर्गकी अग्निवर्षासे निराश हटेंगे वे।' एक अश्वारोही शीघ्र आज्ञा पाकर चल पड़ा।

'आचार्य मेरे कक्षमें निवास प्राप्त करेंगे!' संरक्षकने सहकारीको आदेश दिया। 'उनकी प्रत्येक सुविधा युद्धकालमें भी सर्वोपरि रहेगी!' अवसर मिलते ही वे आचार्यके पावन पदोंमें प्रणत होने उपस्थित हुआ करते हैं। अवसर विषम न होता तो स्वयं स्वागत करते। उन्हें दस्युओंको वारिधिके विशाल वक्षपर रोकना है। एक-एक क्षण भयको सन्निकट ला रहा है। प्रवाल द्वीपपर पीने योग्य जलका अभाव है। क्षार समुद्रीय जल वहाँ किसीको विश्राम नहीं देता। दस्यु वहाँ एकत्र होंगे

और शीघ्र ही आक्रमणके लिए प्रस्थान भी कर देंगे। वहाँ तो उनका केवल एकत्र होनेका केन्द्र है।

'आचार्यने आश्रम परित्याग अस्वीकार कर दिया!' संरक्षकका पोत स्थिर हो गया था। पोतावाससे एक शीघ्रगति नौकाने अपना स्थिराधार (लंगर) पोततलके छिद्रपर फेंका। रज्जु-रोहणिकासे एक युवक 'महाकाल' के मुख्य कक्षमें पहुँचा और मस्तक झुकाया उसने। 'उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि उनके श्रीविग्रह अचल प्रतिष्ठित हुए हैं, अतः वे कहीं जा नहीं सकते। प्रभुके श्रीचरणोंसे दूर तुच्छ शरीरके लिए—नश्वर जीवनके लिए जाना स्वीकार नहीं। सर्वेश्वरकी इच्छाके विरुद्ध कुछ हो नहीं सकता। क्षुद्र एवं तुच्छके द्वारा उन अखिलेशकी इच्छा पूर्ण हो!' सन्देशवाहक अपनी विफलतापर दुःखी था।

'वर्तमान आवास-रक्षकने वहाँ सैन्य भेजी?' संरक्षकने दूसरा प्रश्न किया।

'वे विवश हैं। एक ब्राह्मणकी इच्छाका अनादर करनेका साहस कौन करेगा?' युवकने अपने उत्तरसे उनको पूरी चिन्तामें डाल दिया। 'आचार्यने मुझे भली प्रकार सावधान कर दिया था कि अपने आश्रमको सैनिकोंसे घिरा देखना वे नहीं चाहते। उनका कहना है, यहाँ मेरा क्या है। जिसका आश्रम है, जिसका शरीर है, जिसके लिए जीवन है, उसकी इच्छा अबाध पूर्ण हो। रक्षा एवं रोकना जहाँ गृहस्थके लिए अनिवार्य धर्म हैं, एक त्यागीके लिए वे उपेक्षाके योग्य हैं। उसका

विश्वमें कोई शत्रु नहीं और यदि कोई उनके नश्वर शरीरको नष्ट करके प्रसन्न होता हो, तो प्रसन्न हो।' सन्देशवाहकके स्वरमें वह तटस्थता कहाँ, वह तो रो रहा था।

'वे देवकल्प महापुरुष !' संरक्षकने नेत्रोंसे वस्त्र लगाया। 'उन्हें न तो कहीं आसक्ति है और न मोह ! अपने आराध्यमें नित्य तन्मय रहते हैं। प्राणीमात्रका कल्याण, सबका सुख और जो समीप पहुँचे, उसीकी शान्ति अभीष्ट हो जाती है उन्हें। उनका सुख, उनकी सुविधा तो जैसे कुछ है ही नहीं। उन असंगको जीवनका क्या मोह ! किंतु ये पिशाच ····!' चिन्तासे मुख नीचे झुक गया। भालपर रेखाएँ पड़ीं और नेत्र पैरोंके पास जैसे कुछ अन्वेषण कर रहे हों।

'दस्युओंने दक्षिण दिशाको नौकाएँ छोड़ दीं !' सहसा एक तरुणने प्रवेश किया। 'सम्भवतः वे कहीं तटपर दूर उतरेंगे !' निरीक्षक पोतने पताकाद्वारा संकेत दिया था और सूचनाकक्षसे वही सन्देश लेकर वह तरुण आया था।

'वे पूर्वको मुड़ रहे हैं !' दूसरा सन्देहवाहक पहुँचा।

'उन्होंने पोतावासपर नीचेकी ओरसे आक्रमण करनेका निश्चय किया जान पड़ता है।' संरक्षकने कुछ सोचा। 'हो सकता है, उनका कोई दल ऊपरसे आकमण करनेको रक्षित हो और वे हमें भ्रममें डाल रहे हों !' शत्रुके व्यूहका स्पष्टीकरण नहीं हुआ था।

'नौकाओंका एक दल नीचे जा रहा है और एक स्थिरप्राय है !' एक और सन्देश आया।

'भूतेश' एवं 'वरुण' पीछे लौटें ! उन्मुक्त समुद्रके स्थानपर हम अपने आखात (खाड़ी) में ही शत्रुका सामना करेंगे। 'महाकाल' दक्षिण भुजापर अवस्थित होगा आखातके।' शत्रु कोई भी व्यूह बनावे, संरक्षकने अर्धचन्द्र व्यूहसे अर्धचन्द्र देना निश्चित कर लिया।

(३)

'काफिर, हमने इतने दिनों इधर क़याम नहीं किया तो इनके बुतखाने खड़े हो गये !' वह दैत्याकार दस्यु गैरिक ध्वजको घूर रहा था। 'ये कमबख्त आतिश परश्त। इन्हें जहन्नुम रशीद करके सबाब लिये बिना एक कदम नहीं बढ़ाना है।' यज्ञीय धूम देख लिया था उसने। इन दस्युओंकी दृष्टि गृध्रके समान तीव्र होती है। नीली मखमलपर जरीके तारोंसे कुछ फूलपत्ते बने थे और उसे उसने अपने नीले चोगेके ऊपर पहन रक्खा था। लंबा भाला नीचे पड़ा था और उसकी भुशुण्डिका सिरा मस्तकके नीलाच्छादनका स्पर्श कर रहा था।

'सरदार ! अभी काफी दूर हैं हम, और काफिरोंका दरियाई काफिला तैयार दीखता है।' दूसरा भी आकृतिमें वैसा ही दैत्य था; किंतु उसके नीले मखमली आवरण एवं शिरस्त्राणपर स्वर्णिम तारोंकी कलाकृति बहुत थोड़ी थी। 'जान पड़ता है, उनको हमारे हमलेका सुराग

लग चुका है।' सरदारके साथ वह भी समुद्रकी ओर ही देख रहा था।

'माहताबकी रोशनीमें कयामकी गफलत तो हो चुकी।' बात ठीक थी। यदि वे सब पूर्णिमाके बदले पारसीक तटसे प्रवालद्वीपको अमावस्याके अन्धकारमें आये होते तो स्तम्बतीर्थके चर किसी प्रकार उनका पता नहीं पाते। 'जो कुछ हो, निशार आगे क़दम रखकर पीछे नहीं लौटेगा।' उसने दाँतोंसे अधर दबाया और दाहिने हाथकी मुट्ठी सुदृढ़ करके आकाशमें उछाली।

'हमराहियोंकी तादाद काफी होनेपर भी शहरपनाहको तोड़ लेना मुमकिन नहीं।' दूसरेने अपनी शङ्का प्रकट की। 'अब उनके दरवाजोंको खुला पानेकी उम्मीद फिजूल है और अपनी किश्तियाँ भारी दरियाई काफ़िलेके मुकाबिलेके वास्ते नामुकम्मिल हैं। हमारे काफिलेमें एक-भी जंगी किश्ती नहीं।' निराशा उसके नेत्रोंमें प्रत्यक्ष होने लगी थी और अगर सरदार उसकी ओर देखता तो समझ लेता कि दस्यु होकर भी मृत्युका भय उसे भीत कर रहा है।

'मेरा इरादा मजबूत है। दिनकी रोशनीमें हमने इसी वास्ते हमला मंसूख नहीं किया कि आफताबकी खुली रोशनी हमें मौका दे। दुश्मनका भारी काफिला, जंगी किश्तियाँ जरूर हमें काफी नुकसान पहुँचायेंगी, मगर वे इकट्ठा नहीं हो सकतीं और उनको तेजीसे मोड़ना मुमकिन नहीं। हमारी किश्तियाँ उनके बीचसे आगे

निकल जायँगी।' उसने पैर पटका और नौका चञ्चल होने लगी।

'मुर्गेकी तरह खुद दरबेमें बंद होनेसे फायदा ?'

'फायदा—फायदा अगर यहाँ न भी हुआ तो कयामतके वक्त वहिश्तमें हो जायगा।' दस्यु सरदार आकृतिके समान हृदयसे भी दैत्य था। 'अबतक काफ़िर यहाँ बुतपरश्ती नहीं कर सका था। आज फिर उसका मैला निशान उड़ने लगा है। निशार उसे दोजख भेज देगा। वह देखो, वह निशान शहरपनाहसे बाहर है। तकदीरने साथ दिया तो हम उसे मिट्टीमें मिलाकर लौट आवेंगे। बुतशिकन सरदार शहीद होनेसे डरता नहीं।' कहते-कहते सहसा उसने पीछे देखा। उसके साथी चिल्ला रहे थे भयसे।

'या अल्लाह।' दस्युओंका वायुज्ञान व्यर्थ हो गया था। अबतक ऐसा कभी हुआ नहीं। समुद्रीय तूफानोंका अनुमान वे एक सप्ताह पूर्व कर लिया करते हैं। आज एक घड़ी पूर्वतक आकाश निर्मल था और वायुमें कोई भयङ्कर गन्ध नहीं थी। यह अकस्मात् वायुवेग क्यों बढ़ने लगा। वे खुले समुद्रमें हैं। आखातमें प्रवेश करनेमें अब भी कुछ देर है। प्रतिपक्षी जलयान आखातमें सुरक्षित अग्निवर्षाको उद्यत ही थे कि यह दूसरी विपत्ति। लहरें उच्चसे उच्चतर होती जा रही हैं। बैठ जानेको विवश हो गया वह। नौका अस्त-व्यस्त उछलने लगी थी।

'वह दूर, ऊपर काला पहाड़ उड़ा आ रहा है।' भयसे देखा उसने। सुदूर उत्तर क्षितिजपर सामान्य नेत्र एक बिन्दु देख सकते थे। दस्युने दूरीसे आकृतिका ठीक अनुमान किया था। 'उतारो पालको।' आदेश व्यर्थ था। कोई उठनेमें भी समर्थ नहीं था। क्षुब्ध मकरालय उन क्षुद्र नौका-कीटोंको अपने फैलाये हुए भयङ्कर मुखविवरसे निगलता जा रहा था और सरदारकी नौका उसका अन्तिम ग्रास थी। किसी नौकाका चिह्नतक नहीं बचा।

(४)

'भामे! भोजन अब और कहीं होगा। प्रस्थानको प्रस्तुत हो।' अपनी दिव्य द्वारिकामें वह द्वारकेश मानस मृदुल स्वर्णासनपर आसीन हो चुका था और देवी सत्यभामाने रत्नजटित स्वर्णपात्रमें अपना अनुराग व्यञ्जनोंकी विविधताका रूप देकर निवेदित कर दिया था। मानवके स्थूल नेत्र उस दिव्य-जगत्के दर्शन असमर्थ हैं। 'अब तो स्तम्बतीर्थमें साथ-साथ आतिथ्य स्वीकार होगा।' आचमनको उत्थित जल विसर्जित हो गया और सत्यभामाजीने देखा, प्राङ्गणमें गरुड़जी पक्ष समेटकर उतर आये हैं।

'षोडश सहस्र सुकुमारियोंके उद्धारकी दूसरी आवृत्ति तो नहीं होनी है?' रत्नदण्ड करोंमें तनिक अधिक चञ्चल हुआ। वालव्यजनने वायुमें तनिक बल दिया।

मणिकंकणकी झनकारमें मयूरपिच्छने एक उन्मुक्त हिलोर ली। श्रीहरिका मुख तो गम्भीर है। अधरोंका हास्य वहीं कुण्ठित हो गया। 'वहाँसे कोई उत्पीड़ित आर्त आह्वान तो नहीं उठ रहा है? उस क्षेत्रमें तपस्वी तो जाते नहीं हैं।' ममतामयी चञ्चल हो उठीं।

'भामे! वहाँका वह विलक्षण उत्पीड़ित अन्तरमें भी आह न करेगा।' उन सर्वेशके सम्मुख देश और कालकी यवनिका कहाँ रहती है। 'वह उत्सर्गकी मूर्ति मुझमें अपनेको अर्पित करके श्रद्धासे स्थिर हो गया है। शरीर और श्वासके मोहसे परे उसकी श्रद्धा अविचल है।' दयासिन्धु जैसे ध्यानस्थ हो रहे हों।

'मेरे पारिजात पुष्प आज सार्थक हो जायँगे। पुष्पाञ्जलि दूँगी मैं उनके पावन पदोंमें।' अखिलेशकी अर्धाङ्गिनीका हृदय उल्लसित हो रहा था। 'उपहासका भी एक प्रकार होता है। व्यर्थ ही मुझे भीत कर दिया—बड़े वैसे हैं आप।' एक स्निग्ध अपांगवीक्षण एवं मन्द स्मित।

'उन्मद दस्यु-नौकादल एकमात्र उसे लक्ष्य बनाकर बढ़ रहा है।' मधुसूदनका मेघगम्भीर स्वर जैसे अपने आपमें ही उच्चरित हो रहा हो। 'प्रतिकारकी भावना भी वहाँ नहीं है और मेरे आह्वानकी बात—वह भी तुच्छ शरीरके लिए। सोच ही नहीं सकता वह।

'इसीलिए आप शान्त बैठे रहेंगे। उन ओजमयीके लिए यह विलम्ब सह्य नहीं था। 'सर्पाशी गरुड़!

तुम्हारे तुण्ड एवं पंजोंमें शक्ति है। तुम्हारे पक्ष पर्वतोंको भी चूर्णित करनेमें समर्थ हैं। प्रस्थान करो। मैं दो क्षणमें सुनना चाहता हूँ कि दस्युदल उदधिके अन्तरालमें निमग्न हो चुका।' उठकर आदेश दिया सत्यभामाने और पक्षिराजने पक्ष सम्हाले।

'गरुड़ एकाकी नहीं जायँगे।' सहसा वे वैनतेय दोनों आज्ञाओंके सङ्कोचमें पड़ गये। 'देवि! तुम्हारे पारिजातपुष्पोंको भी सार्थक होना चाहिये और आदेशकी रक्षा भी। पक्षिराजके पक्ष आततायीको उदधि-समाधि देंगे और हम आतिथ्य ग्रहण करेंगे उस अतिथि भक्तका।'

'पधारो देव!' बिना विलम्ब वे पक्षिपतिके समीप पहुँच गयीं।

'इस नभयात्रामें आप विदर्भकुमारीको भाग न देंगी?'

'केवल एक क्षण।' आज राजपट्टमहिषी बिना वाहनके दौड़ गयी थीं और सचमुच कुछ पलोंमें ही वे महारानी रुक्मिणीजीके करोंमें कर डाले उपस्थित थीं। एक हल्की थपकी मिली पक्षिराजको और दोनों पार्श्वोंमें स्थिर विद्युत्से घिरे नवजलधरने उनके पृष्ठ-देशको भूषित किया। दो क्षण पश्चात् कोमल पादपल्लवने उदर देशका स्पर्श किया। आराध्यका संकेत समझते अरुणानुजको क्या कठिनाई होने लगी। पक्षोंने वेगसे हिलना प्रारम्भ किया। नीचे महोदधि अपनी महोर्मियोंसे आर्तक्रन्दन करने लगा! उत्तुङ्ग तरङ्गें उठने लगीं!

पक्ष सम्पुटित हो गये । उपवनका एक पत्तातक हिला नहीं । आश्रमके कदलीतरुके विशद पत्रोंने भी कोई सूचना नहीं दी । केवल नन्दिनीने ऊपर मुख करके दो बार 'हम्मा, हम्मा' किया । पुष्पोंकी अञ्जलि भगवान् भास्करके लिए उत्सर्ग होने जा रही थी; आचार्य चौंके । स्वयं वे गगनविहारी नारायण तो अपने त्रिविध रूपोंमें सम्मुख नहीं आ गये । पक्षिराजकी पीठसे कूदकर तीन मूर्तियाँ खड़ी थीं । आचार्यकी अञ्जलिके पुष्प उनके पदोंपर गिरे और वे उन्हींपर मस्तक रखकर पृथ्वीमें दण्डवत् प्रणिपात करने लगे । दो अञ्जलियोंने पारिजात पुष्प उनके पदोंपर प्रक्षेप कर दिये, यह नहीं देख सके वे ।